बूधन बोलता है

दक्षिण बजरंगे छारा

भाषा संशोधन प्रकाशन केंद्र
वडोदरा

Budhan Bolta Hai: Autobiography and Plays
by Dakxin Bajrange Chhara

प्रथम संस्करण : २०१०

टाईपिंग : कोकिला गोस्वामी, राजकुमार गांधी

पृष्ठ सज्जा : निरज केंगे

आवरण : लोकेश खेतान

प्रकाशक :
भाषा संशोधन प्रकाशन केंद्र
६२, श्रीनाथधाम सोसायटी
श्रीनगर सोसायटी के सामने
दिनेश मील के पीछे
वडोदरा ३९० ००७
फोन नं. : ०२६५-२३३१९६८, २३५३३४७
ईमेल : brpc_baroda@sify.com
वेब साइट : www.bhasharesearch.org.in

मुद्रक : शिवम ऑफसेट, वडोदरा

This publication has received funding support from The Ford Foundation, New Delhi under the project 'Budhan Theatre's Cultural Programme'.

ये किताब समर्पित है

मेरे समाज को
जिसने मुझे नाम और पहचान दी,

डॉ. गणेश देवी को
जिन्होंने बदलाव के लिए अहिंसात्मक लड़ाई करना सिखाया,

मेरे माता-पिता और परिवार को
जिन्हें मैं कभी खुशियाँ नहीं दे पाया और

मेरे साथियों को
जो नाट्य यात्रा में मेरे साथ कदम से कदम चले

अनुक्रमणिका

सिर्फ साहित्य नहीं...

१९९८ में पहली बार मैं अहमदाबाद के छारानगर में गया था। साथ में श्रीमती महाश्वेता देवीजी थीं। वहाँ जाकर क्या कर पाऊँगा इसका मुझे कोई निश्चित अंदाजा नहीं था। पहली मुलाकात के बाद ही वहाँ बार-बार जाने का मन होने लगा। कुछ दिनों के बाद मैंने वहाँ के युवाओं के लिए छारानगर में एक छोटा पुस्तकालय बसाने का तय किया। पुस्तकालय में लड़के-लड़कियाँ आने लगे। बातें होने लगी। उन दिनों बंगाल में महाश्वेता देवीजी ने बूधन सबर नाम के आदिजातीय व्यक्ति की पुलीस हिरासत में हुई मौत का केस हाईकोर्ट में दर्ज किया था। जुलाई १९९८ में उसका फैसला हुआ। मुझे लगा की कोर्ट के इस निर्णय को ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक पहुँचाना चाहिए। इस उद्देश से मैंने 'बूधन' साप्ताहिक में पूरी संहिता प्रकाशित की । उसकी एक प्रति छारानगर के पुस्तकालय में भेजी । अंग्रेजी में 'लो एन्ड बीहोल्ड' कहते हैं उस तरह से चकाचौंध करनेवाली गति से वहाँ के बच्चों ने बूधन कोर्ट केस को नाट्य रूप दिया। नाट्य रूप बड़ा गजब का था।

छारानगर के दोस्त बहुत ही जल्दी मेरे साथ यायावर जनजातियों के अधिकार के आंदोलन में जुड़ गए। मेरा छारानगर आना-जाना बनता रहा। छारानगर पुस्तकालय में लोगों का आना-जाना बढ़ता रहा। यायावर जनजातीय आंदोलन चलता रहा। उसके विविध केन्द्र स्थानों में 'छारानगर पुस्तकालय' और 'बूधन थियेटर' महत्व के केन्द्र बनते गए । केवल अहमदाबाद और गुजरात से ही नहीं लेकिन देश-विदेश से भी साथी यहाँ आने लगे । आन्दोलन से जुड़ते गए । एक समय बहुत वंचित और अभावग्रस्त रहे छारा समाज के दोस्त अब धीरे-धीरे देश और दुनिया के अन्य युवाओं के आशा स्थान बनने

लगे। साथ-साथ दमन भी आया। उसके प्रतिकार में संघर्ष करने के मौके आते रहे। 'छारानगर पुस्तकालय' से जुड़े दोस्तों की ज़िंदगियों में पहले से ही चिन्ता के पल कम नही थे। अब वो और भी बढ़ गए। ऐसे प्रसंगों का सामना करने की ताकत भी बढ़ती गयी। आज छारानगर में 'बूधन स्कूल ऑफ थियेटर आर्ट्स, जर्नलिज़म एन्ड मीडीया स्टडीज़' की निर्मिती हुई है। इसका इतिहास वहाँ के मेरे बहुत सारे साथियों की निजी ज़िंदगीयों का एक अविभाज्य हिस्सा रहा है। साथ-साथ देश में चले यायावर जनजातीय आंदोलन का सबसे अहम हिस्सा बन चुका है। वह इतिहास इतिहासकारों के तर्क शुद्ध लेखन से नहीं लिखा जा सकता। वह केवल हर व्यक्ति के निजी आख्यानों से ही बनाया जा सकता है। मैं जानता हूँ कि यह आधा-अधूरा हो सकता है, लेकिन निश्चित है कि यह सार्थक और सच्चा इतिहास बनेगा।

छारानगर के मेरे दोस्तों में दक्षिण बजरंगे हर तरह से प्रशंसा के पात्र रहे हैं। हालांकि इस समय वह इंग्लैंड के 'लीड्स विश्वविद्यालय' में पढ़ने गए हैं। मैंने खुद भी वहाँ साहित्य की पढ़ाई की थी। एक समय वहाँ अफ्रीका के चिनुआ अचेबे और वॉले सोयिंका भी रहे थे। अचेबे, सोयिंका, न्गुगी वगैरे अफ्रीका के साहित्य सर्जक, फ्रेंच भाषा में जिन्होंने क्रांतिशाली साहित्य दिया ऐसे विचारवंत लिओपोल्ड सेंघोर, दक्षिण अमरिका के इवान इल्लीच और पाउलो फ्रेइरे और अपने यहाँ के सफ़दर हाशमी की परंपरा में दक्षिण बजरंगे एक नया तारा है। उनकी यह किताब प्रसिद्ध करते हुए मैं आनंद का अनुभव नहीं कर रहा हूँ, बल्कि मुझे वेदना होती है कि देश के आज़ादी के साठ सालों के बाद भी बूधन जैसों को निर्ममता से मारा जाता है और दक्षिण जैसों को अपनी पूरी ज़िंदगी लगाकर इस अन्याय के सामने लड़ना पड़ता है। 'बूधन बोलता है' साहित्य की किताब नहीं है, ये सिर्फ सच्चा जीवन है।

मेरी पाठकों से प्रार्थना है की वे इस लेखन को सहित्य समझकर ना पढ़ें, और पढ़ने के बाद न भूलें। ये जीवन दर्शन है। जिस समाज ने इस प्रकार का जीवन समाज के कुछ हिस्सों पर थोपा है, उस व्यवस्था को बदलने का यह पुस्तक एक न्यौता है।

गणेश देवी

मेरे जीवन के कुछ अंश

नमस्कार दोस्तों,

मैं हमेशा अपने आप से बात करता रहता हूँ। आज अपने बारे में आप से बातें करने का मौका मिला है। ये मौका मुझे आज से कोई ढाई साल पहले डॉ. गणेश देवी ने दिया। उन्हें हम सब प्यार से 'सर' कहते हैं। एक दिन अहमदाबाद से बरोडा के लिए मुझे सर से गाड़ी की लिफ्ट मिली। गाड़ी चलाते हुए सर ने अनायास ही पूछ लिया, 'दक्षिण, तुम्हारे घर में कौन-कौन है ? खाना कौन बनाता है ? सब्ज़ी कौन लेने जाता है?' वगैरे... वगैरे... घरेलू और ज़िंदगी की समस्याओं से उलझा हुआ, मैंने अपने जीवन का आईना उनके सामने रखा। अच्छा लगता है जब कोई हमें सुनता है।

मुझे सुनने के बाद उन्होंने कहा, 'दक्षिण, तुम अपनी आत्मकथा क्युं नहीं लिखते ?'

मैंने कुछ बुदबुदाते हुए कहा था, 'हाँ, लिख सकता हूँ।'

'कितने दिन में लिख सकते हो?'

मैं जवाब ढूँढ़ रहा था कि वे बोले, 'पंद्रह, बीस दिन?'

'हाँ, लिख लूँगा।'

आज उस बात को तकरीबन ढाई साल होने को है, मैं नहीं लिख पाया। अपनी रोजनीशी लिखता रहा, लेकिन अपनी ज़िंदगी और खासकर अपनी दुनियाभर की समस्याओं और घटनाओं से उलझी हुई जीवनी लिखना कठिन था। कई बार लिखने बैठता तो जैसे सब कुछ शून्य हो जाता। मैं क्या लिखूँ समझ के परे हो जाता। सोचता, ऐसा मेरे जीवन में क्या है जो दूसरों को प्रेरित करे ? शायद कुछ भी नहीं और शायद कुछ है। ये कुछ भी नहीं और कुछ है कि कशमकश में कभी-कभी छुटपुट लिखता रहता। आज उन सबको

जोड़ा तो एक अनियमित आत्मकथा का आकार सामने आया। लिखने की प्रेरणा और दृढ़ हुई।

आज से कुछ समय पहले मैं सूंपर्णतः सट्टे (वरली मटका) के धंधे को समर्पित था। पुलीस से 'व्यवहार' मैं ही करता। इसी दौरान कौन से वहीवटदार से क्या बात करनी है, सीखने को मिला। वहीवटदार जब व्यवहार लेने आते तब उनका बात करने का तरीका देखने को होता। उन 'महान' पुलीसवालों से व्यवहार की बात को निपटाने में मेरे एक दोस्त के पिता मुझे बहोत मदद करते। इस काम में वो माहिर थे क्युंकि मेरे बाप के साथ उन्होंने अपने जीवन के बीस-पच्चीस साल ये ही काम करते हुए निकाले थे। इसी दौरान मेरी कुबेरनगर चौकी के पी.एस.आई. से मुलाकात हुई।

एक नंबर का पियक्कड़ और छींटेबाज। शराब और पैसों के सिवा उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता था ! उसे हमेशा मेरी एक बात बहोत-बहोत खटकती। मेरे नाटक, पुलीस विरोधी नाटक!

धंधा करते हुए भी 'बूधन थियेटर' में नाट्य प्रस्तुतियाँ चालू ही थीं। सुबह से शाम तक सट्टामय हो जाता और रात को कुछ समय के लिए नाटकमय होना पड़ता। फिर देर रात तक वही कोठा, आंकड़ा, पाना, हिसाब-किताब... इससे पहले हमने 'बूधन', 'पिन्याहरी काले की मौत', 'दीपक तनुजा पवार' नाटकों के काफी सारे मंचन कुबेरनगर पुलीस चौकी के सामने किये थे। एक तो छारा जाती का और ऊपर से एक गुन्हेगार बाप का बेटा होने के बावजूद मैं पुलीस के खिलाफ नाटक करता, वो हमेशा उसकी आँखों में खटकता।

कई बार वो कहता, 'अबे छारे, छोड़ दे ये सारा नाटक-बाटक, नहीं तो कभी बहोत भारी पड़ेगा।'

एक दिन उसे मौका मिल गया। अजीत और प्रहलाद नामक दो युवकों के बीच कुछ झगड़ा हुआ। बिलकुल जहाँ वरली मटका चलता था उसके सामने। मेरे सबसे छोटा भाई, उत्तर की ऑल ईंडीया ईजीनिरींग एन्ट्रंस (ए.आई.ई.ई.ई.) की परीक्षा थी। मैं उसके साथ गांधीनगर गया हुआ था। मैं भी पिछले एक साल से आई.ए.एस. की परीक्षा की तैयारी कर रहा था।

१६ जून २००३ के रोज़ मेरी आई.ए.एस. की प्रिलिमिनरी परीक्षा थी और दस जून को ये घटना घटी। अजीत और प्रहलाद के बीच ये झगड़े अमूमन होते रहते थे लेकिन शायद इस बार उसने कुछ उग्र रूप ले लिया। पता चला प्रहलाद दारू पीकर अजीत को सबके सामने उसकी बीवी के बारे में गंदी गालियाँ दे रहा था। अजीत से सहन नहीं हुआ और दोनों के बीच मारपीट हो गई । सामाजिक तौर पर देखा जाये तो ये एक सामान्य घटना थी।

मुझे गांधीनगर में मोबाईल पे फोन आया। ये सब रोज़ का था इसलिए मैंने उसे गंभीरता से नहीं लिया लेकिन बाद में पता चला की पुलीस ने एफ.आई.आर. में मेरा और मेरे बाप का नाम भी दर्ज कर दिया है। मेट्रोपोलिटन कोर्ट का गुनाह होता तो दूसरे दिन छूट भी जाते पर ये तो सेशन्स कमीट गुनाह हो गया था। हम पर धारा ३२६, ३२४ लगाई गयी। एक तरफ सट्टे का धंधा जो बरसों के बाद चालू हुआ था और आशा बंधी थी कि अब तो कर्ज़ उतर ही जायेगा, दूसरी ओर १६ जून २००३ को आई.ए.एस. की परीक्षा जिसके लिए मैंने बहोत महेनत की थी, तीसरी ओर नाटक की प्रस्तुतियाँ और चौथा, अब पुलीस के कागज़ों पर नाम दर्ज हो गया था ।

दो-तीन दिन मैं यहाँ-वहाँ भागा, लेकिन फिर एरेस्ट होने के सिवा कोई रास्ता नहीं था। मैं और बाप दोनों साथ में ही एरेस्ट हुए। दोनों को एक ही लॉक-अप में रखा। मैंने पी.एस.आई. को बहोत विनती की कि मेरी सोलह तारीख को आई.ए.एस. की परीक्षा है, लेकिन मोटी चमड़ी के उस अफसर पर कोई असर नहीं था। मुझे रात को तकरीबन साढ़े ग्यारह बजे लॉक-अप से निकाला गया और पी.एस.ओ. ऑफिस में ले गए। देखा तो सामने वही पी.एस.आई. खड़ा था।

बोला, 'कहा था ना छारे, जिस दिन हाथ में आया छोडूँगा नहीं। बहोत नाटक किए थाने के सामने। अब सड़ो तीन महीने जेल में।'

वो हँस रहा था। ये बात अब साफ थी की नाटक के पूर्वग्रहों की वज़ह से पुलीस ने बिना छानबीन किए हमारा नाम एफ.आई.आर. में दर्ज कर दिया था ।

मैं और बाप एक ही लॉक-अप में थे । बाप मुझे हिंमत दे रहा था। मैं स्वस्थ था। मैंने अब तक अपने आप को हर स्थिति में स्वस्थ रखना सीख लिया था। पेशाब और संडास से खदबदती उस लॉक-अप में मैंने और बाप ने सारी रात निकाली। दूसरे दिन मेट्रोपॉलिटन कोर्ट ने हमें सेन्ट्रल जेल भेज दिया।

मैं देख रहा था, कोई भी घरवाले रो नहीं रहे थे। उन्होंने अपने आँसुओं को छिपा रखा था । हमारे जाने के बाद वो बाँध टूटा होगा ।

तकरीबन शाम साढ़े पाँच बजे हम साबरमती जेल आ पहोंचे। शहरी पुलीस ने हमें जेल की पुलीस के हवाले किया। जहाँ दरवाजा था, उसको सटककर जेलर की ऑफिस थी। हमें पहले मुँह दिखाई और पहचान के लिए वहाँ ले गए। हम से पहले काफी बड़ी लाईन लगी पड़ी थी। हम सब नीचे बैठे थे और जेल पुलीस आपस में मज़ाक मस्ती कर रहे थे।

अचानक बड़ी-बड़ी मूँछोंवाले पुलीस ने सब को ऑर्डर दिया, 'चलो, शर्ट निकाल दो सब।'

मैंने आश्चर्य से पुलीसवाले की ओर देखा। शर्ट क्युं निकालनी है? बाप की ओर देखा। उन्होंने प्यार से उतार देने का इशारा किया। मैंने वैसे ही किया। अब उस ऑफिस में तकरीबन पच्चीस-तीस लोग अधनंगे थे।

एक-एक को बुलाकर बदन पर लगी निशानियों को जेल रजिस्टर में दर्ज की। जो सीधा खड़ा नहीं रहता उसे या तो भद्दी सी गाली पड़ती या दो चार ठोक देते।

पहला राउन्ड पूरा होने के बाद दूसरा राउन्ड। सभी को एक खुली जगह में ले गए और बहोत लंबे समय तक घुटनों के बल बिठाया गया। ये बहोत ही दर्दनाक था। मैं गाउट की वज़ह से बैठ नहीं पा रहा था और बाप के पैरों में सलाखें थीं। जैसे-तैसे समय निकला। एक और लंबा, चौड़ा पुलीसवाला आया और सबको अपनी-अपनी पतलून निकालने को कहा। जिनको पहले राउन्ड में ठोका था उन्होंने फटाफट निकाल दी। बाप ने भी निकाल दी और मुझे इशारा किया। मैं और बाप जोड़ी-जोड़ी में ही बैठे थे। जोड़ी-जोड़ी यानी

दो व्यक्ति एक दूसरे से बिलकुल सटककर बैठें।

फिर से सभी नंगे। किसी ने अंदर की चड्डी पहनी थी तो किसी ने नहीं। बाप ने मेरे लिए चड्डी कोर्ट में ही मँगवा ली थी। सुकून हुआ की संपूर्ण नंगा नहीं होना पड़ेगा।

फिर से बदन पर मौजूद निशानियों के रीकार्ड का दौर शुरू हुआ। बाप बिन्दास्त दिख रहा था। मैं उससे नज़र नहीं मिला पा रहा था। खैर !

तीसरा राउन्ड! रामजी जेलर से रूबरू। तीसरे राउन्ड में सभी को जोड़ी-जोड़ी में बिठाया। काफी समय बैठे रहे। मैं और बाप अचानक आई पड़ी हुई ये आफत के बारे में चर्चा कर ही रहे थे कि देखा सभी अचानक एलर्ट हो गए। दूर से दिखाई दिया, जेलर साब की एन्ट्री हुई। वो टेबल पर पैर रखकर कुर्सी पर बिलकुल फिल्मी अंदाज में बैठे। कुर्सी पर पड़े हुए कार्ड देखते और नंबर से बुलाते। बुलाते वक्त वो आदमी के नाम की बजाय उस पे लगी धारा से बुलाते जैसे, 'क्या रे ३७६, किसका बलात्कार किया? बहोत मज़े आ गए थे? साले घर में बीवी नहीं है? नहीं है तो रंडीखाने जाता। यहाँ तो नहीं आना पड़ता' वगैरे...वगैरे...

हमसे पहले जिसका नंबर था वो बंदा ३०७ में लाया गया था।

'क्या रे ३०७, काई से मारा... गुप्ती से, तलवार से या पाईप से...? इधर अगर स्यानपट्टी की तो साले तेरा गु-मुत निकाल दूँगा।'

फिर मेरा और बाप का नंबर आया।

बड़े ही नाटकीय अंदाज में बोले, 'हाँ... आओ-आओ, साले तुम छारे कभी नहीं सुधरोगे। तुम्हारे बारे में ही कल पेपर में आया था न ? क्या नाम है वो लड़के का...हाँ, प्रहलाद। जिसे तुम लोगों ने मारा। आज तो शायद उसका सिवील अस्पताल में पैर काटना पड़ेगा... फिर सड़ते रहना... अंदर बहोत से छारा तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं।'

मैंने और बाप ने सलाम किया। जैसे ही हम चलने लगे, 'और सुनो, यहाँ छारागीरी मत बताना, नहीं तो मार-मार के चमड़ी उतार दूँगा।'

हमने फिर सलाम किया। और आगे चल दिए। हमारे हाथ में जो कार्ड

थे वो लेकर एक पक्के काम का कैदी (पीली टोपीवाला) हमारे साथ चला। सुबह का वक्त था लेकिन बहोत तेज गर्मी थी। प्यास से गला सूखा जा रहा था। हम कुछ लोगों को पीली टोपीवाले ने एक खुले मैदान में लाकर कुछ समय के लिए छोड़ दिया। मैंने चारों ओर नज़र की, ऊँची-ऊँची दिवारों के अंदर एक अजीब गुनगुनाहट सुनाई दे रही थी। ये बड़ी-बड़ी बैरेक थीं। इस खुले मैदान में हम कौन सी बैरेक में जायेंगे ये तय होने वाला था। मुझे और बाप को ये ही डर था कि कहीं हम दोनों को अलग-अलग बैरेक में न डाल दें। पास ही में पानी की टंकी से पानी ऑवरफ्लो होकर नीचे गिर रहा था। सोचा, नहा लें और शरीर की प्यास बुझा लें। बाप ने आगे जा के पानी का छँटकाव कर लिया। कुछ और लोगों ने भी किया। इतने में वॉचमेन आ गया। उसने सबको एक थाली, एक कटोरी, नीचे सोने के लिए सुतर का बनाया हुआ बिछोना और ओढ़ने के लिए एक कटीला कम्बल दिया। वो हमें जैसे ही बैरेक में भेज रहा था कि अचानक कहीं से नवीन आ गया। नवीन को मैं बचपन से जानता था, उसका बाप छगन और मेरा बाप, दोनों साथ में ही गेम करने जाते थे। मेरा बाप नवीन का रिश्ते में मामा लगता।

नवीन ने आते ही वॉचमेन से कुछ बात की और बोला, 'मामा तुम मेरे साथ आओ, मेरे बैरेक में, मेरे पीछे-पीछे, जल्दी, नहीं तो कहीं दूसरे बैरेक में डाल देंगे।'

हमने आव देखा न ताव। सीधे उसके पीछे चल पड़े। जेल को दो विभागों में बाँट दिया गया था। छोटा चक्कर और बड़ा चक्कर। ये छोटा चक्कर था।

नवीन ने अपने पास की अच्छी सी जगह मुझे और बाप को दी। उसने पानी देते हुए कहा, 'मुझे पता था कि तुम लोग आनेवाले हो। कल पेपर में पढ़ा था। मैं जानता था कि कल शाम को तो तुम लोगों को आफ्टर में रखा होगा। वॉचमेन मेरा दोस्त है। वो लोग तो तुम्हें दूसरी बैरेक में डाल रहे थे। वहाँ जाते तो तुम्हें कल सुबह सारी बैरेक का झाड़ू मारना पड़ता।'

हम उसे सुन रहे थे। मेरी नज़र उसको सुनने के साथ-साथ चारों ओर घूम रही थी। कोई पेपर पढ़ रहा था, कोई टी.वी. देख रहा था तो कोई पूजा

कर रहा था। बैरेक की एक तरफ की दीवार पर देवी-देवताओं के फोटो लगाए हुए थे। हनुमान चालीसा पड़ा था। उसी के बगल में हमें जगह मिली थी। एक कोने में काठीयावाड़ी नाम का एक बंदा था जो दो-तीन मर्डर में बरसों से अंदर था । सारी जेल में उसकी जबरदस्त धाक थी, यहाँ तक के जेल में आग लगाना सबसे बड़ा गुनाह होता है और वो बंदा हर शाम बकायदा पेड़ से लकड़ी तोड़कर, कोने में आग लगाकर अपना खाना खुद बनाता। लेकिन कोई उसे कुछ नहीं कहता। नवीन से उसकी अच्छी पटती थी। नवीन जैसे उस सारी बैरेक का बॉस था। पासवाली खिड़की पे उसने हर तरह के खाने-पीने का साजो-सरंजाम रखा हुआ था।

नवीन ने बीड़ी निकाली और बाप को दी। बाप को जैसे स्वर्ग मिल गया। उसके जान में जान आई। हर दस मिनट में बीड़ी पीनेवाले मेरे बाप ने कल शाम से बीड़ी नहीं पी थी। वो आफ्टर में बीड़ी के बिना जैसे तड़प रहा था। उसे सुकून हुआ। नवीन के पास पूरी तरह से क्वोटा भरा पड़ा था। बीड़ी का बंडल अंदर सौ रुपये में मिलता है। बीड़ी जेल के अंदर मानो पैसा है। बीड़ी पिलाकर बड़े दादा कच्चे काम के कैदियों से मन चाहा काम करवाते, जैसे उनके कपड़े धोना, उनकी दाढ़ी बनाना, झड़ती आए तो माल छुपाना वगैरे... वगैरे...

बीड़ी का जेल के अंदर जाना ज़रूरी है। उसी से जेल चलती है।

नवीन ने हमारी कुछ लोगों से पहचान करवाई। इसी बीच कीरीट आया। कीरीट मेरे पुराने घर के पास ही रहता था। उसका बाप माताजी का भुआ था और वो कोई दो साल से अंदर था। ग्यारह बजे खाना आया। खाना खाया। नवीन ने पता नहीं कहाँ से, लेकिन लस्सी बनाई और हमें पिलाई। वो सारा दिन बातों ही बातों में और जेल की संस्कृति को समझने में गया। बाप बहोत सालों के बाद जेल में आया था। कायदे-कानून बदल चुके थे। सुबह के पाँच बज रहे थे। अचानक कान फट जाए ऐसी आवाज़ आई।

'जोड़ी-जोड़ी'।

नवीन ने पहले से समझाया हुआ था। मैं और बाप एक साथ जोड़ी-

जोड़ी में बैठे। आँखें नींद से भरी हुई थीं, खोलकर देखा तो आगे एक लंबी जोड़ी-जोड़ी की लाईन बनी थी। सबकी आँखों में नींद थी लेकिन आँखें खुली थीं।

तीन बार गिनती की गई। गहरी नींद से जागते ही दोनों पैरों पर लंबे समय तक बैठे रहना बहोत तकलीफ दे रहा था। कुछ लोगों को बैरेक बदलने के लिए कहा गया। और दूसरी बैरेक से कुछ मुसलमान भाइयों, जिन्हें गोधराकांड में पकड़ा गया था, उन्हें लाया गया । जैसे ही ये गिनती खत्म हुई आधे से ज़्यादा लोग फिर से सो गए।

घर में पैसों की तंगी ने माँ और बहनों को हताहत कर दिया था। वो जहाँ-तहाँ हाथ फैला रहे थे। परिवारवालों के जेल के चक्कर शुरू हो गए थे। कभी मुलाकात के लिए तो कभी वकील मुलाकात के लिए। घर के दोनों कमानेवाले सभ्य जेल में थे। परिवार परेशान था। इस स्थिति में मेरी बहन नीलम हमे छुड़ाने के लिए दौड़-भाग कर रही थी।

इस समय दौरान मेरे एक दोस्त सुनील ने काफी दौड़भाग की। सुनील बम्बई से आया हुआ था और कोर्ट-कचहरी के मामले में किसी अच्छे खासे वकील से भी आगे था। राकेश जीजु और सुनील दोनों किसी ऐसे वकील की तलाश में थे जो सेशन्स कोर्ट में हमारा जामीन करवा दे। धंधा पुलीस ने बंद करवा दिया था।

सुनील रोज जेल आता, बाहर पुलीसवालों से सेटींग कर के दिन में दो-दो बार हमारी मुलाकात करवाता। सुबह जब वॉचमेन लिस्ट लेकर आता और मुलाकात के लिए सबके नाम बोलता तो दिल-दिमाग जैसे सतर्क हो जाता और इन्तज़ार करता अपना नाम सुनने का। मुलाकात के लिए भी काफी लंबी लाईन रहती। माँ से, बच्चों से मिलने की उत्सुकता और वहाँ तक पहोंचने के लिए थका देने वाली प्रोसेस से कई बार हताश हो जाता। मुलाकात का रूम एक लंबा कोरीडॉर जैसा था। बीच में सलाखें और एक मोटी सी जाली थी जिस में से परिवार के लोगों को देखना भी हो तो बार-बार धुँधलापन आ जाता था।

जैसे ही मुलाकात शुरू होती एक साथ दोनों तरफ से तकरीबन पच्चीस-तीस लोग बोलने लगते। हर एक अपनी बात कहने के लिए चिल्ला रहा होता। सुनील कोशिश करता कि उस लोहे की जाली के नीचे से जैसे-तैसे घुसाकर हमें पैसे दे जो बाप को अंदर बीड़ी खरीदने के लिए काम आए। मुझे और बाप को देखकर सारा परिवार जैसे टूट जाता। आँखों में आँसू लिए जोर-जोर से बार-बार पूछते रहते,'तुम कैसे हो ? अंदर कोई तकलीफ तो नहीं है ? कोई मारता तो नहीं है ? पुलीस हैरान तो नहीं करती...? घर में... सब ठीक है। पैसों की व्यवस्था हो जाएगी, अच्छा वकील करेंगे और अगली तारीख तक छुड़वा लेंगे... घर की चिंता मत करना।' वगैरे-वगैरे...

मुलाकात की पाँच मिनीट की एक भी सेकन्ड दोनों तरफ से कोई भी बिगाड़ना नहीं चाहता था। मुझे याद है एक बार मेरी बेटी साक्षी मुझे देखकर रो पड़ी थी और 'पापा... पापा...' कहकर लोहे की जाली पकड़कर अपनी छोटी-छोटी उँगलियाँ मुझे छूने के लिए बढ़ा रही थी। उसकी नन्ही उँगलियाँ जाली के अंदर तक आ गयीं और मैं अपनी प्यारी सी बच्ची को छूने के लिए अपनी उँगलियाँ घुसाने की कोशिश करने लगा। मैं उस चिल्लम-चिल्लम में साक्षी को शांत रहने के लिए कह रहा था कि उस बाज़ार में अचानक दिल दहलानेवाली जोरों की आवाज़ आई और दोनों तरफ से पुलीस ने अंदर आकर मुलाकात रूम खाली करवा दिया। मैं साक्षी के आँसू नहीं पौंछ पाया। हम दोनों अपने-अपने रास्ते चल दिए। आज बाप की आँखों में आँसू देखे। साक्षी का रोना उससे शायद देखा नहीं जा रहा था।

जेल में जब जेलर अचानक झड़ती के लिए आता तो मानो उस बैरेक में हल्ला-बोल मच जाता। बीड़ी के बारे में नवीन ने बाप को कोई तकलीफ नहीं होने दी। लेकिन एक दिन अचानक जोरों की सीटी बजी और धड़ाधड़ एक के बाद एक जेल अधिकारी ने बैरेक पर रेड किया। चारों ओर भगदड़ मच गई। जिसके पास तमाकु, गुटखा, बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, चरस जो भी था वो सब यहाँ-तहाँ छुपा दिया। किसी ने संडास में जाकर नल के मुँह में छुपाया तो किसी ने गुटखा जैसी चीजों को संडास के अंदर डाल दिया। नवीन

ने बीड़ियाँ खिड़की की जाली के नीचे छुपाई... झड़ती आई, एक-एक को खड़े करके पुलीस बिलकुल बारीकी से तलाशने लगी। ये बहोत ही डरावना मंज़र था। सब की फटी पड़ी थी की अगर किसी का भी माल हाथ में आया तो सबकी बुरी तरह से पिटाई होगी। शुक्र है ऐसा नहीं हुआ। जेलर ने कुछ लोगों की बैरेक अदल-बदल की और फिर चल दिया।

आलोक, मेरी नाट्य यात्रा का साथी, 'दोस्त, यहाँ कभी एक शहर था' नाटक के मंचन के लिए तेजगढ़ गया था। वो मंचन के बाद सर के सामने खूब रोया । उसके कुछ ही दिनों बाद गणेश देवी, महाश्वेता देवी, के. सच्चिदानंद और भुपेन खख्खर ने एक सामूहिक पत्र अखबारों में जारी किया जिसमें मेरी गिरफ्तारी और मुझे जेल से मुक्त करने के लिए आहवान किया गया था। मुझे जामीन मिलने में ये काफी मददरूप रहा।

सुनील और राकेश जीजु ने दौड़-भाग कर के सेशन्स कोर्ट से जामीन तो करवा दिया लेकिन ये शर्ती जामीन था जिसके तहत मुझे और बाप दोनों को, तीन महीने के लिए अपने विस्तार से तड़ीपार किया गया। अगर हम अपने घर या इलाके में जाने की कोशिश करते हैं और पुलीस पकड़ती है तो जामीन रद्द किया जाता और जब तक ट्रायल चलती तब तक हमें जेल में ही रहना पड़ता।

ये जेल से ज्यादा तकलीफदेह था। घर के पास होते हुए भी घर नहीं जा सकते थे। इन दिनों गणपत ने सहारा दिया। उसने हमें एक खोली दी। मैं और बाप वहाँ रहने लगे। काफी समय से नाटक नहीं हो रहा था। मेरे जेल में जाने से सारे साथी कलाकार भी परेशान हो गए थे। वो लोग मुझे खोली में ही मिलने आते। इसी दौरान एक अभूतपूर्व खबर मिली। आलोक को 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' में एडमिशन मिल गया था । छारानगर में सांस्कृतिक कला द्वारा एक नई पहचान बनने की शुरूआत हुई ।

जेल में खदबदती ज़िंदगियाँ, उस में रहनेवालों के सपने और जेल जीवन को जितना समझा, इन सब पर एक कविता लिखने की कोशिश की। शीर्षक दिया, 'यात्रा बंदिशों की'।

अंग्रेजों की बनाई बंदिशें, खड़ी हैं आज भी उन्मत्त
जहाँ रोज़ हज़ारों सपने मरते हैं, मारे जाते हैं, पल पल...
निर्दोश आँखों में कई आज़ादी के दीपक जलते हैं, बुझते हैं,
काले कोट से सुसज्जित अदालतों की तारीखों के बीच
ज़िंदगी जहाँ दम तोड़ती है, पल पल...
सुबह छः बजे, किवाड़ की धम्म आवाज़ के साथ,
रात भर न सोई नींद टूटती है और जोड़ियाँ बनती हैं,
बीड़ी का एक कश, आधिपत्य है यहाँ कमज़ोरों पर,
जिसका धुँआ, तलप और समय काटने का साधन है,
सांप्रत समाज में कहा जानेवाला गुन्हेगार
यहाँ साथी है एक दूसरे गुन्हेगार का...
लोहे को पिघला दे ऐसे झुनून को दिल में पाल,
यहाँ खुश रहने की कला सीखी जाती है।
यहाँ राम और बाबरी को अनदेखा, अनसुना कर...
लोहा भरी ज़मीं पर नमाज़ पढ़ी जाती है, तो कहीं पूजा की जाती है।
लोहे की सलाखों पर रामजी जेलर की लकड़ी की टननन आवाज़,
एक अनजाने से खौफ से रूह काँप उठती है...
यहाँ 'सो कॉल्ड' समाज से आकर आत्मा को पिघलाया जाता है,
और जो लोहा बनता है, वो लोहे को पिघलानेवाला होता है।
आज़ादी के लिए चढ़ाई गई बलियाँ फाँसी के मंच को देख,
उसका एहसास, आज़ादी के एक अजीब झुनून को पैदा करता है।
आज भी...
लेकिन फर्क इतना सा है,
ये बंदिशें अंग्रेजों ने बनायीं
और आज काले अंग्रेज हैं।

मैं जेल से बाहर आया। आलोक 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' चला गया। 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' में प्रवेश के लिए उसे सोलावंशी देनी थी जो मेरी माँ ने उसे दी। मेरे परिवार के कठोर समय में ये सोलावंशी ही आय का एक ज़रीया थी। छारानगर में जिस किसी को कोर्ट में छूटने के लिए सोलावंशी की ज़रूरत होती, वो माँ के पास आते और उसके बदले माँ को कुछ पैसे मिलते जो घर के काम आते। आलोक के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय जाने से माँ की आय का ये ज़रीया भी बंद हो गया। तीन साल तक अब वो किसी को भी अपनी सोलावंशी नहीं दे सकती थी । वो रो रही थी लेकिन मेरी जिद के सामने मजबूर थी।

माया, मेरी बीवी, मेरी बेकारी और बिना कमाई के नाटक और समाज सेवा से तंग आ गयी थी। पुलीस की सख्ती की वज़ह से छारानगर में अंग्रेजी शराब और बीयर की मारामारी चल रही थी। काफी ऊँचे भाव मिल रहे थे। माया से रहा नहीं गया और एक दिन बोल उठी, 'चल, आबु रोड चलते हैं। दोनों साथ जाएँगे और आएँगे तो किसी को शक भी नहीं होगा। वहाँ से सस्ते भाव में बीयर लेकर आते हैं। मूडी (पैसों) का इन्तज़ाम मैं कर लेती हूँ।'

मैं इस काम के लिए तैयार नहीं था। 'मुझे मत मारो साब' नाटक के शो चल रहे थे। डर था की कहीं पकड़े गए तो मरे समझो।

माया झल्ला उठी, 'ऐसे हाथ पे हाथ रखकर बैठे रहने से भगवान पैसे नहीं दे देगा। उसके लिए हाथ-पैर हिलाने पड़ते हैं। स्कूल में फीस के लिए बच्चे रोज़ टीचर्स के ताने सुनते हैं, मुझसे तो नहीं रहा जाता। तुम नहीं आओगे तो मैं अकेली चली जाऊँगी।'

मैं समाज, इज्जत, मान-मर्यादा, 'बूधन थियेटर' के बारे में सोच रहा था।

'तुम सोचते रहो... मैं तो मूडी की व्यवस्था करने जा रही हूँ। कल निकल लूँगी। मुझसे और बर्दाश्त नहीं होता।'

और वो जाने लगी। मैंने उसे रोका । कहा, 'चल, मैं भी आऊँगा, ये

भी करके देख लेते हैं। नसीब को जो मंज़ूर।'

हम दोनों आबु रोड की ओर निकल पड़े। वहाँ जाकर तीन पेटी माल खरीदा। माया घर से बहोत सारे रद्दी कागज़ लेकर आई थी। उसने बड़ी अच्छी तरह से पेकिंग की जिससे दो बोतलें आपस में न टकराएँ और आवाज़ न आए। तीन पेटी बीयर का वजन उठाने में पसीने छूट गए। मुश्किल से बस मिली और जैसे-तैसे राजस्थान बॉर्डर चेक-पोस्ट पार किया। चैन की साँस ली।

माया हमारी नन्ही सी दूध पीती बच्ची सुहानी को घर छोड़ आई थी। रास्ते में माया की छाती दूध से माने अकड़ गई। दो दिन हुए थे उसने बच्ची को दूध नहीं पिलाया था। वो मछली की तरह तड़पने लगी। ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर जब बस चलती तो माया मानो चिल्ला उठती। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ। उससे रहा नहीं गया और उसने अपनी छाती को दबा-दबा के अपनी हथेली पर दूध निकालने की कोशिश की। ये बहोत दर्दनाक था। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। मैं एक माँ को उसके बच्चों की फीस भरने के लिए तड़पता देख रहा था। उस सफर में मैं मूक बनकर उसका शारीरिक प्रताड़न देख रहा था। थोड़ा कुछ दूध निकलने के बाद माया को शांति हुई।

मैंने राहुल को फोन कर दिया था। वो रिक्षा में नरोडा पाटीया आया और माल को रिक्षा में डालकर जहाँ पहोंचाना था वहाँ पहोंचा दिया। कुछ पैसे मिले। बच्चों की फीस भर दी।

आज समय के साथ सब कुछ बदल गया है। हमारे दादा की पीढ़ी ने गुनहगारिता का जीवन जीते हुए भी, पुलीस के दमन और अत्याचारों के बावजूद, अपनी बदनाम कोम में शिक्षा की नींव डाली। आज स्थिति ये है की समाज में शत-प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा है। माँ भले ही शराब निकालेगी लेकिन बेटी को स्कूल भेजेगी। छारानगर में सुबह के समय भट्ठियाँ शुरू हो जाती हैं। इसी दौरान रोज़ सुबह नन्हे बच्चे-बच्चियाँ स्कूल जाते हैं। इस तरह का माहौल बनने के लिए काफी समय लगा है। कई पीढ़ियाँ गुज़र गई हैं।

पेन लड़खड़ा रही है। आँखें नींद से भर गई हैं। गुड नाइट।

सुबह के कोई छः बजे का समय था। अचानक कानों में किसी के रोने की आवाज़ आई। ये सिर्फ रोना नहीं था, कल्पांत था। गर्मीयों का समय था, इसलिए मैं छत पर सोया हुआ था। आँखें खोलकर नीचे देखा तो सड़क पर जन्ना भुआ बैठी थी और अपनी छाती पीटकर कल्पांत कर रही थी। पास ही बैठी रीना मरशिये गा रही थी।

'और मुन्ना, तो हमकु छोड्डी कर काँही कु चल्या गया, हमकु छोडी गया, तेरी कितनी दवा करी तो भी तो हमकु छोड्डी कर चल्या गया।' (अरे मुन्ना, तू हमें छोड़ क्युं चला गया, हमे छोड़ गया ! तेरी कितनी दवाइयाँ की लेकिन फिर भी तू हमें छोड़कर चला गया।)

जिस बेटे को भुआ ने नौ महिने पेट में रखा, पाला, बड़ा किया, वो भरी जवानी में ही चल बसा। भुआ का जैसे कलेजा फटा जा रहा था।

'मेरा बेटा... क्या इसलिए तुझे पाला-पोसा था ? भरी जवानी में माँ को छोड़ के चला गया । मेरा लाड़ला, कहती थी दारू...छोड़ दे ... दारू... छोड़ रे... सत्यानाश हो जाए इस दारू का, मेरे बच्चे को ले गई .....अब हूँ किस के सहार जीवा मुन्ना... (अब मैं किस के सहारे जीऊँ मुन्ना) ?'

मैं देख रहा था उसकी दूसरी बहू ज्योति अपनी दारू की भट्ठी चालू रखे थी। बच्चे को चाय पिला रही थी। लग रहा था जैसे सब को पता ही था कि ये दिन तो एक न एक दिन आनेवाला है। हाँ। सब को पता था।

मुन्ना पिछले कई महीनों से बिस्तर पर पड़ा था। पहले तो बहोत शराब पीता, इसकी वज़ह से टी.बी. ने उसके शरीर में घर कर लिया था । सबसे ज़्यादा भुआ उसे समझाती लेकिन वो नहीं मानता। कोई चिन्ता उसे अंदर ही अंदर खाए जा रही थी। भुआ ने बड़ी मुश्किल से उससे दारू की लत छुड़ाई, लेकिन तब तक टी.बी. बहोत बढ़ चुका था।

वो हमेशा से ऐसा नहीं था। काफी स्वस्थ और हर तरह के व्यसन से मुक्त था। बाप के सट्टे के अड्डे पर हाजर, माँगपत्ता, चकरड़ी चलाता। उसने भी काफी पैसे बाप को कमा के दिए। तास के पत्ते चलाने में मास्टर मुन्ना के

कमाए पैसों से हमें खाना मिलता। हमारी पढ़ाई के खर्चे निकलते। उसका कमाया हुआ नमक अब भी हमारे खून में दौड़ रहा है। मैंने अपना कर्ज़ चुकाना चाहा।

काफी समय से उसे बाहर सड़क पर बिस्तर पर पड़े देख रहा था। उसकी मौत के एक महिने पहले मैंने उससे बात की थी, 'क्या मुन्ना, तू सारा दिन बिस्तर पर पड़ा रहता है। थोड़ा घूम-फिर तो शरीर में कुछ शक्ति आएगी।'

'अरे, क्या यार, अब तो उठने की भी ताकत नहीं रही।'

'दवाई चालू है ?'

'पैसे ही नहीं हैं।'

'अरे यार, ये सरकार का सेनेटोरीयम होम है वहाँ दाखिल हो जा। सारा खर्च सरकार उठाती है।'

'तू ही इतना काम कर दे। यहाँ तो ये साले मुझे मारकर ही दम लेंगे।'

'क्यूं ?' मैंने आश्चर्य से पूछा ।

'अरे क्युं, क्या ? पता नहीं कितने लोगों ने मेरा बीमा करवा रखा है ? मैं मर जाऊँगा तो जिन्होंने मेरा बीमा करवाया है वो लखपति बन जाएँगे। ऐसे कोई छः-सात लोगों ने मेरे प्रिमियम भरे हुए हैं,' मुन्ना काफी हताश होते हुए बोला।

'तो तू उनको लखपति बनाने के लिए मरना चाहता है ? एक बात बता, इससे तुझे क्या फायदा होगा ?'

'वो लोग बीमे की रकम में से दस प्रतिशत मेरी बीवी को देंगे।'

'कितने का बीमा है ?'

'कोई सात-आठ लाख का है।'

'तो इसका मतलब अस्सी हज़ार रुपये तेरी बीवी को मिलेंगे। इससे तेरी बीवी और तेरे बच्चों का सारी ज़िंदगी का गुज़ारा चल जाएगा ?'

'नहीं चलेगा, लेकिन क्या करूँ ? मैं जल्दी मर जाऊँ इसलिए कोई मेरी ठीक तरह से दवाई भी नहीं करता। लोग राह देख रहे हैं मेरे मरने की। बीवी

के पास पैसे नही हैं। एक बात कहूँ दक्षिण? यार, कुछ भी कर। मुझे जीना है। नहीं तो मेरे बच्चे अनाथ हो जायेंगे।'

उसकी आँखों में आँसू थे। मौत का डर था और जीने की लालसा थी।

मैंने उससे वादा किया की मैं उसे सेनेटोरीयम में दाखिल करवा दूँगा। पर इसके पाँच-सात दिनों बाद मेरा एक्सीडेन्ट हुआ। ऑपरेशन करना पड़ा और मैं दो महिने के लिए बिस्तर पर आ गया। मैं कुछ नहीं कर पाया। मुन्ना मर गया। अब उसके साथ उसकी वो खटोली भी जला दी जाएगी जिस पर वो सोया पड़ा रहता था। भुआ अपने बेटे की सेवा से मुक्त हो गयी थी। पिछले कई महिनों से मेरे घर के आंगन में खटोली पर पड़ी वो ज़िंदा लाश अब कभी दिखाई नहीं देगी। किसी को चैन तो किसी को पैसा मिलेगा।

पैसों की लालसा के इस नंगे नाच के बारे में मुझे लिखने की इसलिए ज़रूरत पड़ी है क्युंकि पिछले दस-बारह सालों में तकरीबन दो सौ लोगों की असमय मौत हुई है, और उनकी मौत की वज़ह ये लुभावनी बीमा कंपनीयाँ और मेरे ही समाज का पैसेदार प्रबुद्ध वर्ग है। जिन्होंने पैसों के जोर पर कई मेरे जैसे युवाओं की ज़िंदगियों का सौदा उनकी बीवी या उनके परिवारों से किया। मैं इसे एक तरह का सामूहिक हत्याकांड कहूँगा जिसमें सबसे ज़्यादा मेरी उम्र के युवाओं ने जानें दीं। इनमें कुछ अशिक्षित तो कुछ पढ़े-लिखे युवा भी थे। इन्हें छारानगर की दारू ने निगल लिया। वो बच सकते थे अगर उन्हें बचाया जाता। कागज़ी तौर पर बीमा में नॉमीनी बीवी या घरवाले होते, लेकिन पैसों के जोर पर बीमा कंपनी के लोगों के साथ ऐसा सेटींग किया होता की चैक उन प्रिमियम भरनेवाले लोगों को मिलता। फिर बैंक के चक्कर साथ में लगाए जाते। नॉमिनी के अँगूठे का निशान या हस्ताक्षर एडवान्स चैक पर पहले से ले लिया होता। गरीब बीवी या घरवाले दस फीसदी हिस्से से भी खुश हो जाते और लाशों के बाज़ार का ये पैसा उन पैसेदार प्रबुद्ध लोगों की तिजोरियों में कैद हो जाता।

इस लाशों के बाज़ार के खेल में छारानगर से बीमा कंपनी के मैनेजर तक, सब शामिल होते। मैं जानता हूँ ये लिखने के बाद सामाजिक तौर पर

मुझे बहोत सहन करना पड़ेगा। लेकिन ये सत्य है और इसके परिणाम के लिए मैं तैयार हूँ।

छारा समाज पहले ऐसा नहीं था। जब लोग अशिक्षित थे और मुख्यधारा की परछाई उन पर नहीं पड़ी थी तब हमारे ज़्यादातर लोग चोरी, उठाईगिरी, कच्ची शराब की भठ्ठी करते थे । उस दौरान लोग सामाजिक तौर पर काफी संगठित थे। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से शहरी प्रभाव बढ़ा और शहरी संस्कृति के नकारात्मक विचारों ने छारा समाज को अपने प्रभाव में दबोच लिया और नतीजा हम अभी-अभी पढ़ चुके हैं।

तो मैं इन नकारात्मक विचारों के प्रभाव में क्युं नहीं आया ? शायद इसलिए की शिक्षित होते हुए भी मेरे अंदर एक कलाकार था। संवेदना और अन्याय के लिए लड़ना जैसे मेरा जीवन बन चुका था। अगर मैं नाटक नहीं करता, नहीं लिखता तो आज या तो मैं सटोरिया होता या फिर चोर। सटोरिया इसलिए क्युंकि वो बाप की पीढ़ी थी और चोर इसलिए की वो अब तक जीये जीवन के समय की माँग थी। बाप दादाओं की ये पारंपारिक कला हमारे खून में दौड़ रही है। नाटक द्वारा हमने हमारी ही दुनिया के लोगों का जीवन जीया, उसका अनुभव किया, उसे अभिव्यक्त किया। ये अभिव्यक्ति हमारी नई पहचान बनने के साथ-साथ हम कलाकारों को भी अंदर से बदल रही थी। एक बदनाम समाज के बीच रहते हुए भी नाटक ने हमें अच्छे विचार दिए, हमारी शक्ति का सर्जनात्मक उपयोग हुआ।

बदलाव की ये प्रक्रिया जितनी लिखनी आसान है उतनी असल में नहीं थी। ज़्यादातर पुलीस विरोधी नाटकों के लेखन और मंचन के कारण प्रत्यक्ष या परोक्ष तरीके से हम कलाकारों को या हमारे परिवारवालों को जेलें दिखाई गयीं। करीबन सभी कलाकारों के घरों में पुलीस विरोधी नाटक खेलने की वज़ह से माँ-बाप या पत्नी के बीच मनमुटाव या गाली-गलौज चलता रहता।

हमने हर तरह की स्थिति में नाटक खेले । नाटक करने की कटिबद्धता से कलाकारों में सामाजिक कर्मशीलता आई। समाज में अन्याय के सामने लड़नेवाला एक समूह खड़ा हुआ। घुमन्तु विमुक्त जनजातियों की वो आवाज़

बना। ये आवाज़ नाटक और अन्य माध्यमों द्वारा देश के कोने-कोने पहोंची। नाटक की वज़ह से लोगों ने हमें सम्मानीय दृष्टि से देखना शुरू किया। हमारा स्वीकार किया। लोगों ने हमारे बारे में सकारात्मक दृष्टि से लिखना शुरू किया। उन शब्दों ने आम आदमी की मानसिकता को बदलने की कोशिश की।

मुझे याद है, मैं 'गुजरात सोशियल फोरम' में अपने कुछ आदिवासी कलाकार मित्रों के साथ गया हुआ था। दोपहर में हम एक रेस्तरां में बैठकर खाना खा रहे थे। मेरे आदिवासी मित्रों ने अपने पारंपारिक कपड़े पहने हुए थे जिन्हें शहरी आँखें घूर-घूरकर देख रही थीं। मेरे सामने दो वृद्ध व्यक्ति बैठे थे। कपाल पर उन्होंने तिलक लगाया हुआ था जिससे वो स्वामिनारायण संप्रदाय से थे ये मालूम होता था। उनकी आँखें भी मेरे आदिवासी मित्रों की ओर थीं।

उन्होंने उत्सुकतावश मुझसे पूछा, 'कहाँ से आए हैं ये लोग ? आदिवासी लगते हैं।'

'ये आदिवासी ही हैं,' मैंने कहा । छोटाउदेपुर से आए हैं।'

उन्होंने मेरी ओर देखा, 'आप कौन हैं ? आप कहाँ रहते हैं?'

'मेरा नाम दक्षिण है। और मैं यहीं अहमदाबाद में रहता हूँ।'

'अहमदाबाद में कहाँ ?'

'छारानगर में,' मैंने एक निवाला मुँह में लिया।

'छारानगर में ?' उन्होंने याद करते हुए कहा, 'मैंने कहीं पढ़ा था कि आप लोग बड़ा अच्छा नाटक करते हैं। नाटक के क्षेत्र में आपको काफी सिद्धियाँ मिली हैं।' उन्होंने मुझे घूरते हुए कहा, 'अब आप पहले जैसे नहीं रहे। सुधर रहे हो। कलाकार बन गए हो।'

मेरे लिए प्रबुद्ध समाज के इन वयोवृद्ध व्यक्तिओं के मुँह से 'कलाकार बन गए हो' सुनना जैसे एक सपना सा था।

अन्याय के खिलाफ आवाज़ अब पहचान बनती जा रही थी।

पर छारा होने के नाते कई बार बेइज्ज़ती भी सहन करनी पड़ती है।

मुझे 'भाषा' संस्था ने 'आदिवासी एकेडमी' के लिए घुमन्तु व विमुक्त जनजातियों के डॉक्युमेन्टेशन का काम दिया था। मैं भरवाड जनजाति के दोस्त, वसंत और लालजी तथा मदारी समाज के रमेश मदारी के साथ गुजरात के बनासकांठा तालुका के थराद गाँव गया हुआ था। यहाँ भरवाड समाज का बहोत ही बड़ा मेला हो रहा था और भोलेनाथ भगवान के मंदिर का अनावरण होने वाला था। हम तीनों वहाँ पहोंच गए। मेरे पास एक छोटा सा फोटो कैमेरा था। मैं उससे तस्वीरें ले रहा था। मंदिर के ऊपर सोने के कलश का प्रतिष्ठान होने वाला था। मैंने नज़दीक से तस्वीर खींचने के लिए अपना स्थान ले लिया था।

अचानक कुछ लोग चिल्लाते हुए आए और लकड़ियों से इशारा कर के मुझे नीचे बुलाया। उन सब के हाथों में लकड़ियाँ थी। मैं समझ नहीं पा रहा था कि ये सब क्या हो रहा है। मेरे नीचे उतरते ही एक ने पीछे से मेरा गिरेबान पकड़ा, किसी ने पीछे से मेरी पेन्ट पकड़ी, दो-तीन लोगों ने मुझ पर हाथ सफाई कर ली। मैं हक्का-बक्का रह गया, समझ नहीं पाया की क्या हो रहा है... वो सब धक्का देते हुए मुझे बाहर निकाल रहे थे, उन्होंने मेरे कंधे पर लकड़ी डालकर हाथ उस में फँसा दिए थे। इतने में वसंत, लालजी और रमेश भी वहाँ आ गए।

उन लोगों को थोड़ा शांत कर के मैंने उनसे पूछा, 'अरे भाई, क्या बात है ? आप लोग मार क्युं रहे हो ? क्या किया है मैंने ?'

मैं हड़बड़ा गया था। उनमें से एक ने कहा, 'क्या किया !? मंदिर पर क्या कर रहा था ?'

'फोटो खींच रहा था और क्या ?' मैंने कहा।

'अच्छा ! फोटो खींच रहा था... या फिर हमारे सोने के कलश की चोरी करने आया है ?'

मेरे दिमाग पर जैसे हथौड़ा पड़ गया हो। 'कलश की चोरी ? क्या बात कर रहे हो भाईसाब ? मैं कोई चोर नहीं हूँ, मैं तो फिल्में बनाता हूँ और तेजगढ़ 'आदिवासी अकादमी' के लिए फोटो खींच रहा था।'

एक ने पीछे से मेरे सर पर ठोक दी।

'ला। कार्ड ला। कौन सी 'आदिवासी एकेडमी' ? कैसी एकेडमी?'

'अरे लेकिन मैं कोई चोरी करने नहीं आया...'

उन में से एक बंदा चिल्लाया, 'मुँह बंद कर साले! तेरी हिंमत कैसे हुई हमारे मंदिर में पैर रखने की? तू जब से यहाँ आया है तेरे पर ही मेरी नज़र है। कहाँ रहता है तू ? बोल...' उसने लकड़ी उठाई।

'अहमदाबाद।'

'अहमदाबाद में छारानगर में रहता है ना तू ? छारा है ना ? मैं भी वहीं रहता हूँ। चल जा यहाँ से नहीं तो हाथ-पैर तोड़कर पुलीस में दे देंगे। वो धोयेगी सो अलग। चल बाहर निकल।'

उन्होंने धक्का दिया। मैं डर गया। अगर पुलीस आ गई तो फालतू में बात बढ़ जाएगी। लालजी और वसंत ने उन्हें समझाने की बहोत कोशिश की लेकिन उन लोगों ने उन्हें भी सुना दी, 'शरम आनी चाहिए तुम लोगों को, छारों से दोस्ती करते हो।'

उन लोगों न रमेश की ओर देखा। वो बहोत घबरा गया था। पूछा, 'ये कौन है ?'

लालजी बोला, 'हमारे साथ ही आया है, रमेश नाम है।'

'जात क्या है ?'

'मदारी है... लेकिन इसमें...'

उसकी बात को काटते हुए बोले, 'इसको भी बाहर निकालो।'

हमें धक्के मारकर मंदिर के स्थान से बाहर निकाल दिया गया। वसंत और लालजी काफी शर्म महसूस कर रहे थे। मैं बाहर जाकर एक कोने में खड़ा हो गया। कलश के अनावरण का इन्तज़ार किया। उसकी काफी दूर से तस्वीर खींची और वहाँ से काम पूरा होने की संतुष्टी से घर की ओर निकला। जब भी मेरे साथ इस तरह के वाकियात होते तो मैं हताश नहीं होता। मुझ में और ज़्यादा काम करने की शक्ति का संचार होता है। शायद इसलिए भी कि

इस तरह के वाक्यात हमारे जीवन का ही एक भाग बन गये हैं ।

मेरी ज़िंदगी के काफी सारे वर्ष ऐसे भी गुज़रे हैं जब मुझे दूसरों की मदद पर ही निर्भर होना पड़ा है। रहना पड़ा है। मैं हमेशा से ही फिल्म निर्देशक बनना चाहता था। फिल्में बनाने की कल्पना शक्ति नाटक लिखने और मंचन करने में भी सहायक रही। नाटक तो मैं छारानगर में ही करता लेकिन फिल्म के लिए काफी घूमना पड़ता। इस संघर्ष में नैनेश मेरी काफी मदद करता। जब भी मुझे कहीं जाने के लिए पैसों की ज़रूरत होती तो नैनेश पचास-सौ रुपये देता और मैं गाड़ी में पैट्रोल भरवाकर निकल पड़ता।

वो भी यही चाहता था कि मैं एक दिन सफल फिल्मकार बनूँ। कभी नैनेश, तो कभी सुनील, कभी माँ-बाप तो कभी दादी या भुआ से खर्चे-पानी का जुगाड़ हो जाता। मुझे कभी माँगने में शरम नहीं आई। क्युंकि मैं अच्छे काम के लिए माँग रहा था। खैर!

इसी बीच 'भाषा' संस्था से मुझे रोज़गार मिला। मुझे हफ्ते में तीन दिन 'आदिवासी अकादमी' के विद्यार्थियों को नाटक और फिल्म निर्माण सिखाने की जिम्मेवारी दी गयी। मैं छारानगर और तेजगढ़ में बँट गया था। तीन दिन छारानगर में नाटक और तीन दिन तेजगढ़ में। एक दिन मुश्किल से बच्चों के लिए मिलता। इस दौड़-धूप में जो मिलता उस में आधे से ज़्यादा उत्तर की पढ़ाई में लग जाता। घर की आर्थिक स्थिति बहोत ही खराब थी।

एक दिन मैं 'भाषा' की ऑफिस में किसी मीटींग के लिए गया हुआ था। इस मीटींग के लिए कोठंबा से कुछ मदारी आए हुए थे। श्रीमती महाश्वेता देवी भी बरोडा आई हुई थीं। बाबुनाथ और अर्जुननाथ मदारी ने देवी सर के हाथ में एक गुजराती पेपर का पर्चा दिया जिस में साँपों का मजमा दिखानेवाले मदारियों पर वन विभाग और प्राणी सहायक फाउन्डेशन द्वारा किए जा रहे अत्याचार और अमानवीय व्यवहार का ब्योरा था।

सर ने वो पर्चा पढ़ने के बाद मुझसे कहा, 'दक्षिण, क्या तुम मदारियों की इस समस्या पर एक पाँच मिनट की फिल्म बना सकते हो ?'

फिल्म बनाने और नाटक करने के लिए मैं हमेशा तैयार रहता। मैंने 'हाँ' कही और निकल पड़ा शूटींग करने। जैसे-जैसे शूटींग कर रहा था मदारी समाज के पारंपारिक रोज़गार के साथ जुड़ी इस समस्या की तह तक जा रहा था। फिल्म में नाट्य रूपांतरण करने की ज़रूरत थी। इसके लिए मैंने मदारी समाज के लोगों से ही अभिनय करवाया। अनुभव के साथ जुड़ा हुआ वास्तविक अभिनय था वो।

फिल्म बनाने के बाद उसे कई जगह दिखाया गया। मदारी समाज पर प्राणी सहायक स्वयंसेवी संस्थाओं और वन विभाग द्वारा हो रहे अत्याचारों के बारे में काफी चर्चा हुई। एक संवाद शुरू हुआ। इस फिल्म के लिए मुझे सन् २००५ का 'जीविका साउथ एशिया डॉक्युमेन्टरी अवॉर्ड' मिला।

अवॉर्ड में एक अच्छी सी ट्रोफी के साथ-साथ पच्चीस हज़ार रुपये मिले थे। अवॉर्ड से ज़्यादा मुझे इन पच्चीस हज़ार रुपयों की बहोत खुशी थी क्युंकि कुछ ही महीनों बाद मेरी छोटी बहन चेतना, जिसे मैं बच्ची कहता हूँ, उसकी शादी होने वाली थी। तारीख तय हो चुकी थी और पैसों का कहीं से भी कोई इन्तज़ाम नहीं हो पा रहा था। नीलम, कुंता, कोइना, सभी हाथ-पैर मार रहे थे। ऐसी स्थिति में ये पच्चीस हज़ार रुपयों का मिलना मानो दुनिया मिल गई हो ऐसा था। अवॉर्ड के रुपए चैक से मिले थे । अवॉर्ड के पैसों के लिए बैंक के चक्कर लगा रहा था । अवॉर्ड के पैसे आने वाले हैं, इस आधार पर चेतना की शादी के लिए पैसे उधार लिए थे । किसी कारणवश पैसे जमा नहीं हो रहे थे और लेनदार दबाव कर रहे थे ।

अपने आदिवासी दोस्तों को नाटक सिखाने तेजगढ़ गया था कि पता चला सुहानी की तबीयत बहोत खराब है । डॉक्टर ने कहा, 'खून की कमी है, खून देना पड़ेगा ।' पुलीस ने जुआ चलाने की अनुमति दी हुई थी, पैसों का थोड़ा बहोत इंतज़ाम वहीं से हो जायेगा... माया के पेट में सात महीने का बच्चा था। उसके शरीर में भी खून की काफी कमी थी। डॉक्टर ने कहा,'अगर इसे भी खून नहीं चढ़ाया तो इस बार की डिलीवरी कॉम्प्लीकेटेड हो सकती है ।' सुहानी को अस्पताल में दाखिल करना पड़ा। तेजगढ़ से

लौटकर मैंने कुछ पैसों का जुगाड़ किया । नसीब से हो भी गया । अब माया के लिए कुछ जुगाड़ करना पड़ेगा।

कलेश्वरी में होनेवाले घुमन्तु व विमुक्त जनजातियों के मेले की तैयारियाँ शुरू हुईं। यहाँ हमने तीन नाटक किए, 'मुझे मत मारो... साब', 'ईदगाह' और 'उलगुलान'। उन्हीं दिनों भारत सरकार ने घुमन्तु व विमुक्त तथा अर्ध घुमन्तु जनजातियों के लिए एक आयोग का गठन किया था और इस गठन के मेम्बर सेक्रेटरी, श्री लक्ष्मीचंदजी जनजातियों के इस मेले में आए हुए थे । भांतु समाज के बारे में उनसे कुछ बातें होने के बाद हमने उन्हें नाटक का मंचन देखने के लिए न्यौता दिया।

धूप काफी थी । जहाँ परफॉर्म करना था वहाँ फर्श था और वो बहोत ही गरम था । जूते पहने बिना वहाँ एक मिनट भी खड़े नहीं रह सकते थे । फिर भी सभी ने नंगे पैर नाटक किया। तकरीबन सभी के पैरों में फुल्ले हो गए थे। लेकिन अपनी बात कहने के झुनून में वो उस गर्म फर्श को भूल गए थे। किसी ने कोई शिकायत नहीं की, मेरी आँखों में आँसू थे । छारानगर के नन्हें कलाकार भी कई मिनटों तक उस गर्म फर्श पर बैठे, लेटे और खड़े रहे । सभी ने काफी अच्छे से परफॉर्म किया। मंच के बाहर से ये काफी दर्दनाक लग रहा था ।

'मुझे मत मारो साब' के मुख्य कलाकार जीतू के पिताजी को पुलीस ने किसी केस में जेल कर दी थी। छः महीनों से वो जेल में थे । जीतू के पिताजी और मेरा बाप, एक जमाने में दोनों साथ में गेम करने जाया करते थे । जीतू के बाप की हाईकोर्ट में दूसरी बार जामीन रद्द की गयी थी । आज तीसरी बारी थी । जीतू को बहोत आशा थी की आज तो उसके पिताजी छूट ही जाएँगे। पर ऐसा नहीं हुआ। हाईकोर्ट के निर्णय से वो जैसे टूट ही गया । पहले तो उसने शो करने के लिए मना किया। लेकिन फिर 'शो मस्ट गो ओन' में माननेवाले जीतू ने कहा, 'चाहे कुछ भी हो,' और परफॉर्म करने के लिए तैयार हो गया ।

संदीप, जो पिछले तीन महिनों से झूठे केस में जेल में था, उसे कॉलेज की परीक्षा के लिए पेरोल मिला । ये अठारह दिन की अवधि का था । उसे

अट्ठाइस तारीख को वापस जेल जाना था। छब्बीस मार्च को शो था। पच्चीस मार्च को वो मेरे पास आया, 'दक्षिण... जेल में फिर से जाने से पहले नाटक करना चाहता हूँ। मुझे भी कलेश्वरी ले चलो।'

नाटक की लगन मैं उसके रोम-रोम में देख रहा था।

मैंने कहा, 'मैं तुझे रिहर्सल नहीं करवाऊँगा। चालू नाटक में ही तुझे इम्प्रोवाइज़ेशन करना होगा।'

उसने कहा, 'ठीक है, मैं तैयार हूँ।'

हमेशा उड़ते पंछी जैसे संदीप को जेल की चार दीवारियों में शायद नाटक ने ही टिके रहने की हिम्मत दी थी। संदीप थोड़ा सा हकलाता है, लेकिन आश्चर्य की बात कि एक भी रिहर्सल किए बिना उसने कलेश्वरी में बहोत ही अच्छी तरह से नाटक का मंचन किया। मुझे बहोत खुशी हुई और प्रेरणा भी मिली।

इस बीच २ मार्च २००६ को फिर से 'अहमदाबाद नगरपालिका' ने मणीनगर में हमारे लोगों की बस्ती तोड़ दी। सब बेघर हो गए। मैं उस वक्त विनोद राजा के साथ राज नट पर बनने वाली डॉक्युमेन्टरी की शूटिंग के लिए भाट गाँव में था। हम लोग तुरंत मणीनगर पहोंचे। वहाँ नगरपालिका के लोगों ने सब कुछ तहस-नहस कर दिया था। बच्चे रो रहे थे, औरतें गालियाँ दे रही थीं। बड़े-बूढ़े सब अपना टूटा-फूटा सामान बटोर रहे थे। नगरपालिका के लोग सवा सौ साल की बूढ़ी माँ की खटिया भी उठा ले गए थे। पुलीस ने औरतों को बहोत मारा था। उन टूटे हुए मकानों के कूड़े-कचरे के बीच दो नन्हे बच्चे भी अपनी नन्ही सी आँखें खोलकर हँसते हुए ये तमाशा देख रहे थे। इन में से एक की उम्र चार दिन और दूसरे की उम्र नौ दिन थी। उनकी माँएँ इन नन्ही सी जानों को लेकर रेल्वे स्टेशन की दीवार और वृक्ष की परछाई के नीचे पड़ी थीं। सन् १९६० में यहाँ बसे इन घुमन्तु लोगों को मौजूदा सरकार और आसपास रहनेवाले मुख्यधारा के लोग फिर से घुमन्तु बना देने पर तुले थे। आसपास के लोग उन्हें चोर-उचक्के मानते हैं, जबकि ये सभी लोग कड़ी मेहनत करके अपना गुज़ारा करते हैं।

मुझे ये सब कुछ देखकर बहोत गुस्सा आ रहा था । सोचा, अधनंगे होकर आमरणांत, भूख हड़ताल करें । अगर ये न किया तो ये व्यवस्था हमें मारकर या भगाकर ही दम लेगी । लोग वैसे भी भूखे मर रहे हैं । नगरपालिका और पुलीस के आने के डर से कोई अपनी बीवी-बच्चों को छोड़कर काम-धंधे पर नहीं जा रहा था । इतना कम था कि बस्ती में पुलीस का दिन-रात का पेट्रोलिंग शुरू हो गया । पुलीस जब भी आती, रास्ते पर पड़े इन भूखे-नंगे लोगों को मार-मारकर भगाती । लोग अपना सामान लेकर भागते, गिरते। अगर कोई इस अन्याय का सामना करता तो पुलीस लाठीचार्ज करती, जिस में औरतों और बच्चों को काफी चोट पहोंचती। पुलीस ने बस्ती में एक डरावना माहौल खड़ा कर दिया था ।

इस बीच छारानगर पुस्तकालय के लायब्रेरीयन विजय को राज्य की पुलीस कोन्स्टेबल की परीक्षा में अव्वल दर्जा मिला। विजय 'बूधन थियेटर' के साथ छारानगर पुस्तकालय और छारानगर के बच्चों के विकास के लिए काफी सालों से जुड़ा हुआ था । उसका सिर्फ एक ही सपना था, पुलीस अफसर बनना । अब वो समय आ चुका था ।

रोक्सी उसी बात को लेकर सर से मिलने गांधीनगर गया था । पता नहीं वहाँ उनकी क्या चर्चा हुई, रोक्सी का फ़ोन आया, 'सर परसों के दिन बस्ती के मुद्दे के लिए भूख हड़ताल करने के लिए कह रहे हैं । और इसके लिए हमें सौ लोगों को साथ लाना है ।'

मैंने सर से बात की । उन्होंने मुझे तेजगढ़ में चल रहे मेरे नाट्य शिबिर को बरकरार रखने के लिए कहा । मैं तेजगढ़ निकला और रोक्सी भूख हड़ताल की व्यवस्था में जुट गया ।

२३ मार्च २००६ । जैसे ही मैंने ये तारीख लिखी याद आया कि आज के दिन तो भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी दी गयी थी । उन्हीं की राह पर चलनेवाले कवि पाश को भी इसी दिन गोली से मार दिया गया था। मुझे पाश की एक कविता याद आई,

जिन्होंने हमेशा तलवारों के गीत गाए हैं

उनके शब्द लहु के होते हैं,
लहु लोहे का होता है,
जो हमेशा मौत के किनारे जीते हैं,
उनकी मौत से ज़िंदगी का सफर शुरू होता है,
जिनका खून और पसीना मिट्टी में मिल जाता है,
वे मिट्टी में दबकर उग आते हैं।

मैंने मोबाईल उठाया। एस. एम. एस. चालू था, पैसे नहीं भरे थे इसलिए आउट गोइंग बंद था। मैंने ऊपर की कविता का एस. एम. एस. बनाया और सभी साथियों को भेजा। इस देश के लोग भगतसिंह की शहादत को बहोत जल्दी भुला बैठे हैं। आज़ादी के लिए उनका संघर्ष, उनकी विचारधारा, उनकी लड़ाई, उनकी शहादत का संदेश, सभी कुछ हम भूल चुके हैं। जब भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु ने हँसते हुए फाँसी के फंदे को अपने गले में डाला था तब उन्होंने आज के भारत की कल्पना नहीं की होगी। उनके सपनों के भारत ने शायद उन्हीं के साथ फाँसी ले ली थी। भगतसिंह की किताबों के लगाव की हम सिर्फ प्रेरणा भी लें तो मैं मानता हूँ कि इस देश की आधी समस्याएँ अपने आप सुलझ जाएँगी।

पाश ने खालिस्तानी आंदोलन के बारे में और तत्कालीन सरकार के विरुद्ध सत्य लिखा तो उन्हें गोली मार दी गयी। इतिहास में आवाज़ उठानेवालों को दो तरह से चुप किया गया है। एक, पैसे देकर और दूसरा, फाँसी देकर या गोली मारकर। अब तक तो मैं यही समझ पाया हूँ।

भूख हड़ताल में सर के साथ और सौ-देढ़ सौ लोग जुड़े। मैं तेजगढ़ जा रहा था। एस. एम. एस. चालू थे इसलिए और दोस्तों को एस. एम. एस. कर के भूख हड़ताल में प्रत्यक्ष या परोक्ष तरह से जुड़ने के लिए कहता गया। प्रत्यक्ष सौ से देढ़ सौ लोगों ने तथा परोक्ष रूप से तकरीबन तीन सौ लोगों ने भूख हड़ताल रखी। कई दूसरी संस्थाएँ भी हमारे साथ जुड़ीं। तकरीबन तीन बजे म्युनिसिपल कमिश्नर, अनिल मुकीम अपने अधिकारियों के साथ

खुद मिलने आए और उन्होंने एक सौ दो परिवारों को रहने के लिए जमीन देने का वचन दिया। ये हमारी बहोत बड़ी जीत थी। खुशी हुई। गांधी का शस्त्र अब भी काम करता है।

इस आंदोलन में बस्ती की औरतें, बच्चे, बूढ़े सभी शरीक हुए। दो औरतें जो हाल ही में माँ बनी थीं, वो भी अपने नन्हे बच्चों को लेकर कड़ी धूप में भूख हड़ताल में जुड़ीं। दोनों स्त्रियों ने सुबह से कुछ नहीं खाया था, उनकी छाती में दूध नहीं था, उनके बच्चे भी भूख हड़ताल में शरीक हो गए थे। आज घुमन्तु व विमुक्त जनजाति के लोगों की ये हालत है की दस बाय दस ज़मीं पे स्थायी होने के लिए उन्हें ढाई साल में तकरीबन देढ़ सौ बार कॉर्पोरेशन के धक्के खाने पड़ते हैं। फिर भी वो वहीं के वहीं रहते हैं। जब लोकशाही के सबसे विश्वासनीय अंग, न्यायतंत्र ने ही 'गरीबों को हटाओ' का निर्णय दे दिया हो तो फिर अधिकारिक तौर पर तो लोग उनका खून पीएँगे ही। इसके बाद बस्ती के सारे लोग अपना सामान लेने नगरपालिका गए। पर सामान लौटाने का वचन देकर उन्हें उप-कमिश्नर, जेड. ए. साया ने सामान नहीं दिया। नगरपालिका के अधिकारियों ने अपनी ब्युरोक्रेट्स की जात बता दी।

मुकेश ने बताया,'इन दो दिनों में आने-जाने में ही हमारे पाँच सौ रुपए खर्च हो गए हैं। अब हमारी लड़ने की और ताकत नहीं है।'

उसकी आवाज़ से लग रहा था जैसे वो काफी हताश हो गया है। उसने जानकारी दी की गर्मी की वज़ह से काफी बच्चों की तबीयत खराब हो गयी है। रामस्वरूप और मुकेश दोनों भी बीमार हो गए थे।

दस बज चुके थे। तारीख भी बदल चुकी थी। उत्तर ने याद दिलाया की आज चौबीस मार्च है और माया भाभी का जन्मदिन है। मैं तेजगढ़ में था। मैं जब घर से निकला तब मुझे याद था लेकिन फिर भूल गया। कोशिश की कि फोन पर उसे बधाई दूँ लेकिन... उसे आठवाँ महिना चल रहा था और वो बार-बार दर्द से कराह उठती थी। उस पल मुझे उसके पास होना चाहिए था। बस्ती, 'बूधन थियेटर,' तेजगढ़ की टीम के साथ का वादा, और भी बहोत सारे सामाजिक आर्थिक झमेलों में मैं अपने परिवार को खो

रहा था। माया और बच्चों की भी आर्थिक ज़रूरतें हैं जो मैं आज तक पूरी नहीं कर सका। कई बार तो ऐसा लगता है जैसे अपने काम के प्रति अपनी प्रतिबद्धता ने मुझे मेरे परिवार का गुनहगार बना दिया है। मैं बच्चों की तरफ बिलकुल ध्यान नहीं दे पाता हूँ। उनकी स्कूल की फीस भरनी हो तो कहीं से भी पैसों का जुगाड़ कर के भर देता हूँ, लेकिन कभी बच्चों के साथ बैठकर उन्हें पढ़ा नहीं पाया। ऐसी तो बहोत सारी बातें हैं।

जब से मैंने होश सँभाला तब से मैंने देखा की मेरा परिवार कर्जे में डूबा हुआ है। लाख कोशिशों के बावजूद ये कर्ज चुक नहीं पा रहा था। जिन लोगों से बाप ने पैसा लिया था वो अनैतिक स्तर का ब्याज लेते। ब्याज समय पर नहीं देने से सरेआम काफी अपमानित करते। आश्चर्य की बात ये है कि सामाजिक तौर पर ये जायज़ था!

कर्ज चुकाने के लिए बहोत सारे पैसों की एक साथ ज़रूरत थी। पुराना मकान नहीं बिक रहा। धंधा बन्द था। थोड़े बहोत पैसे आते तो बाप सट्टे में हार जाता। उसकी ज़िंदगी संपूर्ण तरह से एक कभी न पूरी होने वाली उम्मीद पर टिकी है। और वो उम्मीद है कि एक दिन उसका बड़ा पाना और आंकड़ा लगेगा और वो सारा उधार चुका देगा।

बाप ने हम चारों भाइयों का नाम पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण रखा। लोगों को ये नाम सुनकर काफी आश्चर्य होता। लकिन इन नामों के पीछे बाप का एक सपना छुपा हुआ था। वो ये की, 'मैं भले जो कुछ बना पर क्या मेरे बच्चे अपने नामों की तरह चारों दिशाओं में मेरा नाम रोशन नहीं करेंगे ? एक दिन जब मेरे बेटे कहीं से भी निकलेंगे तो लोग उन्हें सलाम करेंगे। जैसे हम पुलीस को करते हैं।'

हमें नहीं पता की हम बाप का कितना सपना पूरा कर पाए या भविष्य में कर पाएँगे।

बचपन की यादें नज़र के सामने आ रही हैं। छारानगर में मकान काफी दूर-दूर हुआ करते थे। हमें इन चंबल जैसी बीहड़ों में खेलते-छुपते और झगड़ा करने में बड़ा मज़ा आता था। हमारे घर के पीछे भइया लोगों की चाली थी

और उसके पीछे रेल्वे लाईन को सटकर एक लंबा सा गड्ढा था जिसमें ठहरा हुआ पानी सड़ा पड़ा रहता था । साँझ होते ही उस ठहरे हुए पानी के काले कीचड़ से, जिसमें हमारी दारू का ओस भी मिला रहता, नाक फट जाए ऐसी दुर्गंध फैलती । लेकिन हमारी नाक के तो जैसे कीड़े मर चुके थे। वो गड्ढा गर्मियों में कभी-कभार हम बच्चों के लिए तैरने का तरणताल बन जाता। बाप तो ज़्यादातर बाहर ही रहता था और माँ अधिकतर अपने मायके, यानी मेरी नानी के घर रहती । हम ऐसे तो आज़ाद थे पर मेरी बड़ी बहन नीलम, जिसे मैं आज तक 'ली' कहता हूँ, हमारा ध्यान रखती ।

मुझसे छोटे भाई पश्चिम की छट्टी थी, यानी उसके जन्म के छः दिन पूरे हो रहे थे । इस मौके पर अड़ोस-पड़ोसवालों और रिश्तेदारों को सोजी खिलाने का रिवाज़ है । पर उसी दिन मेरी छोटी बहन उर्वशी मर गई। वो दो साल की थी । अड़ोस-पड़ोस और रिश्तेदार छट्टी की जगह मातम में शामिल हुए । मैं तब बहोत छोटा था । उर्वशी को क्या हुआ था कुछ समझ में नहीं आ पाया। माँ क्युं रो रही थी मैं ये समझने की कोशिश कर रहा था । बाप घर पर नहीं था, गेम (चोरी) करने गया हुआ था ।

आज भी जब माँ से उर्वशी के बारे में बात करता हूँ तो कहती है, 'माताजी उसके पेट में उतर गयी थीं । उसके पेट में परु हो गया था और पेट बड़ी बुरी तरह बड़ा हो रहा था । फिर उसका ऑपरेशन करवाया और पेट में से काफी परु निकाला गया। कुछ समय के बाद उसका स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा हो गया । फिर वो मर गई । माताजी उसके पेट में बैठ गयी थीं, फिर वो कैसे बच सकती थी ?'

मुझे याद है । घर के एक कोने में वो बैठी थी। मैं उसके पास उसके साथ खेलने गया तो उसने मेरे चेहरे को अपने नाखूनों से नोंच लिया था । मैं रोया था लेकिन उर्वशी बहोत ही चिड़चिड़ी रहने लगी थी । वो अपने पास किसी को भी नहीं आने देती । वो बहोत छोटी थी फिर भी न जाने क्युं हम सभी को उससे बहोत डर लगता था । माँ ने दवा और दुआ दोनों की पर बाप को उसकी अर्थी को हाथ देना भी नसीब नहीं हुआ। तब टेलीफोन माध्यम

छारानगर तक नहीं पहोंचा था। वैसे भी जब लोग चोरी करने को निकलते तो पीछे मुड़कर भी नहीं देखते थे। जब कोई पकड़ा जाता या मर जाता था तभी किसी तरह से गाँव या उसके परिवार तक संदेशा पहोंचाया जाता। जब लोग काम करने के लिए घर से निकलते तो टुकड़ी के नेता के सिवाय और किसी को पता नहीं होता था की वो कहाँ और कौन सी दिशा में जानेवाले हैं। मुझे याद है कि जब बाप घर लौटा तो बहोत रोया था। वो उर्वशी से बहोत प्यार करता था। ये घटना उसको बहोत कुछ सिखा रही थी। गाँव के लोग पश्चिम के जन्म को अपशकुन मान रहे थे।

पश्चिम से कुछ याद आया। बारिश का मौसम था। बाप की शराब चालू थी। पश्चिम कहीं से दोस्तों के साथ शराब पीकर घर आया। पश्चिम को होश भी नहीं था। शराब के नशे में भी वैसे बाप बहोत शांत रहता है। लेकिन उस दिन पश्चिम की हालत देखकर उसका पित्ता गया और दुनिया भर का गाली-गलौज शुरू हो गया। बहोत झगड़ा हुआ। बाप ने पश्चिम को मारना शुरू किया।

हम जब बीच में पड़े तो उसने हम सभी को बहोत डाँटा और पियूली में कहने लगा, 'अरे... मैंने तुम लोगों से कोई लाखों करोड़ों रुपए नहीं माँगे थे... बुढ़ापे में भी साले तुम लोगों को मैं ही कमाकर खिला रहा हूँ। हमारी ज़िंदगी तो निकल गयी। क्या-क्या सपने देखे थे अपनी औलादों के लिए... पढ़ लिखकर बड़े साब बनेंगे... ज़िंदगी में एक ही सपना देखा था... मैं जब बेटों के साथ बाहर निकलूँगा तो साले पुलीसवाले मेरे बेटों को सलाम करेंगे। ऐसा बनाना चाहता था मैं... और तू साला दारू पीकर मूत रहा है...' आक थू...उसने जमीन पर थूका। 'धिक्कार है साले तुम लोगों पर !'

अनायास ही पियूली में उसने अपनी ज़िंदगी की मनोवांछा बयान कर दी थी। हाँ, अब तक मैं, पश्चिम या पूरब तो ऐसे नहीं बन पाए पर उत्तर ने अपनी पढ़ाई पूरी की है और आगे बढ़ रहा है।

आओ, मेरे बच्चों के बारे में कुछ बात करते हैं।

जब साक्षी का जन्म हुआ तब मैं मुंबई में फिल्म डायरेक्टर बनने के लिए

संघर्ष कर रहा था। प्रियंका (सोना) ने जब इस रंगबिरंगी दुनिया में अपनी माँ से नाल का नाता तोड़ा और स्वतंत्र तौर पर साँस ली तब मैं सापुतारा में 'परंपरा दिवस' पर 'बूधन' नाटक कर रहा था। जब सुहानी का जन्म हुआ तब मैं मदारी समाज पर फिल्म बना रहा था। और आज मैं तेजगढ़ नाटक लिखने और सिखाने आया हूँ, बावजूद इसके कि माया की तबीयत बहोत खराब है, उसके शरीर में सिर्फ तीस प्रतिशत खून है और उसको नौंवा महीना बैठ गया है। इस बार तो माया और बच्चों को बोले बिना ही मैं घर से निकल पड़ा। मैं ये आज तक नहीं समझ पाया हूँ कि क्युं औरों की तरह मैं काम से ज़्यादा परिवार को महत्त्व नहीं दे पाया... ये मेरा काम करने का झुनून है या और कुछ और ही ?

उस दिन मैं तेजगढ़ में था। कलाकार नहीं आए थे इसलिए मैंने नाटक लिखना शुरू कर दिया। विपुल का फोन आया और किसी कारणवश मुझे बरोडा जाना पड़ा। बरोडा का काम खत्म कर अनायास ही मैंने घर फोन किया तो बिरजु ने बताया, 'अरे कहाँ है तू ? तेरा फोन भी नहीं लग रहा है। यहाँ तो दौड़ा-दौड़ हो गई है। माया को लड़का हुआ है... लेकिन माया और बच्चा, दोनों की तबीयत बहोत खराब है। तू जल्दी घर आ जा।'

मेरे दिमाग में हज़ारों खयाल दौड़ पड़े...समझ में नहीं आ रहा था कि खुश होऊँ या... मैंने अपनी जेब टटोली। जेब में दो सौ रुपए थे... जिसमें से सौ रुपये तो अहमदाबाद पहोंचने के लिए खर्च होते और बचते सौ रुपए... बच्चे और माया के बाद मेरे दिमाग में पैसों की सोच आई... आखिर पैसा आयेगा कहाँ से ? मैंने बाप को फोन किया।

मुझे सर की बात याद आती है, 'कुछ चीज़ों पर हम कभी नियंत्रण नहीं रख सकते... उन्हें होने देना चाहिए...बिलकुल जमीन पर गिरे पानी की तरह जो अपना रास्ता खुद ढूँढ़ लेता है।'

नसीब से मुझे अहमदाबाद के लिए तुरंत बस मिल गई। अहमदाबाद-बरोडा एक्सप्रेस हाइवे पर तेज रफ्तार से अंधेरे को काटती हुई बस में मुझे माया के शब्द याद आ रहे थे, 'दुनिया में तेरा नाम तो बहोत है...पेपर में

फोटो आता है, बड़े-बड़े लोग तुझे जानते हैं...लेकिन पैसा कहाँ है ? इन सभी बातों से दिल भरता है, पेट नहीं...'

शब्द काफी कड़वे थे, लेकिन उतने ही सच भी थे। मैं तकरीबन रात के साढ़े बारह बजे अहमदाबाद पहोंचा।

मैं जब अस्पताल पहोंचा तो पता चला।

'पाँच सौ रुपए छोटू ने दिये।'

'पाँच सौ रुपए मोहन (सुपड्या) ने दिये।

'चार हज़ार रुपए सलीमभाई से जुए के बटवारे में मिले।'

'दो हज़ार रुपए चेतना से लिए।'

'और थोड़े-बहोत पैसों की मदद के लिए माया के भाई से विनती की।'

अस्पताल में अफरा-तफरी मची हुई थी। माया और बच्चे के बारे में तरह-तरह की अटकलें होनी शुरू हो गई थीं क्युंकि बच्चा नाल से छूटते ही रोया नहीं। डॉक्टर ने उसे उल्टा-सीधा करके थोड़ा रुलाया और तुरंत किसी बड़े डॉक्टर के यहाँ ले जाने की सलाह दी। सब परिवारवाले घबरा गए। माँ की आँखों में आँसू थे। एम्ब्यूलेंस बुलाया गया और सिर्फ बारह मिनिट में तकरीबन सात किलोमीटर का भारी ट्रैफिकवाला रास्ता तय करके बच्चे को अस्पताल ले गये।

बाप के साथ चाय पीने गया तो मैंने एक औरत को देखा जो सड़क के किनारे बैठी अपने बच्चे को दूध पिला रही थी। उसके आस-पास दुनिया अपनी ही रफ्तार में थी। अचानक किसी की आवाज़ कानों में पड़ी,'इसके पति को पुलीस मारते हुए किसी केस में ले गई...सदमा सहन न कर सकी और पागल हो गई।' मैं उस अर्धपागल औरत को देख रहा था जो माँ होने का किरदार तो बखूबी निभा रही थी और उसका छोटा सा बच्चा अभी से ज़िंदगी में आनेवाले हजारों संघर्षों से लड़ना सीख रहा था। ये सब दिल को बहोत चुभता है लेकिन बहोत कुछ सिखाता भी है। रात जैसे-तैसे गुज़र रही थी। ज़िंदगी के बीते पल याद आ रहे थे।

पिछले कई वर्षों से मेरा सारा परिवार रात को इस आशा के साथ सोता की सुबह कम से कम चाय बन जाए। कोई लेनदार न आए, कोई तनाव न रहे।

धीरु के पैसे देने की तारीख सर पर थी। लेकिन पैसा नहीं था। खतरा उठाकर छुपते-छुपाते जुआ चालू किया हुआ था। लेकिन पहले पुलीस का पेट, फिर अपना पेट। हमारे पेट के निवाले का समय आए तब तक तो पुलीस खा-पीकर, मुँह में निवाला जाए उससे पहले ही हमें दबोच लेती। खेल खत्म, पैसा हजम।

हम जब छोटे थे तब बाप बहोत दारू पीता और जब भी कोई बात पर माँ और बाप का झगड़ा होता तब माँ नानी के घर चली जाती। बाप अपनी टुकड़ी के साथ चला जाता। जाते-जाते नीलम को बाप चेतावनी दे जाता, 'अगर मुझे पता चला की तुम में से कोई भी तुम्हारी माँ से मिलने नानी के घर गया है तो समझ लेना कि तुम्हारी खैर नहीं।'

ऐसे वक्त हम हमारी काकी के घर खाना खाते। बाप के घर से बाहर जाने के बाद रेल्वे की पटरी से होकर मैं, कुन्ता, कोइना, नीलम, हम सभी माँ से मिलने जाते। माँ नानी और बड़ी मौसी को दारू बेचने में मदद करती। हम सबको वहाँ बहोत मज़ा आता। नानी के घर हम जी भर के खेलते। शाम को घर जाते वक्त नानी और मौसी हम लोगों को दस पैसे ज़रूर देतीं।

मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार बाप ने माँ को बहोत मारा था। रात को हम सभी सोये हुए थे कि अचानक घर पर हमला हुआ। नीलम ने हम सभी को सँभाला। उस रात बाप ने दारू बहोत पी हुई थी इसलिए उसे होश भी नहीं था। घर के पतरों पर बड़े-बड़े पत्थर फेंके जा रहे थे। थोड़ी देर बाद पता चला कि ये हमला हमारे मामा और मौसी के लोगों ने किया था। ईंट, पत्थर घर में आए। कोइना बाल-बाल बच गई। हम सब रोने लगे। बाप अभी तक सोया हुआ था। अचानक दरवाजा तोड़कर मेरे बड़े मामा घर के अंदर आए और बाप की आँखों पर ज़ोरों से लकड़ी मारी। हम सभी के मुँह से चीख निकल पड़ी। बाप उसी वक्त बेहोश हो गया और उसकी आँख

में से लहू बहने लगा। मैंने देखा कि माँ उसके घरवालों को झगड़ा करने से रोक रही थी लेकिन मामाओं पर जैसे झुनून सवार था। हम बाप को तुरंत सिविल अस्पताल ले गए। मैंने उस दिन ज़िंदगी में पहली बार सिविल अस्पताल देखा। बाप को होश आया तब वो दर्द के मारे कराह रहा था। डॉक्टर ने उसका ऑपरेशन किया ओर कहा, 'नसीब से उनकी आँख बच गई है।'

एक दिन बाप टुकड़ी में गया हुआ था तब हम सब माँ से मिलने नानी के घर गए। किसी कारणवश बाप जल्द घर लौट आया। उसे पता चल गया कि हम सब माँ से मिलने गए हैं। वो घर पर हमारी राह ही देख रहा था। हम शाम को जैसे ही घर पहोंचे बाप ने हम सबको बहोत मारा। बाप जब मुझे, कुन्ता, कोइना या पश्चिम को मारता तो नीलम बीच में आ जाती और हम सबको बचाती। कई बार हमारी सज़ा नीलम को मिलती। बाप एक बड़ी सी लकड़ी लेकर नीलम के पेट में मारता... असह्य पीड़ा होने के बावजूद नीलम सहन कर लेती। घर में लोहे की कुर्सी थी, बाप उस कुर्सी से नीलम को मारता। आसपास के लोग बाप से त्रस्त हो गए थे।

नीलम आज भी जब ये सारी बातें याद करती है तब खूब रोती है। रोते हुए कहती है, 'तुम्हारे लिए मैंने कैसी-कैसी मार सहन की है... जानवरों की तरह मार खाई है बाप के हाथों।' आज भी नीलम का बदन दर्द करता है।

बाप ने मुझे और कोइना को इंग्लिश मीडियम स्कूल में दाखिल किया। नीलम बुनियादी नगरपालिका के स्कूल में दाखिल हुई लेकिन फिर घर की जिम्मेदारियों के कारण उसे स्कूल छोड़ देना पड़ा। कुन्ता को भी उसी स्कूल में रखा पर वो भी नहीं पढ़ पाई। असल में स्कूल के बहाने वो माँ के पास, नानी के घर चली जाती। कभी माँ हमारे साथ रहती तो वो अपना बैग उठाती, एक प्याज़ अपने बगल में छुपाती और जाकर रेल्वे ट्रेक पर आधा घंटा बैठती, फिर स्कूल जाती। प्याज़ रखने की वज़ह से उसका शरीर एकदम गरम हो जाता और फिर वो बीमार होने का नाटक करती। उसके शिक्षक उसे बीमार समझकर छुट्टी दे देते। ऐसा कई सालों तक चला, आखिरकार एक दिन माँ

ने तंग आकर उसे स्कूल से निकाल ही लिया।

मैं और कुन्ता बाप को बीड़ी पीते हुए देखते। उसके मुँह और नाक से धुँआ निकलते देख हमें काफी अजीब लगता। कई बार उसकी नकल करने के लिए हम घर के पिछवाड़े की गली में जाते और कागज़ की बीड़ी बनाकर, मुँह से धुँआ निकालने की कोशिश करते। एक दिन बाप के हाथों पकड़े गए और इतनी पिटाई मिली की आज तक बीड़ी को हाथ लगाने से भी डर लगता है।

कोइना स्कूल में मुझसे एक श्रेणी आगे थी। वो काफी मन लगाकर पढ़ती थी। पतली सी थी तब कोइना। घर में उसे सब 'सूखा पापड़' कहकर चिढ़ाते थे। मैंने जैसे-तैसे तीसरी कक्षा तो पास कर ली लेकिन चौथी में दो बार फ़ेल हो गया। मुझे स्कूल जाना बोर लगता। उस बोरियत का मनोविज्ञान मुझे आज समझ में आता है। दरअसल, मेरी स्कूल में सिंधी जाति के बच्चे अधिक थे और सभी अच्छे घराने से आते थे। वो काफी अच्छे साफ-सुथरे कपड़े पहनकर आते। मेरी क्लास में मुझसे शायद ही कोई बात करता था। मुझे उस वक्त काफी छोटापन महसूस होता होगा। शायद इसलिए स्कूल जाना मुझे हमेशा बोर लगता था। घर से माँ मार-मारकर स्कूल भेजती तो मैं स्कूल की बजाय कभी मौसी के घर चला जाता, तो कभी भुआ के घर। जब बाप को इसके बारे में पता चला और मुझे कस के पिटाई मिली तो मैंने स्कूल न जाने का दूसरा तरीका अख्तियार किया। मैं स्कूल के लिए घर से निकलकर सीधा रेल्वे ट्रेक पर चला जाता। वहाँ बड़ी-बड़ी घास में अपना बैग छुपा देता और बैठ जाता। खासकर उत्तरायण में ये बदमाशी ज़्यादा करता। मैं चौथी में तीसरे साल भी फेल हो रहा था तो बाप ने कहीं से पैसों की व्यवस्था कर के स्कूल के एक ट्रस्टी को रुपए देकर मुझे पास करवाया। पास करने के लिए शर्त रखी गई कि मैं स्कूल बदल लूँ। पाँचवी में मेरा दाखिला गुजराती माध्यम स्कूल में किया गया।

अंग्रेजी माध्यम का एक वाकियात मुझे अब भी याद है। कोइना की कक्षा में कंचुकी (गोटीया) का कोई खेल खेला जाने वाला था। सभी अपने-अपने घर से कंचुके लाए थे। एक सिंधी लड़की का कंचुकी से भरा डिब्बा

खो गया और उस लड़की ने कोइना पर चोरी का आरोप लगाया। छारा होने की वज़ह से शिक्षक ने भी ये बात तुरंत मान ली। उस शिक्षक ने कोइना की एक न सुनी और सबके बीच कोइना का चोर कहकर बहोत अपमान किया। कोइना रोते हुए घर आई और उसने बाप से ये सारी बात कही। बाप को बहोत गुस्सा आया और उसने स्कूल में जाकर धमाल मचा दी। सभी घबरा गए। उस दिन के बाद कोइना से स्कूल में कोई ज़्यादा बात नहीं करता और धीरे-धीरे कोइना का पढ़ाई से मन उठने लगा। वो जैसे ही सातवीं में फेल हुई, उसने पढ़ाई छोड़ दी।

बाप ने हमें अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाने की बहोत कोशिश की लेकिन हम उसका सपना पूरा न कर सके। घर में कोई भी मेहमान आता तो वो मुझे और कोइना को उनके सामने अंग्रेजी में बात करने के लिए कहता। हमें जितनी भी टूटी-फूटी अंग्रेजी आती थी वो बोल लेते। बाप भी खुश हो जाता और मेहमान भी। कोइना थोड़ी अच्छी अंग्रेजी बोल लेती थी, लेकिन मुझे तो अंग्रेजी बिलकुल भी नहीं आती थी। कहाँ से आती ? मैं कभी मन लगाकर पढ़ा ही नहीं। स्कूल में मुझे कुछ समझ नहीं आता था और घर आते ही तास खेलने चला जाता। सारा दिन ढ़ींगा-मस्ती, लड़ाई-झगड़े। अपनी बस्ती के दोस्तों के बिना मुझे चैन ही नहीं पड़ता था। हम कई तरह के खेल खेलते, जैसे की माँ-बेटी, गिल्ली-डंडा, ढीस, टप्पर, ढोंस, फीस, सोरठ, जनता वगैरे। सभी खेलों में मैं हमेशा पीछे ही रहता। स्कूल का होमवर्क भी शायद ही कभी करके ले जाता।

मैं दसवीं में पैंसठ प्रतिशत से पास हुआ। ग्याहरवी में मुझे नवयुग स्कूल में प्रवेश मिल गया। नवयुग स्कूल की पढ़ाई और अनुशासन के काफी चर्चे थे। मैंने कॉमर्स स्ट्रीम में प्रवेश लिया। हमारे प्रिन्सिपल, गोरधनभाई स्वभाव से काफी सख्त थे। घर से कोई दो किलोमीटर की दूरी पर स्कूल था। मैं हमेशा स्कूल पहोंचने में लेट हो जाता था। इसलिए मुझे बाहर खड़ा रहना पड़ता था। प्रिन्सिपल मुझे टुकर-टुकर देखते रहते और कई बार तो घर वापस भेज देते। मुझे कॉमर्स के विषयों में कोई ज़्यादा टप्पी नहीं पड़ती थी। स्कूल

में अनियमित जाता था ।

जब ग्याहरवीं में था तब मुझे ख्यातनाम नाट्यकार सुरेश राजडा की नाट्य वर्कशॉप में भाग लेने का मौका मिला । दस दिन की वर्कशॉप थी । मेरा चयन तो हो गया । पर वहाँ जाता कैसे ? वर्कशॉप सुबह शुरू होती और मेरी स्कूल भी सुबह की थी । मुझे दोनों में से एक का चयन करना था । काफी मनोमंथन के बाद मैंने वर्कशॉप में जाने का निर्णय लिया । मैं घर से बैग लेकर निकलता और स्कूल की बजाए वर्कशॉप में पहोंच जाता ।

मुझे वहाँ नाटक के अलग-अलग प्रकारों को समझने और सीखने का मौका मिला । कुछ दिनों बाद शाला पहोंचा तो प्रिन्सिपल गोरधनभाई जैसे युद्ध की तैयारियाँ करके बैठे थे । बदकिस्मती से मैं ग्याहरवें दिन भी स्कूल देर से पहोंचा। इसलिए प्रार्थना खत्म होने तक बाहर ही खड़ा रहना पड़ा । मुझे देखकर गोरधनभाई बरस पड़े । साथी विद्यार्थियों के बीच मुझे काफी अपमान सहन करना पड़ा । लेकिन उनके कड़वे शब्द बिलकुल सच थे ।

इस बार तो उन्होंने कह दिया, 'तू बारहवीं की बोर्ड की परीक्षा कभी पास नहीं कर सकता । मैंने अपनी तेईस साल की नौकरी में तुझसे ज्यादा गैरहाज़िर रहनेवाला विद्यार्थी नहीं देखा है । तू अगर पास होगा तो मैं अपनी नौकरी छोड़ दूँगा।'

मैं बारहवीं की परीक्षा देने जा रहा था । उनके पैर छूने गया । उन्होंने अपने पैर पीछे खींच लिए । मैंने उनके पैर जहाँ थे वहाँ की चरण रज ली । उन्होंने बाकी सभी विद्यार्थियों को आशीर्वाद दिया ।

मैं बारहवीं में पहले ही प्रयत्न में पास हो गया । रिज़ल्ट लेकर सबसे पहले उनके पैर छूने गया । इस बार वो नाखुश होते हुए भी खुश हुए । मैं बहोत खुश था । उन्होंने मेरा परिणाम देखकर कहा, 'जो भी हो, अगर ज़िंदगी में इसी तरह अनियमित रहे तो कभी कुछ नहीं कर पाओगे ।' मैं हमेशा उनके शब्दों का शब्दसह पालन करने की कोशिश करता रहता हूँ ।

छारानगर के पास, हमारी अंग्रेजी माध्यम स्कूल के सामने 'सिंधी सोशियल सर्कल' नामक शादी का हॉल था। शादी की सीज़न होती तो हम

दोस्तों की टुकड़ी रोज़ वहाँ इकट्ठा होती । सिंधी लोग यहाँ शादी करते । जब भी किसी की शादी होती तो हमारी टुकड़ी रात को वहाँ पहोंच जाती और हॉल के दरवाजे के बाहर बैठ जाती । रात को तकरीबन बारह-एक बजे जब शादी खत्म होती तो लोग बचा हुआ खाना लेकर घर के लिए निकलते। जैसे ही वो बाहर निकलते, हम अपने अपने बर्तन लेकर खड़े हो जाते । कोई दयालु होता तो सभी को खाना मिलता। हम में से कुछ ही लोगों को दावत का भोजन नसीब होता, कभी-कभी खाली हाथ ही लौटना पड़ता। हमारी टुकड़ी के अलावा वहाँ और भी हमारे मोहल्ले के लोग होते। खाने के लिए चिल्लम-चिल्ली और अंदर ही अंदर गाली-गलौज भी होती। इसलिए कभी-कभार चौकीदार सभी को भगा देता और हमें खाने से हाथ धोने पड़ते। मैं हमारी दोस्तों की टुकड़ी में बाकी सभी के मुकाबले गोरा था । एक दिन काल्या ने मुझे तरकीब बतायी, 'यार, तू इतना गोरा है, अंग्रेजी भी पढ़ता है और बिलकुल सिंधी जैसा दिखता है । तू अच्छे नए कपड़े पहनकर अंदर क्युं नहीं घुस जाता? अंदर तुझे जितना खाना है उतना खा लेना और बाकी थाली में भरकर दीवार के इस तरफ दे देना। हम उसे लेकर भाग लेंगे।'

तरकीब काफी अच्छी थी । मैंने वैसा ही किया । मैं अच्छे कपड़े पहनता और शादी में घुस जाता । नई-नई वेरायटीज़ खाता । ऐसा खाना घर पर बनाने का हम कभी सपने में भी नहीं सोच सकते थे । कुछ दिनों तो ये ठीक-ठीक चला । फिर एक दिन चौकीदार ने मुझे पहचान लिया और मेरा पीछा किया। फिर क्या होना था ? मैं अपने दोस्तों को खाना देते हुए पकड़ा गया । जिनकी शादी थी उन लोगों ने और चौकीदार ने मिलकर मुझे बहोत धोया। बहोत मारा । मेरी एकमात्र कपड़े की नई जोड़ी फाड़ दी । मुझे मारते हुए उन्होंने दरवाजे के बाहर कर दिया । मैं खूब रो रहा था । इस शादी में मेरी क्लास में पढ़नेवाले बहोत से सहपाठी भी मौजूद थे । वो सब मुझे देखकर हँस रहे थे । मैं फिर कभी वहाँ खाना खाने नहीं गया।

चोरी करने से जब कुछ नहीं मिला तो बाप ने रिक्शा ली और उसे चलाकर घर का गुज़ारा करना शुरू किया । एक दिन बाप का माँ के साथ

झगड़ा हुआ तो उसने दारू पीकर रिक्शा जला डाली । इस में उसका हाथ बुरी तरह से जल गया ।

अब बाप बिलकुल बेकार हो गया था । दारू के धंधे से उसे बहोत नफरत थी । बचपन की बात चल रही है तो सागर के बिना वो पूरी नहीं हो सकती। सागर, हमारा घरेलू पालतू कुत्ता। मेरे बचपन का सबसे प्यारा साथी। वो जब छोटा था तब बाप उसे कहीं से उठाकर ले आया था । हम साथ-साथ बड़े हुए । वो दूध जैसा सफेद था । मैं जहाँ भी खेलने जाता वो हमेशा मेरे साथ आता। जिस तरह बस्ती का हर पालतू कुत्ता अपने रहने और घूमने की जगह तय कर लेता है और दूसरे की जगह में जाने की हिमाकत नहीं करता, कुछ ऐसी ही कहानी हमारे सागर की भी थी । शुरूआत के दिनों में वो कई बार मेरे और बाप के पीछे लगकर अपनी सरहद पार कर जाता जिससे उसका अपने नातीवालों से काफी झगड़ा होता । उसे वापस अपनी सरहद में आना पड़ता । सागर सिर्फ एक आम पालतू कुत्ता ही नहीं बल्कि एक समझदार, विश्वसनीय और प्यारा सा साथी भी था । हमारे साथ वो भी भूखा रहता या रूखा-सूखा खाता । वो घर में किसी पुलीसवाले को घुसने नहीं देता था, शायद इसलिए बाप उसे घर लाया था । वो कई बार मेरे साथ ही सोता। कभी आंगन में तो कभी बाप के पैरों के पास । बाप कभी हमें मारता तो वो बाप पे भौंकता और कई बार उसके हाथों की मार भी खाता । सागर हमारी ज़िंदगी का एक अभिन्न अंग बन गया था ।

कई बार बाप को पुलीस घर से पकड़ ले जाती थी इसलिए रात-रात भर उसे हमेशा सजग रहना पड़ता था । कभी-कभी आधी रात को पुलीस हमारी बस्ती में आती । पुलीस के बस्ती में घुसते ही बात आग की तरह सारी बस्ती में फैल जाती और सारे मर्द जो चोरी करने जाते, वो सारे भाग जाते । घर पर सिर्फ बच्चे, औरतें और बूढ़े बचते। कोई हाथ लग जाता तो पुलीस के डंडे टूटते ।

दादी हमेशा कहती है, 'तेरा बाप और तेरा दादा केराला में पकड़े गए थे । कोई वकील वहाँ जाने को तैयार नहीं था । मैं अकेली बाई औरत, पैसे

लेकर वहाँ गई । छ: महीने दरिया किनारे रही और दोनों को छुड़ाकर लायी। वकील भी मान गया था कि, 'वाह! क्या मर्द जैसी औरत है !'

ये किस्सा सुनाते हुए वो बताती, 'मुझे उनकी भाषा तो समझ में आती नहीं थी । इसलिए रोज़ पुलीस इंस्पेक्टर और वकील के पास जाकर रोती । बहोत रोती। और आखिरकार उस वकील ने तेरे बाप और दादा को छुड़वा ही लिया ।'

दादाजी दादी को प्यार से विठ्ठली कहते थे । दादी अपनी बीती बातों को याद करते हुए कहती है, 'श्यामजी अहमदाबाद सेटलमेंट से हमारी धुले की सेटलमेंट में शादी करने आया था । साथ में अहमदाबाद सेटलमेंट की पुलीस भी थी । पहले ऐसा ही था। पुलीस ही शादी करवाती थी। श्यामजी ने एक महिना मेरे बाप को जेल करवाई थी । मुझसे शादी करने के लिए... सब लोग कहते थे कि अहमदाबाद के लोग बाहर के गाँव से लड़की के साथ शादी करके उसके टुकड़े-टुकड़े कर के, पोटली में बाँधकर जंगल में फेंक देते हैं । मैं बहोत डरी हुई थी ।

मैंने तो मेरे बाप से कह दिया था कि मैं मर जाऊँगी लेकिन इसके साथ शादी नहीं करूँगी। मेरा बाप और मेरी माँ दोनों मेरे साथ थे लेकिन श्यामजी एक ही जिद लेकर बैठा था कि मैं शादी करूँगा तो प्रांची से ही । उसने धुले सेटलमेंट के अणकी राव साब को पता नहीं क्या खिला दिया कि वो भी मेरे बाप को जबरन मनवाने लगे। जब बाप नहीं माना तो उसे सेटलमेंट के अंदर ही जेल की कोठरी में बंद कर दिया ।

एक दिन मैं मेरी माँ के साथ पेड़ के नीचे बैठी थी कि अचानक श्यामजी वहाँ आया और मुझे लात मारकर गिरा दिया । मैं चिल्ला उठी, "अरे क्या है... सगाई नहीं, शादी नहीं, मारता काई को है ?"

"साली...इतने दिनों से यहाँ पड़ा हूँ । शादी के लिए हाँ क्यों नहीं कहती?"

एक दिन एक पारधन पेंडे लेकर आई और मुझे खिला दिए। पता नहीं क्या हुआ कि मैं मेरी माँ के पास गई और कहा, "माँ, एक महीना तो हो

गया। बाप भी जेल में है। जाने दे, मैं जाती हूँ उसके साथ। मर गई तो भूल जाना।''

अणकी राव साब ने बाप को जेल से छोड़ा और मैं शादी कर के अहमदाबाद आई। श्यामजी की पहली औरत मर गयी थी। मैं दूसरी थी। यहाँ आकर पता चला कि वो कमबाई के साथ चालू है। बहोत मारता था श्यामजी...

एक दिन मेरा श्यामजी के साथ झगड़ा हुआ और उसकी मार के डर से मैं मेरे माँ-बाप के घर चली गई। वहाँ सात साल रही। तेरा दादा महाराष्ट्र गया हुआ था, वहाँ फुल्ली के साथ तेरा दादा चालू हो गया और उसके पेट से चंपा हुई। चार औरतें की तेरे दादा ने। श्यामजी तो श्यामजी था...।' ये कहकर वो हमेशा हँस देती।

दादाजी उनके घर की पिछवाड़े के गड्ढे में दारू रखा करते थे। गड्ढे में सड़ा हुआ काला, बदबू मारता हुआ पानी रहता था। उस पानी की वज़ह से दादाजी को चमड़ी का रोग हो गया था। उनके शरीर पर जगह-जगह गुमड़े हो जाते थे। उनकी चमड़ी बिलकुल काली हो चुकी थी। वो हमेशा अखबार को फाड़कर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर अपने जख्मों पर लगाते जिससे मक्खियाँ उनके जख्मों पर न बैठें। दादाजी की तरह मेरे हाथ-पैर पर भी गुमड़े हो जाते। मेरे आगे-पीछे भी मक्खियाँ भिन-भिनाती रहतीं। दादाजी को देखकर मैं भी अखबार फाड़कर जख्मों पर लगाता। इस वज़ह से स्कूल में मेरे पास कोई बैठता ही नहीं।

कई बार दादाजी मुझे, कोइना और कुन्ता को गजरा मारु की कहानी सुनाते। उनकी ये कहानी हमें एक अलग दुनिया में ले जाती। उनकी कहानियाँ तीन-तीन महीनों तक चलतीं। दादी कहा करती है, 'अरे... श्यामजी तो क्या चोरियाँ करता था ! सिर्फ सोने की ही चोरी करता। बहारवटा करके आता और मेरे सामने सोने का ढीगार कर देता। पहले यहाँ कुछ नहीं था। जंगल जैसा था छारानगर। हमारे लोग छड़ेचौक (खुले आम) जाते और कमाकर लाते। मुझे तो सोने से ढक सी दी थी मानो... कभी झगड़ा होता

तो लकड़ी से मेरे घुटने तोड़ देता... फिर मुझे दारू पीने की आदत पड़ गयी। लोग मुझे दारू की बोतल देते और मैं श्यामजी से छुपाकर उन्हें जो हाथ में आए दे देती, कभी सोना भी दे देती... तब गठरियाँ भरी रहतीं। सब चला गया... सब चला गया।'

दादी कभी बाप के बारे में बताती, 'और ये तेरा बाप, दगडदेव बोलते थे सब इसे। पत्थर से अचूक निशाना मारने में माहिर था। कभी लंगड्या (बाबुकाका जो जन्म से पोलियो ग्रस्त हैं) उसे मारता तो ये रेल्वे लाइन पर चला जाता और वहाँ से पत्थर फेंकता जो सीधा निशाने पर लगता। लंगड्या का, बंसी का, कितनी बार सर फोड़ा है तेरे बाप ने ! क्या-क्या दु:ख दिए हैं तेरे बाप ने।'

मैंने कई बार बाप से उसके उठाइगीर जीवन के बारे में जानना चाहा लेकिन आज तक उसने कभी मुझसे खुलकर इस बारे में बात नहीं की। शायद वो अपने अतीत में नहीं जाना चाहता है। उस जिल्लत भरी ज़िंदगी को वो भूल जाना चाहता है।

चोरी छोड़ने के बाद बाप बेकार सा हो गया था। जिस धंधे से हमारा आगे का जीवन निकला उस धंधे की शुरूआत के बारे में बाप याद करते हुए कहता है, 'मैं संडास करने ताल (मैदान) में जाया करता था। एक दिन अशोक और नाथु संडास करते हुए कुछ आंकड़े-पाने की बात कर रहे थे। मैंने कान लगाकर सुना। मुझे काफी रसप्रद लगा। मैंने उनके संडास आने का समय देख लिया। उनके टाइम पर मैं भी रोज़ संडास करने निकल पड़ता और उनकी सारी बातें कान लगाकर सुनता।

एक दिन मुझसे रहा नहीं गया और मैंने उनसे जाकर पूछ ही लिया, 'अरे अशोक, यार तुम लोग ये रोज़ आंकड़ा, पाना, हाजर ये क्या बातें करते रहते हो, ज़रा मुझे भी बताओ।'

अशोक बोला, 'नंदु, ये तेरे काम की चीज नहीं है... तू तो रिक्शा चला या चोरी करके ही खा। ये तेरे बस की बात नहीं है।'

'अरे लेकिन बता तो सही। नहीं समझ में आया तो छोड़ दूंगा।'

दोनों मान गए और धीरे-धीरे उन्होंने मुझे सट्टे (वरली मटका) का धंधा समझाया। अशोक का खुद का सट्टे का धंधा चलता था। मैं रोज़ वहाँ जाता और इस धंधे को समझने की कोशिश करता। सट्टे के सिवाय मैंने हाजर, मांगपत्ता, चकरडी वगैरे के बारे में भी जाना। समय चलते अशोक और नाथु दोनों पैसे हार गए। मेरे पास कुछ पैसे थे इसलिए ये धंधा मैंने शुरू कर लिया। मेरी किस्मत चल पड़ी। मैंने धीरे-धीरे सट्टे की दुनिया में अपना सिक्का जमाया।'

एक बार काल्या के साथ जुआ खेलते हुए बाप ने मुझे रंगे हाथों पकड़ लिया। काल्या और मैं दोनों उसके हाथ में आ गए। बाप ने हम दोनों को रस्सी से बांध दिया और मेरे दाहिने हाथ पर मिट्टी का तेल डालकर जला दिया। मौके पर मौसी वहाँ पहोंच गयी और तुरंत मेरे हाथ पर लगी आग बुझा दी। लेकिन मेरा अँगूठा काफी बुरी तरह से जल गया। उसके बाद मैंने कभी झूठ-मूठ का भी जुआ खेलने की हिमायत नहीं की।

जुए से याद आया। मेरी ज़िंदगी का काफी समय सटोरियों और जुआरियों के साथ बीता है। लेकिन मैंने खुद कभी सट्टा या जुआ नहीं खेला। एक वक्त काफी अरसे के बाद बाप को जुआ चलाने की पुलीस से अनुमति मिली। वो भी मैं जहाँ रहता था उस घर के पास ही। सारी रात नीचे से चिल्लाने की आवाज़ें आतीं। 'हारे', 'जीते', 'पौं', 'तीरी', 'अंखिया', 'छक्का', 'चौक', 'गुल है', 'दो गुल है'... तकरीबन सभी पियूले होते। दाणा हिलाने से लेकर वहाँ से छुटकर जजमेंट नहीं आता तब तक दाँव लग रहे होते... इसीलिए इस धंधे में चिल्लम-चिल्ली बहोत होती है।

मैं एक बार रमण के साथ ऊपर बैठा था। रमण, जिसने मानो दाणे के जुए में डाक्टरेट की हो। उसने अपनी ज़िंदगी में हर तरह का जुआ खेला और खिलवाया है। लंबा चेहरा, लंबा शरीर और देढ़ उँगली की नाक वाला, हमेशा खुश मिजाजी रहनेवाला ये आदमी थोड़ा सा मायूस लग रहा था। मैं, सुनील और रमण खाना खा रहे थे। रमण के चेहरे की दाहिनी ओर कान के पास काफी सूजन था।

मैंने पूछा, 'ये क्या हो गया रमण तेरे को... चेहरा इतना सूज कैसे गया है ?'

रमण बोला,'अरे क्या कहें, बहोत दर्द होता है...ऑपरेशन करवाना है लेकिन कोई डॉक्टर ऑपरेशन करने के लिए तैयार ही नहीं है ।'

'क्युं? क्या प्रॉब्लम है ?'

रमण मायूस होकर बोला, 'अरे... पूछो मत, दक्षिण भाई....'

मैंने कहा, 'मैं कुछ समझा नहीं । क्या कोई केन्सर की गाँठ है ?'

'हाँ, वही तो है ।'

'अरे तो फिर डॉक्टर ऑपरेशन करके निकालते क्युं नहीं हैं...?' मैं हैरान था ।

सुनील बोला, 'अरे छोड़ यार । ये बेचारा बहोत तनाव में है... इसको खतरनाक रोग हो गया है... जिसका कोई इलाज ही नहीं है ।'

'क्या बात कर रहा है ? क्या हुआ इसे ?'

रमण बोल उठा, 'दक्षिणभाई मुझे एड्स हो गया है।'

रमण के चेहरे पर परेशानी के साथ अनजानी सी हँसी थी । इतने में सेवाधारी काउन्टर लेकर आया । रमण उससे काउन्टर लेकर पैसे देने लगा... अपने काम में मशगूल हो गया।

हमने एड्स के बारे में कुछ विस्तार से चर्चा की । बातों-बातों में पता चला की शायद रमण की बीवी भी एच.आई.वी. ग्रस्त हो गई है । रमण के मुताबिक एच.आई.वी. का चेप उसे एक या दो महिने पहले लगा था जब पाटीया स्थित डॉक्टर ने उसका ऑपरेशन किया ।

हम सब अपनी-अपनी मौत की ओर बढ़ रहे हैं । रमण की रफ़्तार शायद हमसे ज़्यादा है । रमण अपनी मंज़िल तक शायद जल्दी पहोंच जायेगा । निश्चित समय पर मौत की ज़िंदगी जीनेवाला ये शख्स बिलकुल हताश नहीं था । वो अपनी ज़िंदगी सामान्य तौर से जी रहा था । जुआ खेलता, हारता, जीतता, गुस्सा होता, झगड़ा करता, पैसे फाड़ देता, पुलीस से छुपता, बाप को जुए

में दो पैसे ज़्यादा मिलते उसके लिए अपना जी जलाता... सब कुछ सामान्य था। बाप के साथ उसने जुए में सारी ज़िंदगी निकाली थी... बाप को काफी पैसा कमाकर दिया... उसके लिए जेल काटी, पुलीस की मार खाई लेकिन सारी ज़िंदगी ईमानदारी से बिताई। इतने सालों में अगर उसने कुछ कमाया है तो वो है उसकी ईमानदारी और जुए का संपूर्ण ज्ञान।

उसने कई दाव हारे और जीते लेकिन इस बार का दाव ज़िंदगी पर चल रहा था जिसमें वो राह देख रहा था खुद के हारने की।

अब तक आप को मैं जहाँ रहता हूँ वहाँ के माहौल के बारे में, लोगों के बारे में थोड़ा-बहोत खयाल आ गया होगा। अब मेरी ज़मीं, छारानगर के बारे में कुछ बातें करते हैं।

छारानगर। लोग इस 'शहरी गाँव' को चोर उचक्कों का गाँव और शराब की बदबू से सड़ा हुआ इलाका मानते थे। लोग छारानगर से सटकर लगी पक्की सड़क से गुजरते हुए भी डरते थे। लोगों के बीच, 'वहाँ जाएँगे तो छारा हमें लूट लेंगे,' जैसी भ्रामक मान्यताओं की जड़ें तह तक फैली हुई थीं। कई लोग तो जब न चाहकर भी इस सड़क से गुज़रते तो अपने आपको अच्छी तरह सिमटाकर, नाक पर रुमाल रखकर निकलते। हमारे कुछ लोग दारू पीकर सड़क पर दंगा ज़रूर करते हैं लेकिन वो कभी आने-जानेवालों को हैरान-परेशान नहीं करते। सिर्फ होली के त्यौहार को छोड़कर।

काफी बदनाम था मेरा गाँव। मैं हमेशा सोचता था कि क्युं मेरे दोस्त मेरे घर नहीं आते। छारानगर की ज़िंदगी कुछ इस तरह की रही है। तकरीबन पाँच किलोमीटर के गोलाकार में फैले इस गाँव में आठ मीटरवाला रास्ता सबसे चौड़ा है। ये रास्ता छारानगर के अंदर जाने का मुख्य मार्ग है, बाकी का छारानगर गली-कूचों में बँटा हुआ है।

यहाँ समाज में मर्दों से ज़्यादा औरतों का आधिपत्य विशेष तौर पर देखा जा सकता है। लड़ाई-झगड़ा यहाँ एक आम बात है। बातों ही बातों में माँ-बाप में गाली-गलौज तथा लकड़ियाँ निकल जाती हैं जिसकी वज़ह से गाँव की पंचायत व्यस्त रहती है। आधुनिकता के इस युग में अभी भी छारा

जाति को परंपरागत न्याय प्रणाली में विश्वास है। ये इस बात का सबूत है कि हमें आज भी कल में विश्वास है।

बारिश में छारानगर टापू बन जाता है तो ठंडी में भट्टी की गर्मी से वातावरण में काफी गरमाहट रहती है। गलियों में हवा और प्रकाश के विरुद्ध बनाए घरों में छारानगर के लोग पसीने से तरबतर रहते हैं। छोटी-बड़ी गलियोंवाले इस गाँव में ज़्यादातर लोग कपड़े धोने और पेशाब करने के लिए अपने-अपने घर के पिछवाड़े का ही उपयोग करते हैं। तीन साल के नीचे के तकरीबन सभी बच्चे अपने घर के आँगन में ही सुबह-शाम हगते हैं।

इसी माहौल में जब मेरी अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाई चल रही थी तब मैं घर से निकलता तो था स्कूल जाने के लिए लेकिन फिर रास्ता बदलकर मौसी के घर चला जाता था। बैग छुपाकर मैं मॉर्निंग शो में लगी फिल्म देखने निकल पड़ता। काल्या हमेशा मेरे साथ रहता। कभी हम माया टॉकीज में मॉर्निंग शो फिल्म देखने जाते तो कभी शान वीडियो में वी.सी.आर. पर फिल्म देखते। फिल्म देखने का हम पर जैसे एक झुनून सा सवार था। हमारे पास पैसे हमेशा गिनती के होते इसलिए कुछ नाश्ता-पानी भी नहीं कर पाते थे। हाँ, कभी-कभी काल्या जुए में पैसे जीतता तो पेट भर के खाते। कभी-कभी तो हम दिन के चारों शो देखते। शायद उसी उम्र में मैंने ये ठान ली थी कि मुझे भी एक दिन फिल्म बनानी है।

मंच ने हमेशा मुझे आकर्षित किया है। मेरी तकरीबन पंद्रह साल की उम्र होगी की मंच पर डांस करने की उत्सुकता जगी। फिल्मी डांस करनेवाले हम कुछ दोस्त लोग इकट्ठा हुए, जिन में नीलेश हॉरर (भूत) का डांस करता, भरत खपरु मिथुन का, प्रवीण मराठी डांस, भोला मिथुन का और मैं किसी भी हीरो का डांस करता। हम पाँच लोगों ने मिलकर 'पाँच स्टार' डांस ग्रूप बनाया। जहाँ कहीं भी शादी होती हम और हमारी पार्टी डांस के लिए वहाँ पहोंच जाती। हम डांस के नए-नए तरीके ढूँढ़ते रहते। नीलेश भूत का डांस करते वक्त ट्यूब लाइटस अपने सर पर फोड़ता और फिर उस ट्यूबलाइट को खा जाता। इस ट्रिक से कई बार उसके मुँह से खून बहने लगता। हम देर रात

तक सड़क पर बैठकर चाय पीते रहते और तरह-तरह के तुक्के लगाते। हम पाँचों जहाँ भी जाते लोग हमें अलग ही नज़र से देखते। तरुणावस्था के उस दौर में कल्पना के आकाश में उड़ना अच्छा लगता था।

फिल्मों का झुनून तो पहले से ही सवार था। अचानक एक दिन सोचा, 'क्युं न हम लोग एक वीडियो फिल्म बनाएँ ?' फिर आनेवाले दिनों में सड़क पर बैठकर चाय की चुस्कियों के साथ उस काल्पनिक फिल्म की कहानी और अपने-अपने किरदार पर बहस होती रही। नीलेश ने छिपकली नामक विलन का रोल, उसकी वेशभूषा एवं उसकी विशिष्टता खुद ही तय कर ली। मैंने तय किया कि एक सस्पेंस स्टोरी पर फिल्म बनाई जाए। मैं कहानी और संवाद लिखने लग गया। निर्देशन का काम मुझे सौंपा गया। हर एक के दिमाग में अपनी-अपनी काल्पनिक फिल्म बन चुकी थी। हमने अपने-अपने घरों से, दोस्तों से ज़रूरी प्रोपर्टी इकट्ठा की, लोकेशन तय किया, एक कैमरा और कैमरामैन साथ लिया और चल पड़े शूटिंग करने।

मैंने अब तक फोटो केमेरा क्लिक नहीं किया था और निकल पड़ा था सस्पेंस थ्रिलर फिल्म का निर्देशन करने! फिल्म में स्त्री किरदार के लिए मेरी बड़ी बहन कुन्ता को कहा। बहोत समझाने पर आखिर उसको मेरी जिद के सामने हारना पड़ा।

आश्चर्य ! दो साल की अवधि में मैंने वो फिल्म बना डाली। नाम रखा, 'चक्रव्यूह'। शूटिंग तो हज़ारों तकलीफों के बावजूद खत्म की लेकिन एडिटिंग कैसे करता ? अब तक मैं एडिटिंग के बारे में कुछ भी नहीं जानता था।

मैंने जहाँ-तहाँ हाथ पैर मारकर, जैसे-तैसे पैसे जुटाए। वी.एच.एस. टू वी.एच.एस. एडिटींग की। इसी दौरान फिल्म एडिटींग के बारे में काफी तकनिकी बातें जानने को मिलीं। ये एक छोटा सा प्रयास था जो एक तरह से हास्यास्पद था पर दूसरी ओर फिल्म बनाने की अपनी क्षमताओं को जानने का मौका भी था। काफी मशक्कत के बाद फिल्म पूरी करने में सफल रहा। फिल्म को स्थानीय केबल द्वारा दिखाया गया। सभी ने आश्चर्य के साथ काफी

हास्यापस्द प्रतिभाव दिया। फिल्म बनाने का सुकून था... पर अब आगे क्या? बाप तो सट्टे के धंधे में था। मैं सोच रहा था कि क्या मैं भी इसी रास्ते चलूँ... इस मनोमंथन में एक दूसरी वीडियो फिल्म का झुनून चढ़ा... नाम दिया गया, 'थोड़ा सच, थोड़ा झूठ'।

मैंने फिल्म में आलोक, विश्वनाथ और विजेन्द्र को लिया। पहली फिल्म के प्रभाव की वज़ह से और भी लोग आकर्षित हुए । फिल्म की कहानी तीन अनाथ बच्चों की थी जो बंबई की फुटपाथ पर रहते हैं । इनमें से एक सट्टे के अड्डे पर काम करता है, दूसरा भीख माँगता है और तीसरा चाय की कीटली पर काम करता है । ये कहानी उनके जीवन के संघर्ष एवं उनके भूतकाल और वर्तमान पर आधारित थी।

आलोक, विश्वनाथ और विजेन्द्र, तीनों छोटे थे... आधी फिल्म की शुटिंग होते-होते तो सब की मूँछें आ गयीं । फिल्म नहीं बन पाई । शायद मेरे पास अब भी उसकी स्क्रिप्ट कहीं रखी होगी।

समय निकल रहा था । बाप अपने सट्टे की दुनिया में मशगूल रहता । बाप जुए में से रोज़ मुझे दो सौ रुपए देता । मेरी बेरोज़गारी और उस पर समाज सेवा और नाटक जैसी प्रवृत्ति, इसके अलावा नाटक के काम की वज़ह से मेरे बहुधा गाँव के बाहर जाने से मेरी बीवी तंग आकर बार-बार अपने मायके चली जाती । पिछली बार इन्हीं सब बातों से तंग आकर माया मायके चली गई थी । तब बाप ये कहकर उसे वापस लाया था कि, 'हम दक्षिण को दो सौ रुपए खर्चा देंगे, उसमें से सौ रुपए हम तेरे हाथ में देंगे ।' माया ठहर गई थी। सौ रुपए माया लेती और बाकी के सौ रुपए से मैं रोज़ शहर जाता । इस सौ रुपए में से मैं पच्चास रुपए पेट्रोल पर और तीस रुपए इन्टरनेट पर खर्च करता, बीस रुपए बच्चों के लिए बचा लेता । ये दो सौ रुपए तब तक थे जब तक काँच के महल जैसे जुए के धंधे पर पत्थर नहीं पड़ता ।

ऐसे समय में गाउट जैसे असह्य दर्द के साथ, भयंकर आर्थिक कश्मकश में, पाँच बच्चों की ज़रूरतें और उनकी जिदें पूरी करने का मैं प्रयास करता। उन्हें समझाकर या मारपीट कर चुप कराना और साथ ही साथ फिल्म और

थियेटर जैसे क्षेत्र में अच्छे से अच्छा काम कर के टिके रहना, बहोत मुश्किल था। लोग मेरे बच्चों को देखकर हँसते। मुझे मूर्ख कहते की इस जमाने में मैंने पाँच-पाँच बच्चे पैदा किए। मैं चुप होकर उन्हें सुनता रहता, देखता रहता, उनके साथ मिलकर अपने आप पर हँसने लगता।

साक्षी छ: साल की हो गई है। उसमें पढ़ने की लगन खुदबखुद जग रही है। मेरे बच्चे सारा दिन शोर शराबा करते रहते हैं। कभी बहोत मार खाते हैं तो कभी बहोत प्यार पाते हैं। बच्चों की शरारतों से सारा घर परेशान रहता है। बाप सारी रात जुआ चलाने के बाद सुबह सोता है। आयुष हमेशा मेरी ओर देखता रहता है और मेरी नकल करता है। बहोत धमाल मचाता है। साक्षी थोड़ी सयानी हो गई है। वो अपना काम खुद कर लेती है। सोना शांत तो शांत और रोना तो रोना। सुहानी से हम सब बहोत डरते हैं। वो जिसे भी देखती है उसके पीछे लग जाती है। सारा दिन बाहर का चटर-पटर खाती रहती है।

बाप को अगर सट्टा न खेलने के लिए कोई कहे तो वो कहता है, 'तुम लोग इतने बड़े हो गए हो। बीवी बच्चेवाले हो गए हो, देश और दुनिया में नाम हो गया है...कुछ कमाते क्युं नहीं ? क्या सारी ज़िंदगी तुम्हारी और तुम्हारे बच्चों की ज़रूरतें मैं ही पूरा करता रहूँगा ?'

बात कड़वी है लेकिन उतनी ही सच भी है। हम चुप हो जाते हैं। कुछ नहीं बोल पाते।

ये लिखते हुए मैं देख रहा हूँ कि एक घुमन्तु परिवार का तमाशा घर के आगे सड़क पर लगा है। छ: लोगों की टोली में सबसे छोटे कलाकार की उम्र कोई एक साल की होगी। तापमान कोई बयालीस से पैंतालीस डिग्री होगा। लेकिन सूरज की इस गर्मी से ज़्यादा उनके पेट में उठ रही भूख की आग की गर्मी कई गुना ज़्यादा थी। उन्होंने अपना शरीर तोड़ा, मरोड़ा, लोगों ने तालियाँ बजाईं। तपेली पर लगे प्लास्टिक के चमड़े पर लकड़ियों की तपाक से उन्हें एक अद्‌भुत शक्ति मिलती। इस टोली में नन्हें बच्चे भी थे। गिरते, दौड़ते, चिल्लाते, हँसते, लोगों को हँसाते... उनको दिया गया परीक्षण किसी

ऑलम्पिक में भारतवर्ष के लिए स्वर्ण पदक लाने के लिए काफी है। तमाशे के बाद मैंने उनके मुखिया से बात की।

'कितने बच्चे हैं ?'

'सत्रह।'

मेरी पाँचों उँगलियाँ मुँह में थीं।

'कहाँ रहते हो ?'

'घुमन्तु हैं साब। घूमते रहते हैं... यहाँ कल्याण मिल के पास डेरा डाला है... भाई की तबीयत खराब है। अस्पताल में दाखिल है... पैसों की ज़रूरत है।'

बात करते वक्त उसकी आँखों में एक अजीब सा डर था। फिर वो अपना सारा सामान बाँधकर चल पड़े। एक और तमाशे के लिए। १९९८ से हम भी तमाशे करने लग गए थे। हमारी टोली को नाम दिया था 'बूधन थियेटर'। इसके दूसरे दिन 'बूधन थियेटर' के कलाकार भी तमाशा करने वाले थे। तकरीबन पाँच जिल्लों के घुमन्तु व विमुक्त जनजातियों के लोगों के बीच। रात को रिहर्सल चल रही थी। कल्पना कुछ समस्याओं के कारण रिहर्सल में नहीं आ पाई थी। शो चल रहा था कि पुलीस कमिश्नर की हम लोगों पर रेड पड़ी। सात-आठ पुलीसवाले डंडे और लकड़ियाँ लेकर छत पर आ गए और चिल्लाने लगे, 'ए... क्या चल रहा है ये सब ? कोई भागना मत...।'

कुछ क्षणों के लिए रिहर्सल थम गयी। मैंने पूछा, 'क्या बात है भाई ?'

वो सभी सिविल यूनिफॉर्म में थे। मेरी ओर आँख दिखाकर बोले, 'कौन है तू ? और क्या चल रहा है ये सब...?'

'आपको दिख नहीं रहा ? बात क्या है...?'

'पुलीस... पी. सी. बी.,' उनमें से एक ने कहा। 'हमें पता चला है कि यहाँ जुआ चल रहा है।'

'जुआ तो नहीं, साब। हाँ, नाटक में जुए का दृश्य ज़रूर है...'

पुलीस ने 'पुलीस बूधन को पीट रही है' वाला दृश्य देखा और चलते

बने । इस बीच आसपास के सभी लोगों को भागने का समय मिल गया ।

हमारी नाटक मंडली में सिर्फ दो ही लड़कियाँ हैं। चेतना और कल्पना। कल्पना किसी कारणवश नाटक की प्रवृत्ति में शरीक नहीं हो पा रही थी। एक दिन वो बहोत रोई और रोते हुए कहने लगी, 'नाटक, अभिनय करने के सिवा और मेरे पास है ही क्या ? मैं पढ़ नहीं सकी, संसार की जिम्मेवारियों को अच्छी तरह से निभाया... सामाजिक परिवर्तन के लिए मैं इतने वर्ष से नाटक कर रही हूँ... पेट में बच्चा था पर फिर भी नाटक किए ।'

मुझे सापुतारावाली घटना याद आई । राष्ट्रपति अब्दुल कलाम सापुतारा में आने वाले थे । हमें कहा गया था कि हमें राष्ट्रपति के सामने नाटक करना है । ये हमारे लिए एक ऐतिहासिक क्षण था । हमने काफी तैयारियाँ की थीं । कल्पना छः महिने से थी । लेकिन फिर भी उसने अहमदाबाद से सापुतारा सड़क से सफर की तैयारी बताई । कल्पना को संभालने के लिए मैंने चेतना को साथ लिया था । हम सापुतारा समय पर पहोंच गए। राष्ट्रपति काफी देर से आए इसलिए कार्यक्रम की रूपरेखा अंतिम क्षणों में बदल गयी। वो वहाँ सिर्फ एक घंटा रुकने वाले थे । नाटक के मंचन का स्थल भी बदल दिया गया। हम जहाँ थे वहाँ से वो स्थल तकरीबन दो या तीन किलोमीटर दूर पहाड़ियों पर था। मेरे दिमाग में राष्ट्रपति, हमारे अधिकार और घुमन्तु-विमुक्त जनजातियों की समस्याएँ चल रही थीं । हम सब उस स्थल की ओर दौड़े... कल्पना पेट में अपना छः महिने का बच्चा लिए कभी दौड़ती, तो कभी तेज़ चलती । हम सभी ने काले रंग के कुर्ते पहने हुए थे इसलिए ब्लैक कमाण्डो हमारी बार-बार तफ़तीश कर रहे थे । कल्पना के पेट में दर्द उठने लगा था । सापुतारा के ऊबड़-खाबड़ रास्तों से गुज़रते हुए हम जहाँ राष्ट्रपति महोदय आए हुए थे, वहाँ पहोंचे । लेकिन वहाँ भी सापुतारा की किसी संस्था के लोगों ने 'भाषा केन्द्र' द्वारा बुलाए गए कलाकारों में से कुछ कलाकारों को ही प्रवेशपत्र देने की अनुमति दी ।

सर ने कहा, 'मेरा एक भी कलाकार प्रवेशपत्र न मिलने के कारण बाहर रहा तो मैं भी अंदर नहीं जाऊँगा । हम सब इस कार्यक्रम का बहिष्कार

करते हैं ।'

लेकिन नाटक का मंचन हुआ । राष्ट्रपति महोदय के सामने नहीं, बल्कि इस देश के विभिन्न प्रांतो से आए हुए आदिवासी कलाकार भाइयों और बहनों के सामने । मंचन के खत्म होते ही कल्पना को पेट में काफी जोर का दर्द उठा। वो रोते हुए कहने लगी, 'मैं नाटक के बिना ज़िंदा नहीं रह सकती।'

नाटक से लगाव का एक और खराब अनुभव याद आ रहा है। हम गाँधीनगर में नाटक करनेवाले थे। नाटक शुरू होने की तैयारियाँ चल रही थीं कि मेरे चचेरे भाई कालु का फोन आया, 'दक्षिण... डॉ. दीपक वैष्णव मेरी लड़की को दाखिल नहीं कर रहा है । उसकी फाइल यहीं की है । वैशाली की तबियत बहोत खराब है ।'

शायद हड़बड़ाहट में मैंने कहा, 'ठीक है... अभी तुम उसे किसी और अस्पताल ले जाओ और उसे दाखिल कर दो... इस डॉक्टर से सुबह मिलेंगे।' कालु ने थोड़ी बहोत पढ़ाई की हुई थी। लेकिन परिवार में स्वास्थ्य की या कोई पारिवारिक समस्या आती तो परिवार के लोग मेरी सलाह लेते।

उसने 'हाँ' कहकर फोन रख दिया। मैं नाटक की तैयारियों में जुट गया।

नाटक शुरू होने ही वाला था कि फिर से कालु का फोन आया, 'मैं वैशाली को सिविल अस्पताल में ले आया हूँ । डॉक्टर ने हमें नीचे फर्श पर जगह दी है ।'

'ठीक है...ट्रीटमेंट तो चालू करवाओ...' मैंने फोन रखा और नाटक शुरू किया ।

नाटक खत्म होने के बाद फिर से फोन आया। कालु रो रहा था। नन्ही वैशाली मर चुकी थी। मैं स्तब्ध रह गया ।

ढाई साल की बच्ची को डॉक्टर ने हाई डोज़ दिए थे जिससे उसके शरीर में रिएक्शन हो गया था। सिविल अस्पताल पहोंचते-पहोंचते रिएक्शन काफी बढ़ गया था । हमारे परिवार में पहली बार इतनी छोटी बच्ची की मौत हुई थी। दादी तो जैसे पगला गयी थी। बाप ने फूल सी नन्ही बच्ची की श्मशान यात्रा रात ही को निकालने के लिए कहा । कालू मेरा नाम लेकर अपनी बेजान

बच्ची से रोते हुए कह रहा था, 'मैंने फोन किया था तेरे काका को... काका तो बोले सुबह डॉक्टर से मिलेंगे और तू रात को ही चली गई... बता तेरे काका को... बात कर उससे...'

वो मुझे कोस रहा था। मैं चुप था । रात को हमने उस फूल सी बच्ची को दफ़नाया। रात में लोमड़ियाँ जमीन खोदकर बच्ची को खा न जाएँ, इसलिए गड्ढे के अंदर गड्ढा बनाकर, कंटीली झाड़ियाँ डाल दीं जिससे लोमड़ी वहाँ तक न पहोंच पाए । नाटक के झुनून की वज़ह से मैंने उस नन्ही सी बच्ची की ओर ध्यान न दिया और वो किसी और सफर की ओर चल दी। क्या मैं अपने आपको कभी इसके लिए माफ कर पाऊँगा ?

१६ सितम्बर २००६ के रोज़ मुझे अमरिका से प्रौ. हैनरी श्वार्ज का 'जॉर्जटाउन यूनिवर्सिटी' के 'लेनन लिटररी सिम्पॉज़ियम' में डी.एन.टी. पर अपना काम प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रण मिला । इसके लिए मुझे 'जॉर्जटाउन युनिवर्सिटी' के आमंत्रण की रिसीप्ट फैक्स करनी थी। एक पैसा जेब में नहीं था । मैंने बहोत से दोस्तों से दो सौ रुपए माँगे, किसी ने नहीं दिए । आखिरकार माँ को कहकर बाप से माँगे। उसने जवाब दिया, 'नहीं भाई, मेरे पास तो फूटी कौड़ी नहीं है...।'

माँ ने उसे पैसों के लिए जोर किया तो उसने अपने पॉकेट से दो सौ रुपए फेंके और एक गंदी सी गाली दी, 'भंगी की औलाद साले।'

मुझे बहोत गुस्सा आया। माँ को गुस्सा नहीं आया, उसे इसकी आदत हो चुकी थी । माँ के बहोत समझाने पर भी मैंने वो पैसे नहीं लिए । आखिरकार काकी से दो सौ रुपए उधार लिए ।

अस्सी का दशक पूरा होते होते छारानगर के पढ़े-लिखे लोगों में शैक्षणिक, राजकीय और सामाजिक उत्थान की भावना का विकास हो चुका था । गली-मोहल्लों में लोग तरह-तरह के मंडल बनाते जैसे विद्यार्थी मंडल, जय अंबे मंडल, वकीलों के मंडल, वगैरे । इन मंडलों के गठन के पीछे सामाजिक कार्य के साथ न्यायपूर्ण कार्य करने की भी भावना रहती । किसी का झगड़ा हुआ हो और जात पंचायत ने उसका निकाल नहीं लाया या दोनों पक्षों में से

किसी एक पक्ष को पंचायत का न्याय मंज़ूर नहीं हुआ हो तो वो इस तरह के मंडलों में न्याय के लिए आते। फिर वो लोग सामाजिक रीति-रिवाज, कायदे कानून के अलावा कुछ नए जमाने की नई बातों के अनुसार न्याय करते। दोनों पक्ष से पैसा लिया जाता जो मंडल में जाता या सभी के बीच बँट जाता। धीरे-धीरे एक अलग तरह की आधुनिक पंचायत अपना अस्तित्व बना रही थी। इस बीच एक और मंडल की स्थापना हुई जिसे नाम दिया गया, 'विज्ञन आर्ट ग्रूप'। इस ग्रूप का काम था छारानगर में सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को विकसित करना जिसमें नाटक, संगीत, नृत्य आयोजन करने की बात थी। मैं भी इसका सभ्य बना।

एक दिन एक नोटिस मिला। उस में लिखा था, 'कलाकार चाहिए। बादल सरकार लिखित नाटक 'जुलूस' के लिए।'

मुझे अभिनय में हमेशा से रुचि रही है। मैं भी शाम को पात्र चयन के लिए पहोंच गया। देखा तो कोई सिंधी सरदार जिनका नाम प्रेम प्रकाश था, वो आए हुए थे। छारानगर के तकरीबन बीस-पच्चीस युवक-युवतियाँ नाटक करने में उत्सुक थे। वहाँ पंद्रह साल से पचास साल की उम्र के व्यक्ति पात्र चयन के लिए आए थे।

प्रेम प्रकाशजी ने हमें 'जुलूस' का स्क्रिप्ट पढ़ने के लिए दिया। हम एक-एक करके पढ़ने लगे। इस दौरान प्रेम प्रकाशजी हर एक आए हुए कलाकार को घूर रहे थे जैसे वो उनमें कुछ खोज रहे हों। काफी लंबी प्रक्रिया के बाद नाटक में रहनेवाले कलाकारों को पसंद किया गया। खुशनसीबी से मेरा भी चयन हुआ। मेरे साथ अजय, जोशीला, सुदेश, जयचंद, सुमेर, भरत, संजय और कुछ अन्य लोगों का भी चयन हुआ।

वो सख्त ठंडी के दिन थे और रिहर्सल शाला के आँगन में करना होता था। अभी तक बुनियादी शाला में बिजली नहीं थी। इसलिए दो-तीन लालटेन जलाकर रिहर्सल किया जाता। प्रेम प्रकाशजी ने हमें नाटक और नाटक के लेखक, बादल सरकार के बारे में बताया। हमें कुछ ज़्यादा पल्ले नहीं पड़ा था। हम सब शाम को मिलते। ठंड काफी रहती। लालटेन की रोशनी में वो जब

हमसे अलग-अलग शारीरिक कॉम्पोजिशन बनवाते तो ऐसी सख्त ठंडी में भी पसीने निकल जाते । रिहर्सल के दौरान वो हमें बिलकुल भी आराम नहीं करने देते। मुझे काफी अजीब लगता जब वो हमेशा स्क्रिप्ट के हर पन्ने के बाद एक नया किरदार और एक नया कम्पोजीशन बनवाते... कुछ समझ में नहीं आता । नाटक तो बिलकुल ही नहीं ।

हम किसी में भी नाटक का अनुशासन नहीं था । हम एक दूसरे को संवाद बोलते हुए देखकर काफी हँसते। मैं, सुदेश, जयचंद और जोशिला सबसे ज़्यादा तब हँसते जब अजय 'मुन्ना' नाम के किरदार को ढूँढने के लिए आवाज़ लगाता, 'मुन्ना... मुन्ना... तुम कहाँ हो मुन्ना ? जल्दी आओ, मुन्ना... मुन्ना... मुन्ना...।'अजय की काफी पतली आवाज़ निकलती और हमारे मुँह से हँसी के फव्वारे।

लालटेन के उस तिमिर प्रकाश में हमने कोई तीन महीने रीहर्सल किया। नाटक पिच्छत्तर प्रतिशत तैयार हो गया था कि फिर अचानक ही एक दिन बंद कर दिया गया। ऐसा क्युं हुआ, हमें आज तक पता नहीं । लेकिन प्रेम प्रकाशजी के साथ काम कर के नुक्कड़ नाटक बनाने के बारे में काफी ज्ञान हो गया । मेरी हमेशा से ही निरीक्षण करने की आदत रही है। ये मैंने सुरेश राजडा के थियेटर वर्कशॉप में सीखा था । वो हमेशा कहते, 'अभिनेता और निर्देशक दोनों अगर अच्छे निरीक्षक नहीं हैं तो वो कभी अच्छे अभिनेता या निर्देशक नहीं बन सकते।'

नुक्कड़ नाटक से परिचित करवानेवाले तथा उसका प्रारंभिक ज्ञान देने वाले मेरे पहले शिक्षक बने प्रेम प्रकाशजी । हमसे पहले भी उन्होंने हमारे पहले की पीढ़ी के साथ नाटक किया था । प्रेम प्रकाशजी का वो नाटक भी बादल सरकार द्वारा लिखा गया था । वो हमेशा अपनी यादों को ताज़ा करते हुए कहते, '१९८० में छारानगर के आसपास से कोई गुज़रता भी नहीं था । मैं हमारे सिंधी भाइयों के साथ 'स्पार्टक्स' नाटक कर रहा था और उस नाटक के लिए मुझे कुछ ऐसे कलाकार चाहिए थे जो गुलामों का किरदार करें और उनका शारीरिक दिखाव भी गुलामों जैसा हो... सिंधी लोग काफी गोरे-चिट्टे

होते हैं इसलिए वो किसी भी तरह से गुलाम नहीं लगते। मैंने अपनी ये समस्या छारा समाज के चित्रकार मानसिंग छारा से कही और बताया कि, 'मुझे गुलाम चाहिए और तुम्हारे लोग बिलकुल गुलाम दिखते हैं... क्या छारानगर में ऐसे कोई कलाकार मिल सकते है ?'

मानसिंग छारा ने उन्हें रसिक, रतन, प्रहलाद, सरदार जैसे कलाकार दिए। 'स्पार्टक्स' के पहले ही मंचन में प्रेम प्रकाशजी के ढूँढ़े हुए गुलाम कलाकारों ने अहमदाबाद की रंगमंच की दुनिया को भौंचक्का सा कर दिया। छारा कलाकारों के अभिनय को देखकर सभी की आँखें फटी सी रह गई थीं। बादल दा के नाटक का गुजरात में पहली बार मंचन हो रहा था। दर्शक तीसरी दुनिया के इस संपूर्ण नुक्कड़ नाटक को देखकर अचंभे में पड़ गए थे।

वो पहली बार था कि चोर नाम से बदनाम छारा जाति के लोगों को देखने का नज़रिया कुछ बदल रहा था। छारा कलाकारों के अभिनय की सबसे ज़्यादा प्रशंसा हुई थी। छारा जाति के नाटक करने की इस परंपरागत कला ने अपना रंग दिखला दिया था। इस नाटक के काफी मंचन हुए और सभी कलाकार धीरे-धीरे सुलझे हुए अभिनेता की शक्ल ले रहे थे। लेकिन जैसे हमेशा से होता रहा है, आर्थिक और सामाजिक जवाबदारियों ने इन कलाकारों को नाटक से थोड़ा दूर कर दिया। छारा समाज की एक नई पहचान बन ही रही थी कि उस पर समय का काला पर्दा गिर गया।

नब्बे के शुरूआती वर्षों में छारा जाति के पढ़े-लिखे लोगों में एक हलचल आ चुकी थी। काफी मंडल बनते और टूट जाते। उनका आर्थिक शोषण होता या फिर राजकीय। काफी मतभेदों के बावजूद भी 'विज़न आर्ट ग्रूप' ने अपने शुरूआती वर्षों में काफी सांस्कृतिक कार्यक्रम किए जिनमें नाट्य स्पर्धा और गीत संगीत स्पर्धा शामिल थे। इस ग्रूप को पंजिकृत भी किया गया। बस उसके बाद पता नहीं क्या हुआ कि ये ग्रूप मृतपाय होने लगा। लेकिन छारा समाज की इस सांस्कृतिक संस्था ने समाज में परंपरागत सांस्कृतिक हलचल पैदा कर दी थी। कोशिश छोटी थी लेकिन आनेवाले समय में उसका गहरा असर हुआ।

बाप का सट्टे के धंधे में हाथ बैठ चुका था । पुलीस के रजिस्टर में वो बूटलेगर था। उसने चोरी छोड़ दी थी । बारहवीं के बाद मुझे 'एल एंड सी मेहता आर्टर्स' कॉलेज में प्रवेश मिला । कॉलेज अहमदाबाद शहर में नदी के दूसरे पार था । कॉलेज में मेरा मुख्य विषय मनोविज्ञान था । मैंने बारहवीं में कॉमर्स से आर्टस में प्रवेश लिया था। इसलिए मनोविज्ञान पहली बार पढ़ रहा था । काफी रसप्रद लगा । अपने आपके जीवन को देखने का नज़रिया बदल रहा था । मैं मन और व्यवहार के विज्ञान को समझ रहा था । कॉलेज में भी हमारी परंपरागत नाटक और गीत संगीत की कला ने एक नई पहचान बनाई ।

समय बीतता और बदलता जा रहा था। छारानगर में रीति-रिवाज एवं पंचायती राज और उसका ढाँचा बदल रहा था। शैक्षणिक, सामाजिक और आर्थिक बदलाव आ रहे थे। सांस्कृतिक बदलाव की अगर बात करें तो नब्बे के दशक में छारा लोगों ने गायिकी के क्षेत्र में अपना विकास किया। आप जब भी छारानगर में आएँ किसी भी बच्चे से गाना गाने के लिए कहिए ! संगीत और गायिकी यहाँ के लोगों के खून में है और वो परंपरागत है। किसी न किसी बहाने परंपरागत कलाएँ यहाँ टिकी हुई हैं और इन कलाओं ने इस समाज में अभूतपूर्व बदलाव लाए हैं।

छारा युवकों ने अपनी गायकी की कला को 'म्युज़िक बेन्ड' में तबदिल किया । लोगों को अपनी ये परंपरागत कला आर्थिक उपार्जन में काम आई जिससे काफी बड़ा युवा समूह गुनहगारिता से दूर रहा और एक नई पीढ़ी की शुरूआत हुई। ये बदलाव बहोत ज़रूरी है किसी भी अच्छे समाज की नींव के लिए। ये विकास स्वयंभू था। आमतौर पर ये माना जाता है कि सुथार का बेटा सुथार, लुहार का बेटा लुहार, नाई का बेटा नाई और चोर का बेटा चोर बनता है... लेकिन हमारे बाप की पीढ़ी ने इस बात को झुठलाया। उन्होंने अपनी पीढ़ी को सुशिक्षित बनाया। इस प्रक्रिया में उन्होंने कई बार जेलें देखी होंगी, कई बार पुलीस की मार खाई होगी और कई दफ़ा सड़कों पर उन्हें नंगा कर के लोगों ने दौड़ाया होगा... लेकिन इन सबसे उनका अपनी आनेवाली पीढ़ी को सुशिक्षित करने का सपना नहीं धुँधलाया।

एक दिन मुझे सोनलबहन शाह जो राजकोट शहर की 'कडवीबाई कन्या विद्यालय' की प्राध्यापिका हैं, उनसे शाला की बहनों के साथ नाट्य कार्यशाला करने का न्यौता मिला। मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। काफी अच्छा अनुभव रहा। 'कडवीबाई कन्या विद्यालय' की आठवीं, नवीं और ग्यारहवीं कक्षा की छात्राओं के साथ नाटक की कार्यशाला की। सिर्फ सत्रह घंटो में नुक्कड़ नाटक के प्रारंभिक ज्ञान के साथ एक दस मिनिट की नुक्कड़ नाटिका बनाई गई। इस तरह के नाटक करने का उन बहनों में से शायद किसी को भी कोई अनुभव न था।

मेरे आश्चर्य से उन बहनों ने मेरी अपेक्षाओं से कुछ अधिक ही अच्छी पेशकश की। पहले उन्होंने अपनी ही स्कूल में बादल दा के नुक्कड़ की ही तरह चारों ओर ऑडियन्स को बैठाकर नाटक किया। फिर उसी दिन उन्होंने इस नाटक का राजकोट शहर में चार अलग-अलग जगहों पर मंचन किया।

अद्‌भुत बात तो ये है कि इन बहनों ने अपना पहला मंचन राजकोट की एक ऐसी बस्ती में किया जहाँ से कोई गुज़रना भी पसंद नहीं करता। सड़क के बीच अपने जुत्तों से रंगमंच बनाया। आसपास के घरों से थाली, चम्मच, कुर्सी लाकर उन्हें संगीत के साधन बनाए। चौथे मंचन में वो किसी भी तरह से छात्राएँ नहीं लग रही थीं। उनमें मैं एक अलग सी सामाजिक-राजकीय बदलाव की आग को महसूस कर रहा था।

जिस मुद्दे को लेकर वो नाटक कर रही थीं उसके लिए उनमें एक संवेदना पैदा हो गयी थी। उनमें उस मुद्दे के लिए काम करने की प्रेरणा जग गई थी और केवल चौबीस घंटे पहले डरी, सहमी, शर्मीली सी ये बहनें अब न्याय की बातें करनेवाली कलाकारा बन गयी थीं। बदलाव का ये अहिंसक हथियार अपना रंग दिखा रहा था। मेरा काम हो गया था।

राजकोट रामकृष्ण आश्रम के मंदिर के प्रांगण में इस नाटक के मंचन के लिए मंदिर के स्वामिनी ने मना कर दिया। क्युंकि मंदिर के अंदर या प्रांगण में बहनें मंचन नहीं कर सकतीं ऐसी एक परंपरा ब्रह्मचर्य के पालन के लिए चलती आ रही है। हमारे आमंत्रण को मान देकर मंदिर के स्वामीजी मंदिर के

बाहर सड़क पर नाटक देखने के लिए आए। वो काफी भावुक हो गए। नाटक के मंचन के दो घंटे बाद उन्होंने प्रिन्सिपल सोनलबहन को कहा, 'कल शाम पाँच बजे अगर ये बहनें मंदिर के प्रांगण में मंचन करें तो मुझे बहोत खुशी होगी।'

ये सुखद आश्चर्य था। नाटक ने मंदिर की रूढ़ीगत परंपरा तोड़ डाली और बदलाव की प्रक्रिया शुरू हो गई। जो बहनें पढ़ाई की व्यस्तता के कारण नाटक की कार्यशाला में शरीक नहीं हो पाती थीं उन बहनों के साथ मैं हॉस्टेल के प्रांगण में रात आठ से ग्यारह बजे तक नाटक करता। अपनी सहेलियों का इतना संवेदनशील नाटक देखकर काफी सारी बहनों को नाटक करने की प्रेरणा मिली। नाटक को जानने की और करने की उत्सुकता मैं उनकी आँखों में देख सकता था। इसी बीच घर जब फोन करता तो बाप कर्ज़े और कर्ज़ेवालों की हैरानगति के बारे में कहता। माया ने पिछले हफ्ते एक दिन भी बच्चों को स्कूल नहीं भेजा था।

खैर, राजकोट में लोग काफी सहृदयी मिले। 'श्री कडवीबाई कन्या विद्यालय' की प्रिन्सिपल सोनलबहन को हमेशा अपनी विद्यार्थीनियों के भविष्य के लिए चिंतित देखा। पढ़ाई के साथ-साथ उनके जीवन घडतर के लिए दिन-रात काम करते देखा। जैसा किसी आम गर्ल्स या बोयज़ हॉस्टेल में दिखाई देता है ऐसा माहौल यहाँ नहीं था। हर कोई बहन अगर अपने कमरे के बाहर है तो उसके हाथ में पुस्तक है। रात को स्कूल प्रांगण की स्ट्रीट लाईट के नीचे बैठकर बहनों को पढ़ते देखा। स्कूल प्रांगण की मिट्टी और उसके मकान से आज़ादी के लिए लड़नेवाले भक्ति बा, वल्लभकाका और ढेबरभाई जैसे देशप्रमियों की महक आती है। मैं इस स्कूल को 'विद्यापीठ' कहूँगा। दारू की भट्ठियों के बीच रहनेवाले इस छारा को भक्ति निवास, जहाँ खुद भक्ति बा रहते थे, ऐसे पवित्र घर में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँ भक्ति बा के जीवन, उनकी आज़ादी की लड़ाई और समाज कार्य के बारे में जाना। काफी सारे देश और समाज उपयोगी कर्मों के अलावा उन्होंने सन् १९३०, १९४१ और १९४३ में जेलवास भी भोगा था।

ये मेरा सौभाग्य था कि मैं यहाँ साँस ले रहा था। आज़ादी की लड़ाई के विचार गूँज रहे थे। मेरी दूसरी नाट्य कार्यशाला 'पी. डी. मालविया कॉलेज' के विद्यार्थियों के साथ थी। यहाँ सभी लड़कों ने भाग लिया । पहली बार मिलने पर कोई भी लड़का आँख से आँख मिलाकर बात नहीं कर रहा था। मैंने उनके साथ अदृश्य नाटक का प्रयोग किया। हम चाय की कीटली पर रीहर्सल करते। हम राह चलते आम आदमी, दुकानदार या रास्ते पर खड़े किसी भी राहगीर के साथ अदृश्य नाट्य का प्रयोग करते।

एक प्रयोग में दुकानदार ने एक युवक को काफी गुस्से से धक्का मारा, उसे भद्दी सी गालियाँ दी। वो लड़का भिखारी का पात्र कर रहा था। हम सफल रहे थे इस प्रयोग में।

दो दिन की नाट्य कार्यशाला के बाद लड़के हर किसी से आँख मिलाकर बात कर रहे थे। नुक्कड़ नाटक द्वारा आए उनमें सामाजिक चेतना तथा राजकीय बदलाव के कारण उनका भी व्यक्तित्व विकास हो रहा था।

राजकोट शहर में इन दो नाट्य कार्यशालाओं का समय काफी रसप्रद रहा। लिखते-लिखते कब अहमदाबाद आ गया पता ही नहीं चला। मैं जब राजकोट से घर वापस लौटा तो घर पर सभी परिवार के सदस्य चिंतित थे कि मैं लंगड़ाते हुए क्युं चल रहा हूँ। फिर वही गाउट का दर्द। असह्य दर्द!

एक दिन मैं पुराने घर सो रहा था। सुबह जब छः बजने को दस मिनट कम थे तब राहुल का फोन आया। वो बोला, 'पुलीसवाले बाबुकाका को उठा ले गए हैं। मैं तो भागा हुआ हूँ। नगर में अहमदाबाद के सभी पुलीस स्टेशन की पुलीस आई हुई है। हर गली-मोहल्ले में पुलीस है। देख यार बाप को कहाँ ले गए है । कुछ कर।'

मैं हैरान था। काका को पुलीस क्युं उठा ले गयी? थोड़ी देर में सुनील का फोन आया। उसने भी वही बात बताई। वो कह रहा था कि रात को पुलीस ने छारानगर को चारों ओर से घेरकर रेड की है। ठंड काफी थी। लोग अपने-अपने घरों में सोए हुए थे। अचानक पुलीस आई और घर-घर में घुसकर जो चोर हैं उन्हें, और जो चोर नहीं हैं उन्हें भी जबरदस्ती उठा ले गयी। कुछ

लोगों को तो ऐसी ठंडी में मार-मारकर लकड़ियाँ तोड़ी गयीं। बच्चे, बहनें, बूढ़े सभी बिस्तर ओढ़कर सो रहे थे। पुलीस ने न आव देखा न ताव, सभी के ऊपर से बिस्तर उठाकर फेंकने लगे।

पुलीस के छारानगर में घुसने की बात आग की तरह फैल गयी। जो भाग सका वो भाग गया और जो हाथ में आया उसे ले जाकर चौकी पर बिठाया गया। बात क्या है ये किसी को समझ में नहीं आ रही थी। मुझे डर था कि कहीं पुलीस हमारे घर में भी न घुस जाए। मैंने घर पर फोन करके कहा कि बाप को कहीं हटा दो। मैं आ रहा हूँ। बच्चों के स्कूल का समय हो रहा था। माया जल्दी उठ नहीं रही थी। सुबह-सुबह गुस्सा करना पड़ा। मैं जब घर की ओर बढ़ रहा था तब कानों में आवाज़ें आ रही थीं।

'ओ बाली, परले कु भी लेई गए...' (अरे ओ बहन... उसे भी कोई ले गया...)

'भाँतुआ कु कही रही थी... नहस नहस... पण क्या। पुलीसा स कड बंची कर जाँगडा...' (घरवाले को कह रही थी, 'भाग भाग'... लेकिन क्या... पुलीस से बचकर कहाँ भागेगा?)

हर तरफ सिर्फ औरतें दिखाई दे रही थीं। छारानगर के तकरीबन सभी पुरुषों को पुलीस उठा ले गई थी। मैं घर पहोंचा। बाप को कहीं छुपने की सलाह दी। उसने नहीं सुनी। बीरजु कह रहा था कि उसका बाप सुबह दूध लेने निकला तो पुलीस के उसे दो डंडे पड़े। आज सभी बच्चे चाय पीए बिना स्कूल गए होंगे। किसी को घर से बाहर निकलने नहीं दे रहे थे।

बीरजु ने हँसते हुए कहा, 'नकुल बेचारा चाय पिए बिना स्कूल गया। यो दुध नाही लावण देण की कोई सजा ह क्या दक्षिण ? (ये दुध नहीं लाने देने की कोई सज़ा है क्या दक्षिण ?)' हम लोग बहोत हँसे।

करफ्यु जैसा माहौल हो गया था। पुलीस अपना काम होने पर पौ फटते ही चल पड़ी। जनजीवन थोड़ी क्षणों के गंभीर माहौल के बाद सामान्य हो गया। पकड़ के ले गए लोगों के परिवारवालों को आशा थी कि कल तक तो बरी हो जायेंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

कुछ लोगों को दो दिन के बाद छोड़ दिया गया। उन सब पर आई.पी.सी. की धारा १०९ लगाई गई। कुछ लोगों को चार दिन तक पुलीस कमिश्नर की ऑफिस में गैरकानूनी तौर पर रखा गया और धुलाई की गई। इन सभी में मेरी होना भुआ का बेटा, लक्ष्मण गुंगा भी था। भुआ सुबह-सुबह मेरे पास आई और कहने लगी, 'अरे कुछ करो दक्षिण, गुंगे को भी पुलीस पकड़ ले गई है। उसने तो पाँच साल हुए चोरी छोड़ दी है। जब से उसको पासा हुआ तब से छोड़ दी, तो फिर ये पुलीस लोग उसे क्युं ले गए?'

मैं अनउत्तरित और विवश था। बिलकुल वैसे ही जैसे लक्ष्मण गुंगे की माँ।

इस वाकियात के कुछ दिनों बाद मैं निकल पड़ा छोटे कच्छ के रण में अगरिया जनजाति पर फिल्म बनाने के लिए। यहाँ मेरी एक कर्मशील, संवेदनशील अगरिया जनजाति के अनुभवी और कच्छ के रण का संपूर्ण ज्ञान रखनेवाले युवक अम्बुभाई से मुलाकात हुई। दो दिन उनके साथ रण में सफर किया, शूटिंग की। रण में रहनेवाले लोगों के दुःखों को नज़दीक से देखने का, उन्हें समझने का मौका मिला।

कच्छ का छोटा रण अहमदाबाद शहर से तकरीबन एक सौ बारह किलोमीटर की दूरी पर स्थित खाराघोड़ा नामक गाँव से शुरू होता है। इसी एक गाँव में तीन सौ चौरासी विधवाएँ हैं। इस जगह की भयंकरता, शोषण और अत्याचारों को समझने के लिए ये आँकड़े काफी हैं।

इस रण में रास्ते 'चिला' नाम से जाने जाते हैं। 'चिला' मतलब किसी गुज़रे हुए दुपहिंया या चार पहिंयों के टायरों के निशान। बारिश में ये रण समंदर की तरह हो जाता है और पानी सूख जाने पर जब भीनी मिट्टी में ट्रेक्टर या ट्रक के पहिये काफी अंदर गढ़ जाते हैं तो वो एक निशान बना लेते हैं। रण में निकलने के लिए इन चिलों का और सही दिशा का ज्ञान होना बहोत ज़रूरी है।

जैसा की मैंने पहले बताया मुझे अमरिका की 'ज्योर्जटाउन युनिवर्सिटी' से नाटक पर भाषण करने के लिए न्यौता मिला था। घर की आर्थिक परिस्थिति

बहोत खराब थी। नीलम ने वीझा की फीस भरने के लिए मेरी भाँजी पूनम के सोने के कंगन और बालियाँ गिरवी रखी थीं। उसका प्यार रंग लाया। मुझे अमरिका जाने का वीझा मिल गया।

काफी बढ़िया अनुभव रहा अमरिकन कॉन्स्युलेट में। किसी भी पूर्व जानकारी के बिना हर प्रक्रिया से गुज़रना, सहमे से सारी प्रक्रिया को पार करना एक यादगार अनुभव रहा। सिक्योरिटी चेकिंग करनेवालों ने मुझे चार बार बाहर निकाल दिया। कभी मेरे पास मार्कर पेन रह जाती तो कभी गाउट के दर्द की गोलियाँ। मेरी उँगलियों के निशान उन्होंने अपने देश के रिकार्ड में दर्ज कर लिए।

वीझा लेकर विरार की लोकल ट्रेन में बोरीवली तक आ रहा था। पाँच से दस लोगों की जगह सत्तर से अस्सी मुसाफिरों के बीच फँसे मैंने माँ को फोन पे वीझा मिलने की खुशखबरी दी। गलती से बोरीवली स्टेशन की रोंग साईड पर उतर गया। गाड़ी में से कूदने की वज़ह से पैर टूट गया। अपने आपको संभाला। कुछ लोगों ने मदद की। मैं खड़ा नहीं हो पा रहा था। अपने आपको घसीटते हुए प्लेटफोर्म की सीढ़ियों तक पहोंचा। उदार दिल मुँबई वासियों में से किसी ने पानी पूछा तो किसी ने हाथ बढ़ाया। आलोक को फोन किया तो वो शूटींग में था। शैलेन्द्र को फोन किया तो उसे वहाँ तक पहोंचने में देढ़ घंटा लग सकता था। लेकिन शैलेन्द्र ने जिज्ञेश को फोन किया और दोस्तों ने मुझे सँभाल लिया। जैसे-तैसे आलोक के घर पहोंचा।

आलोक के बंद कमरे में कालिदास और भास की नाट्य कृतियों में भारत की घुमन्तु विमुक्त जनजातियों का स्थान, उनकी अभिव्यक्ति, कालिदास की नाट्य संस्कृति और छारा संस्कृति जैसे कई विषयों पर चर्चा हुई। सर के विचार ने हमें इस तरह के नए नाट्य प्रकार के निर्माण के लिए विचारवंत कर दिया था। कालिदास और भास को हम छारानगर की गलियों में ढूँढ़ने लगे। भास की शाकुन्तला को हम आग पर कच्ची शराब निकालती छारा औरतों में ढूँढ़ने लगे। अगर शाकुन्तला को प्रकृति से असीम प्यार है और प्रकृति को शाकुन्तला से तो हमारी छारा औरतों को शराब से और शराब को उनसे

असीम प्यार है। प्रकृति प्रेम अगर शाकुन्तला का जीवन है तो शराब हमारा जीवन है, चाहे वो गुनहगारिता की दृष्टि से ही क्युं न देखा जाता हो। हमने एक नए नाटक की बात की। इस नए नाटक को समय, स्थान, रंगसज्जा और मंचसज्जा की सीमाओं से मुक्त रखने का भी विचार किया।

पैर में बहोत दर्द हो रहा है। मैं कर्णावती एक्सप्रेस से अहमदाबाद की ओर आ रहा हूँ। सफर में अपने अतीत को याद करना आसान हो जाता है। मैंने अब तक अपने व्यक्तिगत जीवन के बारे में बताया लेकिन नाटक की कुछ ज़्यादा चर्चा नहीं हुई। चलो, व्यक्तिगत जीवन से नाट्य जीवन की ओर देखें।

'बूधन थियेटर'। मेरा और मेरे साथियों के जीवन का सबसे सुखद, संघर्षमयी और सफल जीवन। जिसका विचार बीज प्रो. देवी और श्रीमती महाश्वेता देवी ने सन् १९९८ में छारानगर की बदनाम ज़मीन में बोया था। सदनसीबी से उस बीज को सींचने का काम मुझे मिला और समय चलते बीज से टहनी फूटी और टहनियों से हरे पत्ते निकले, इन में से कभी कुछ पत्ते झड़ जाते, कुछ पत्ते फल-फूलकर हरे-भरे हुए। आज वो एक विकसित पेड़ दिखाई दे रहा है जिसमें संभवित फल दिखाई पड़ रहे हैं। इस पेड़ का सिंचन इतना आसान नहीं था।

बूधन पे हुए अत्याचारों को महसूस करते हुए मैंने 'बूधन' नाटक एक बार के मंचन के लिए लिखा था। मैं क्या लिख रहा था, क्युं लिख रहा था, किस के लिए लिख रहा था, मुझे कुछ स्पष्ट नहीं था। कलकत्ता हाईकोर्ट के जस्टीस रोमा पाल के 'बूधन साबर हत्याकांड' के जजमेन्ट को पढ़ा था। अंग्रेजी इतनी अच्छी नहीं आती थी लेकिन समझ पाया। बूधन की ज़िंदगी, उसकी तकलीफ, पुलीस का अत्याचार रोज़ मेरी नज़रों के सामने से गुज़रता। मैं बस उसे याद करता था और संवाद लिखता था। श्यामली को छारा औरत की नज़र से देखा। नाटक कभी बाबा की चाय की कीटली पर लिखता, कभी पुस्तकालय में तो कभी श्मशानघाट जाकर।

आखिरकार नाटक का लेखन पूरा हुआ। रीहर्सल शुरू हुई। बूधन के

पात्र को लेकर काफी लड़ाई हुई। हम रोक्सी की छत पर रीहर्सल करते। काफी लड़ाई-झगड़े और मनमुटाव के बाद बूधन का किरदार सुदेश को दिया गया। वो काफी अच्छा अभिनेता है । बूधन के किरदार को उसने बखूबी अभिनित किया। मैंने अशोक रॉय का किरदार किया । पहले मंचन के बाद श्रीमती महाश्वेता देवीजी ने मुझसे बात नहीं की थी। मंचन के बाद जब मैं उनके पैर छूने गया तो उन्होंने कहा, 'हट ! तू तो अशोक रॉय है जिसने मेरे बूधन को मार डाला।'

बस, वो दिन और आज का दिन। एक बार ही मंचन करने के हेतु से लिखे गए इस नुक्कड़ नाटक के चार सौ से भी ज़्यादा मंचन हो चुके हैं । इस नाटक ने सारे देश में घुमन्तु-विमुक्त समुदायों के लिए एक अहिंसात्मक लड़ाई लड़ी है। हमारे नाटकों ने समाज के आंतरिक और बाह्य समाज के विचारों में काफी बदलाव लाया। नाटक करने की कला भारत के घुमन्तु-विमुक्त समुदायों की वास्तविक अभिव्यक्ति बन रही थी।

श्रीमती महाश्वेता देवी और डॉ. देवी ने सुश्री मल्लिका साराभाई को छारा नाट्य कला के बारे में अवगत कराया। उन्होंने तुरंत हमें 'नटराणी' रंगमंच पर 'बूधन' के मंचन के लिए आमंत्रित किया। ये समय हमारे लिए अकल्पनीय था। हम जैसी जाति के लोगों को पहले श्रीमती महाश्वेता देवी, डॉ. देवी और फिर डॉ. मल्लिका साराभाई जैसी व्यक्तियों का सहकार मिलना ये कुछ अद्भुत क्षण थे। 'बूधन' के मंचन के वक्त मल्लिका दीदी ने न्यायतंत्र और पुलीस विभाग से उच्च अधिकारियों को भी आमंत्रित किया था । नाटक के मंचन की हमने काफी तैयारियाँ की थीं। श्यामली का किरदार निभा रही कल्पना के वास्तविक अभिनय से अभिभूत होकर मल्लिका दीदी की आँखों में आँसू थे। नाटक के पश्चात् उन्होंने छारा एवं इस जैसी कई गुनहगार जनजातियों के समूह के मानव अधिकारों की रक्षा के लिए गुहार लगाई। सर ने कानून और न्यायतंत्र पर काफी तीखे शाब्दिक प्रहार किए। मुझे धुँधला सा याद है, मानव अधिकारों के काफी जानेमाने वकील श्री गिरीश पटेल तथा श्री शेठना साहेब भी मंचन देखने के लिए आए हुए थे। ये पहला वाकियात था की कानून और

न्यायतंत्र दोनों एक साथ भारत के गुनहगार समाज और उसके विकास के लिए चिंतित हुए।

मल्लिका दीदी ने छारानगर की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए हमेशा के लिए 'नटराणी' के द्वार खोल दिए। नाटक द्वारा बदलाव की ये पहली शुरूआत थी।

सूरत अभी आने ही वाला है, पैर बहोत दर्द कर रहे हैं। न बैठा जा रहा है, न खड़ा हो पा रहा हूँ।

'नटराणी' में मंचन के बाद अहमदाबाद नाट्य जगत में छारा नाट्य प्रवृत्ति के बारे में चर्चा शुरू हो गई थी। जो कोई इसका मंचन देखता उसे विश्वास नहीं होता की ये चोर इतना वास्तविक अभिनय कर सकते हैं । वो अभिनय नहीं था, वो हमारे जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति थी और नाटक उस अभिव्यक्ति का माध्यम बना था।

मैंने देखा है जहाँ भी 'बूधन' का मंचन हुआ, चाहे वो रंगमंच हो, शादी का मंडप या कोई खुला मैदान, कोई मीटींग या गली, नुक्कड़ या चौराहा, बूधन पर हो रहे अत्याचार और बूधन के लिए श्यामली के पुलीस थाने के कल्पांत से लोगों की आँखें भर आतीं। नाटक के पश्चात लोग हमें गले लग-लगकर रोते। हम ये नहीं समझ पाते की ऐसा हमने क्या बताया कि लोग इतने भावुक हो जाते। समय के साथ-साथ धीरे-धीरे समझ में आने लगा । नाटक के मंचन का मीडिया काफी हकारात्मक कवरेज देती।

मेरी कॉलेज की पढ़ाई खत्म हो गयी थी। एम.ए. करने की कोशिश की लेकिन पूरा नहीं कर पाया। कारण ! एडवर्टाईझमेन्ट का स्वतंत्र बिजनेस शुरू किया। कोई ऑफिस, कोई फोन नहीं। ६१८१ स्कूटर पर शहर में जाता और बड़े-बड़े शोरूम के सामने जाकर बैठता। कभी अंदर घुसने की हिंमत होती तो कभी नहीं। घंटो शोरूम के सामने जाकर बैठता। सोचता । अंदर जाकर क्या बात करूँगा ? कैसे प्रेजन्टेशन करूँगा ? क्या कॉन्सेप्ट सुनाऊँगा ? मैंने विझीटींग कार्ड छपवाये हुए थे। कई जगह तो कार्ड में छारानगर का पता देखकर ही लोग बाहर निकाल देते। काफी अपमानित होता लेकिन साथ ही

अपने ध्येय पाने के लिए मनोबल मजबूत भी होता।

एडवर्टाईझमेन्ट का बिजनेस नहीं चला। न चाहते हुए बाप का सट्टे का धंधा संभालने लगा। मैं भी पेट के लिए और बाप का कर्ज चुकाने के लिए इस रोमांचक, दर्दनाक दुनिया का भाग बन चुका था। कोठा, आंकडा, पाना, हाजर, हाजरपाना, चकरडी, कल्याणबजार, रतनबजार में इतना खो गया था कि वो सब सपने में भी दिखाई देते थे। ये स्वप्न दर्शन सिर्फ मुझे ही होता था ऐसा नहीं है। दो रुपये का सट्टा खेलनेवाले से करोड़ों का सट्टा चलानेवाले हर एक आदमी पर ये धंधा अपना कब्ज़ा जमा लेता है।

वरली मटके के धंधे के साथ-साथ नाट्य प्रवृत्ति करना बहोत ही कठिन था। एक तरफ पेट के लिए और कर्जा चुकाने के लिए गुनाह करना पड़ता तो दूसरी ओर सामाजिक बदलाव के लिए संघर्ष करना होता। बहोत मुश्किल था।

एक दिन 'चोली के पीछे क्या है ?' नाटक का ग्रान्ड शॉ होने वाला था। मैं 'सेवा' की बहनों के साथ नाटक और नाटक के पोस्टर डिझाईन में व्यस्त था। राजेश मणीनगर बस्ती से सुबह से फोन कर रहा था। कह रहा था, 'रात को डेढ़ बजे पुलीस हमारे टांडे से मेरे जमाई जय को ले गई है। वो लोग किसी लड़के को पकड़कर लाए थे, उसे वहाँ बस्ती में बहोत मारा और फिर अचानक पुलीस जय को गाड़ी में बिठाकर ये कहकर ले गई की हम इसे आधे घंटे में पूछताछ कर के छोड़ देंगे।'

जय नहीं आया था। घाटलोडिया पुलीस थाने से फोन आया। उसे किसी चोरी के गुनाह में गिरफ्तार किया गया था। दूसरे दिन सुबह पुलीस ने उसके बूढ़े बाप के काँपते हुए अँगूठे का निशान किसी कागज़ पर ले लिया था। जो घर के लोग पुलीस थाने गए थे उन सबको एक लाईन में नीचे बैठाकर इलेक्ट्रीक करंट देने की धमकी दी और चिल्लाते हुए कहा, 'तुम्हारे लड़के को बोल दो की सीधी तरह सारी चोरियाँ कबूल कर ले, नहीं तो तुम्हें करंट देंगे।'

लोगों के कानों की सफाई करनेवाले ये गरीब सूखे पत्ते की तरह काँप

उठे। राजेश ने मुझे फोन किया। मैं शाम को पुलीस थाने गया। मैं थाने के बाहर कुछ पूछताछ कर ही रहा था कि पुलीस इन्सपेक्टर पंडया आए और कुछ पुलीसवालों को भेजकर मुझे बुलाया। पुलीस मेरे साथ बेहूदगी से व्यवहार कर रही थी। पुलीस इन्सपेक्टर और अन्य पुलीस कर्मीयों ने मेरा थैला और मेरी नोट्स जिस में मैं अपनी आत्मकथा लिख रहा था, छीननी चाही। वो मेरी हर बात को हवा में उड़ाकर कहने लगे, 'तू ऐसे चोरों के लिए काम करता है ? इनको मकान दिलाकर क्या करेगा ? तू कौन है ? कहाँ से आया है ? इन लोगों को कैसे जानता है ? तू भी इस गेंग के साथ शामिल है ?' मुझ पर जैसे सवालों की बौछार कर दी। मुझे बोलने को मौका ही नहीं दिया और मुझे भी उनके साथ बंद करने की धमकी दी। मैं बात करे जा रहा था, ज़हन में बच्चे, परिवार पे कर्ज़, अपना करीयर सामने आ रहा था।

वो मुझे पी.एस.ओ. ऑफिस में ले गए। ऑफिस में बहोत सारे गुनहगारों के फोटो लगाए हुए थे जिन में सबसे ज़्यादा छारानगर के लोगों के थे।

'तुम्हारा नाम ?'

'दक्षिण... पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण। '

'क्या ?'

'दक्षिण...'

'पूरा नाम ?'

'दक्षिण नंदलाल बजरंगे ।'

'उम्र?'

'बत्तीस साल।'

'ये बजरंगे यानी कौन सी जात ?'

मेरे सामने वो निर्दोष लड़का बैठा था जो बड़ी ही आशाभरी नज़र से मुझे देख रहा था। मै उससे आँख नहीं मिला पाया ।

मैंने कहा, 'बजरंगे यानी हम राजस्थान के गंगानगर से हैं।'

मैं सोच रहा था। अगर 'छारा' कहा तो वो लोग छोड़ेंगे नहीं और मुझे

भी अंदर डाल देंगे... मैं डर गया था लेकिन अपने डर पर अभिनय हावी हो गया।

'भाट। भाट जाती के साब,' मैंने कहा।

पुलीसवाले ने अजीब सी नज़र से मुझे देखा। जय मुझे आशाभरी नज़र से घूरकर देख रहा था...मैं कुछ नहीं कर पाया। आज पहली बार मैंने अपनी पहचान छुपाई...

जय के घरवालों को रात को पुलीस ने भगा दिया।

चौबीस घंटे होने को आए थे। हमने कमिश्नर को अर्जी देनी चाही। राजेश और जय के माता-पिता रात को बारह बजे घर पे आए। हमने अर्जी बनाई। जय के बाप को डर था कि रात को कमिश्नर को अर्जी की तो पुलीसवाले गुस्सा होकर जय को मारेंगे। हमने तय किया की कल सुबह ये काम करेंगे और उस रात जय को बूधन के सहारे छोड़ दिया जाए। मैं ये मानता हूँ, इसे आप अंधश्रध्दा भी कह सकते हैं, बूधन सबर की आत्मा हमेशा हमारे साथ रहती है, अत्याचारों के खिलाफ बोलने की हिम्मत देती है। मेरा ये मानना भावुक हो सकता है लेकिन ये मेरा विश्वास है।

जय की शादी अभी पन्द्रह दिन पहले ही राजेश की लड़की के साथ हुई थी। इस वाकियात से कविता लिखने का मन हो रहा है।

सूरज उगने का इन्तज़ार
इस कातिल ठंडी को कहो की
गरम हुँफ बनकर,
उस लाचार की पिंडियों पर पड़े
लकड़ियों के निशानों को गरम करे,
सूरज उगने का इन्तज़ार...

पुलीस ने कुछ दिन तक्तीश की लेकिन उन्हें कुछ नहीं मिला। एक छोटा सा केस दर्ज कर के जय को छोड़ दिया।

इस तरह के वाकियात मेरी ज़िंदगी में बहोत बार हुए हैं। अपमान और अत्याचार सहन करने की तो जैसे आदत हो गयी है। जीवन और अपने कार्य में जो भी घटित हो रहा था उसे लिखना सर ने सिखाया। हमारी आनेवाली पीढ़ियों के लिए जीवन को अक्षरों में तबदील करना ज़रूरी है । इस किताब को लिखते हुए अपने आप में कुछ मोटे प्रकार के बदलाव महसूस कर रहा हूँ, जैसे की जो घटनाएँ, व्यक्ति, उनकी बातें, समाज, सामाजिक-धार्मिक परंपराएँ ये सब मेरी ज़िंदगी का एक आम हिस्सा थे। मेरी ज़िंदगी जो नदी के बहाव की तरह बस बही जा रही थी। अब मेरी आँखें और मेरी कलम इस संवेदनशीलता, निर्दोषता, कट्टरता, सहनशीलता, बोली बोलने के अंदाज, गालियाँ, आए दिन के झगड़े में लेखन को, साहित्य को ढूँढ़ती हैं। इन सबको देखने का मेरा नज़रीया बदल गया है । मैं नहीं जानता ये परिवर्तन कैसे आ रहा है। प्रेरणा और इस आ रहे आंतरिक परिवर्तन का ये सफर काफी जीवंत है। ये अकल्पनिय जीवन है।

अहमदाबाद मेगा सीटी बन रहा है। मोदी का वायब्रन्ट गुजरात गरीबी को वायब्रन्ट कर रहा है। एक साल पहले भारतीय प्रबंध संस्थान, अहमदाबाद की फुटपाथ पर पड़े घुमन्तु तांडे की एक लड़की ने सख्त ठंड की वज़ह से दम तोड़ दिया था। आज एक साल के बाद फुटपाथ सुंदर बना दी गयी है, रास्ते चौड़े किए गए हैं, तांडा बिखर चुका है, और इसी जगह पर एक महिने पहले एक बच्ची ने जन्म लिया है।

उसके पिता राजुभाई ने कहा, 'दक्षिणभाई आप इसका नाम रखो।'

मेरे मुँह से अनायस ही निकल पड़ा, 'भाषा, आज से हम इसे भाषा कहेंगे।'

जिस तरह भारत की विभिन्न भाषाएँ आज अपने अस्तित्त्व को टिकाए रखने के लिए लड़ रही हैं, क्या ये 'भाषा' भी वही संघर्ष नहीं कर रही है ? दोनों में साम्यता है, कहीं विरोधाभास नहीं।

अमरिका जाने के लिए टिकट आ चुकी थी। बाप ने टिकट दी और सट्टा लगाने में मशगूल हो गया। माँ ने सोच समझकर पासपोर्ट, वीझा और

टिकट कुन्ता के घर रख दिए थे। उसे डर रहता था कि कहीं पुलीस की रेड हुई तो कोई नई दिक्कत सामने आ जाएगी।

एक दिन मैं पुरानी डायरियाँ पढ़ रहा था जिन में जीवन में मैंने घटती घटनाओं को शब्दरूप दिया था। आज ये शब्द अपने स्मरणों को ताज़ा करने में काफी मदद कर रहे हैं। एक बार सर ने कहा था, 'जीवन को रोमांचक बनाना है तो जीवन को शब्दरूप दो।'

सच। जो घटनाएँ मेरे स्मृतिपटल से कहीं खो गई थीं वो अब दिखाई दे रही हैं। वर्तमान में भूतकाल को जीने का, उसे समझने का भी एक जीवन होता है, एक रोमांच होता है। मैं पढ़ रहा था...

'स्तन दाइनी' के रिहर्सल चल रहे थे। बच्चों को तीस साल दूध पिलाने से जशोदा को ब्रेस्ट केन्सर हुआ था। 'सत्य की तरह उसका दूध आज बच्चों को कड़वा लगने लगा है।' एक ओर वो तड़प रही है। दूसरी ओर उसके बच्चे उसे देख रो रहे हैं। रीम्मु। जिसकी उम्र कोई आठ या नव साल की होगी, वो यशोदा के बच्चे का अभिनय कर रहा है। टीम में सबसे छोटा रीम्मु अभिनय करते हुए सही में रोने लगा। वो जशोदा को तड़पते देख रो रहा था। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। शायद उसने जशोदा की इस तड़प को बहोत नज़दीक से देखा होगा।

ये अभिनय नहीं था। कतई नहीं।

चलो। पीछे मुड़कर देखते हैं...

परिस्थितियों के वश माया से लव मैरेज किया। तारीख ठीक से याद नहीं है। शायद मैं समाज में पहला लड़का था जिसने अपने ही समाज की लड़की के साथ कोर्ट में शादी की। ये काफी दुःखद समय था। मैं बहोत स्वार्थी हो गया था। मेरे इस कदम से जात-जमात में परिवार को काफी शरम महसूस हुई। लोग माँ और बाप को परोक्ष तरीके से ताने मारते। मेरे इस कदम से मेरी बहनों को भी काफी सहन करना पड़ा। दो बहनें तब कुँवारी थीं। मैंने उनके बारे में भी नहीं सोचा। बाप ऊपर से काफी सख्त लगता था लेकिन उसने अकेले कमरे में खून के आँसू रोये थे। माँ का तो जैसे दिल ही बैठ गया

था। वो खुलकर बात तो नहीं कर सकती थी लेकिन कई बार मैंने उसकी आँखों में मेरे लिए नफरत, धुत्कार और दुःख देखा था।

बाप ने मुझे घर से निकाल दिया था। मैं दादी के घर रहता था। माया के साथ रोज़ किसी न किसी बात पर झगड़ा होता। झगड़ा और भद्दी गालियाँ जैसे जीवन बन गया था। हम दोनों कोई तीन महिने साथ रहे फिर माया अपने घर चली गई और मैं अपने घर। घरवालों को मेरे लिए बहोत गुस्सा था। उनको जैसे-तैसे शांत किया। समाज ने मेरी 'सीटीये पाण ब्या अन सगाई करी' (सीटीयाँ बजाकर सगाई की)। मैंने जब शादी की तब माँ-बाप, भाई-बहन, रिश्ते-नातेवाले, कोई भी नहीं थे। यहाँ तक की मेरे पास बैंडवालों को बुलाने के भी पैसे नहीं थे। इसलिए दोस्तों ने बैंड के बजाय सीटियाँ बजाकर मेरी सगाई करवाई। ये सामाजिक काली टिल्ली मुझ पर लग चुकी थी।

माया कई बार बहोत ज़्यादा परेशान हो जाती तो कहती, 'पता नहीं वो कौन सी अशुभ घड़ी थी जब मैंने तुझसे प्यार किया और शादी की...'

गुनहगारिता वाले माहौल में रहकर सच्चाई, मेहनत और ईमानदारी के रास्ते चलकर पाँच बच्चों की जिम्मेदारियों के साथ ज़िंदगी जीना काफी मुश्किल है। और वो भी ऐसे वक्त जब मैं खुद अपनी नई पीढ़ी बनाने के लिए संघर्ष कर रहा हूँ। बहोत मुश्किल है।

मैं शायद ही माया को हाथ में घर खर्च के लिए पैसे दे पाता। लेकिन वो किसी भी तरह से घर चलाने के लिए जुगाड़ कर लेती। एक दिन मैंने तंग आकर कह दिया, 'साक्षी और आयुष को नीलम के घर और सुहानी तथा सोना को चंद्रा काकी के घर खाने के लिए भेज देना। तू तेरे घर जाकर खा लेना और मैं अपना जुगाड़ कर लूँगा।'

एक दिन चलती आर्थिक कठिन परिस्थितियों से तंग आकर माया को कह दिया, 'एक महिने तक राह देखूँगा। अगर कुछ नहीं हुआ तो भोलु की टुकड़ी में जुड़ जाऊँगा।'

मेरी उम्र कोई सोलह-सत्रह साल की होगी जब मुझे माया से दिल लगा था। हम दोनों तकरीबन-तकरीबन रोज़ मिलते। मेरे घर पे भी पता चल गया

था लेकिन मैं घरवालों की बातों को टाल देता था। बाप मेरी कहीं और शादी करवाना चाहता था लेकिन मैंने कभी उसकी बात नहीं मानी। माया के परिवार से उसे काफी नफ़रत थी और उसकी वज़ह बताते हुए वो कहता, 'उस लड़की के दादा जालमसिंग जो छारानगर के मुखी थे, उन्होंने भरी कोर्ट में तेरी माँ के गले की सोने की चेन माँगी थी। मैंने उसे कहा था कि मैं छूटने के बाद दे दूँगा, लेकिन उसने एक बात नहीं मानी और कोर्ट में तेरी माँ के गले से चेन निकलवाई। तब जाकर मेरा जामीन हुआ और मैं जेल से छूटा।'

उसे काफी नफ़रत थी माया के परिवारवालों से और मुझे माया से प्यार। इस विरोधाभास की वज़ह से काफी संघर्ष करना पड़ता था। नफ़रत और प्यार का ये उतार-चढ़ाव कोई पाँच साल तक चला।

एक दिन मैं सुबह नहाकर निकला था कि बाप ने कहा, 'तू जिस लड़की के साथ बोलता था उस लड़की ने अग्निस्नान कर लिया है।'

मेरे पैरों से ज़मीन सरक गई थी। मैं अवाक, स्तब्ध था। समाज और घर परिवारवालों की परवाह न करते हुए मैं माया को देखने उसके घर की ओर दौड़ा।

वो तड़प रही थी। समाज की आँखें, आश्चर्य और शंका से भरी मेरी ओर थीं। माया को तड़पता देख जैसे मैं टूट ही पड़ा। वो 'दक्षिण... दक्षिण' कहे जा रही थी । मैं आज तक समझ नहीं पाया की आखिर माया के जलने की वज़ह क्या थी । उस हादसे के एक दिन पहले हम लोग रोज़ की तरह हँसी-खुशी मिले थे। उस रात वहाँ क्या हुआ नहीं जानता। सुबह माया ने ये हरकत कर ली। मैंने कई बार उससे पूछा लेकिन उसने कभी नहीं बताया। जो भी हो उसका चालीस प्रतिशत शरीर बुरी तरह जल गया था।

मैंने अक्सर देखा है। जब ऐसे वाकियात होते हैं तो लड़का कहीं दूर भाग जाता है, जिससे उसे जात पंचायत या सरकार में फँसाया नहीं जाए। मैं नहीं भागा। मैं माया के पास गया जिससे उसे हिंमत हो। सब लोग मुझे मूर्ख कह रहे थे। पता नहीं ये झुनून ही कुछ ऐसा था कि मैंने कोई घर-परिवारवालों की परवाह नहीं की। जानता था कि समाज में बाप की इज्ज़त उछल रही है।

लेकिन मैं मजबूर था। मुझे माया को बचाना था। इज्ज़त फिर से बनाई जा सकती थी, माया वापस नहीं आ सकती थी।

सामाजिक तौर पर काफी चर्चित और डीस्टर्बड ज़िंदगी थी। साथ-साथ अपना करीयर बनाने का भी सवाल था। इसी समय दौरान मुझे एक काफी अच्छे प्रोड्युसर मिल गये। सिध्धिकभाई। ट्रावेल का धंधा था उनका। वो फिल्म भी बनाना चाहते थे। फिल्म के लिए वो पैसा लगाने के लिए तैयार हो गए। जब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो लगता है जैसे ये एक अजीब समय था। मेरे पास पुराना काफी खसता हालत वाला ६१८१ नंबर का 'प्रिया' स्कूटर था। स्कूटर की क्लच वायर कभी भी टूट जाने का या पंचर होने का भय रहता तो उसके लिए दस रुपये बचाकर रखता। बाकी के दस रुपयों में नमकीन खाकर पेट भर लेता। छारानगर से रायपुर और रायपुर से छारानगर बीस रुपये के पेट्रोल में आ-जा सकते थे । इस तरह रोज़ कम से कम चालीस रुपये का जुगाड़ करना पड़ता। और लोगों से जब जाकर मिलता या फिल्म की चर्चा करता तो लाखों-करोड़ों की बातें करता। मैंने कभी अपनी खराब परिस्थितियों को अपने विचारों या अपने मनोबल पर हावी नहीं होने दिया। मैं कितनी भी खराब परिस्थितियों में काफी स्वस्थ होकर बात कर सकता हूँ। ये धैर्य मुझे मेरे बाप से सीखने मिला है।

वर्ष २००५ में भाषा केन्द्र द्वारा मुझे दिल्ली भेजा गया। घुमन्तु व विमुक्त जनजातियों के राष्ट्रीय सम्मेलन के को-ओर्डिनेशन करने की जिम्मेदारी के साथ। तकरीबन छ:-आठ महिने के लिए। ट्रेन में ही मैंने लिखना शुरू किया।

सुबह का वक्त था। मै दिल्ली जाने की तैयारी कर रहा था । बाप ने मेरी माँ की ओर देखा, 'हाँ...हाँ... बेटा दिल्ली जा रहा है। बड़ा मिनिस्टर बनने जा रहा है।' चिड़चिड़ाते हुए बाप ने मेरा आत्मविश्वास तोड़ने की नाकाम कोशिश की।

सुबह के कोई दस बज रहे होंगे। मेरी माँ और मेरी बहन गंगा के सिवाय परिवार के सभी सदस्यों को देर से उठने की आदत थी। मैंने अपने रोज़गार के लिए दिल्ली जाने का फैसला किया था और बाप उससे काफी नाराज़

था। बाहरी तौर पर वो अपनी नाराज़गी नहीं जता रहा था लेकिन अंदरूनी तौर पर मेरे इस फैसले से वो काफी अस्वस्थ था।

'तू क्या करेगा ? क्या करेगा वहाँ ? कितना पैसा कमा लेगा दिल्ली जाकर?' मेरी चुप्पी ने उसके सवालात बढ़ाए। माँ और दादी के साथ तकरीबन परिवार के सारे बाकी सदस्य वहाँ बैठे हुए थे।

'बोल ना। कितना पैसा कमाएगा वहाँ? कितना पगार मिलेगा तुझे ?'

मैंने अपनी चुप्पी तोड़ी। कहा, 'मिलेगा कोई आठ-नौ हज़ार। रहने और खाने-पीने की वो लोग ही व्यवस्था कर रहे हैं।'

बाप ने बात को उड़ाते हुए कहा, 'आठ-नौ हज़ार...'

मैं थोड़ा चिड़चिड़ाया, 'बाप, मेरी उम्र भी अब तीस साल की हो चुकी है। और पिछले दो-तीन साल से घर में एक ही समय का खाना बना पाते हैं। बच्चों की पूरी साल की फीस नहीं भर पाया। आखिर कब तक मैं भी हाथ पे हाथ रखकर बैठा रहूँ?'

बाप को आदत थी, वो हमेशा नहाकर माता की दिवा-बत्ती कर के, सीढ़ियों पर बैठकर बीड़ी पीता। उसने बीड़ी जलाई।

मैंने कहा, 'यहाँ कुछ काम नहीं है तो कहीं बाहर जाकर हाथ पैर चलाऊँ, इस तरह बैठे-बैठे तो ज़िंदगी खत्म हो जाएगी।'

'तो यहाँ कुछ कर ना,' वो चिल्लाया।

'यहाँ कुछ काम है ही नहीं। फिल्म से संबंधित यहाँ कोई अवकाश नहीं है। दिल्ली जाऊँगा। ऑफिस के साथ-साथ कुछ अच्छे कॉन्टेक्ट बढ़ेंगे तो मैं भी आगे बढ़ूँगा,' अंत में मैंने कह ही दिया। 'आखिर मेरे भी कुछ सपने हैं,' मैंने अपने दिल पे पत्थर रखकर कहा, 'कर्जे का टेन्शन है। वो आप अपनी तरह से निपटा लेना।'

'उसकी चिंता तुझे नहीं करनी है। वो सब मैं देख लूँगा।' उसने बीड़ी का धुँआ निकालकर अपनी छाती थपथपाते हुए कहा, 'ये नंदु है, नंदु... सब कर्जेवालों को जवाब दे देगा।'

और फिर उसने बीड़ी का एक और कश खींचा और अपनी आँखें छोटी कर किसी विचाराधीन अंदाज में धुँए को हवा में छोड़ा। ये बाप की विचाराधीन होने की एक विशेष अदा है।

उसके बाद अगला पिछला सब कुछ सोचकर आखिर मैंने सर को फोन किया और कहा, 'आय एम रेडी टु गो टु दिल्ही।' उन्होंन मुझे अप्रेल में जाने को कहा। मैं किसी को भी कुछ कहकर नहीं जाना चाहता था क्युंकि मुझे डर था कि कहीं कर्जेवालों को, उस में भी विशेषकर अश्विन को पता चल गया तो बवाल खड़ा हो जाएगा। मेरा डर लाझमी था। बात मेरे परिवार में फैल गयी। मेरे चचेरे भाई सुनील द्वारा सामने मधु भुआ को पता चल गया। मैंने तकरीबन एक साल पहले जुआ चलाने के लिए उनसे कुछ पैसे उधार लिये थे जिसका मैं अब तक व्याज का भुगतान नहीं कर पाया। ये पैसे दस प्रतिशत प्रति मास व्याज पर थे, इसलिए अब तक उसका मुद्दल जितना तो व्याज हो गया था। मैंने जैसे-तैसे उनको समझाया और दिल्ली की राह पकड़ी। न चाहते हुए भी बाप ने बनावटी मुस्कान के साथ 'जय माताजी' कहकर बिदा किया। माँ आँख नहीं मिला पा रही थी, उसकी आँखें डबडबा रही थीं, लेकिन फिर भी उसने हँसते हुए, 'जय माताजी' कहा। माया बच्चों की तरह रो रही थी। हाँ, बिलकुल बच्चों की तरह। बच्चे माँ के आँसुओं को समझ लेते हैं इसलिए सुहानी और सोना भी रो रहे थे। मैं पहली बार परिवार से कोई छ: महीने की अवधि के लिए दूर जा रहा था। वो भी परिवार को ढेरों मुसिबतों में छोड़कर... देखते ही देखते सारा परिवार इकठ्ठा हो गया। मैं हँसने की कोशिश कर रहा था, शायद सबको हँसता देखने के लिए। मैं कोशिश ही तो कर रहा था।

लेकिन पहले ऐसा नहीं था। जब मेरा बाप उसके बाप के साथ टुकड़ी में चोरी करने के लिए जाता था तो कोई रोना-धोना नहीं होता था। तब हम लोग बहोत छोटे थे। हम लोग रात को सोए रहते थे और बाप हमें नज़रभर देखकर अपने साथियों के साथ पौ फटने से पहले निकल पड़ता।

रात को काफी अंधेरा हुआ करता था बस्ती में। गाँव में शायद ही किसी

के पास लाइट कनेक्शन था। पीपल के पेड़ के नीचे हमारे एक चाचा रहा करते थे। वो हमेशा सफेद धोती और सफेद सूतवाला कुर्ता पहनते थे। उनका एक पैर नहीं था और घोड़ियों के सहारे चलते थे। बड़े बाल और बड़ी-बड़ी दाढ़ी, वो हम सब बच्चों को कहानियाँ सुनाते थे। कई बार तो उनकी कहानी सुनते हम वहीं पीपल के पेड़ के नीचे ही सो जाते थे। अपनी कहानियों के द्वारा उन्होंने मुझे एक अलग दुनिया के सपने देखना सिखाया। मेरी दुनिया मेरी बस्ती तक सीमित थी।

इस अंधेरी बस्ती के बाहर भी कोई दुनिया है, वो बाबा की कहानियों और उस वक्त बस्ती में लायी गयी एक मात्र टी.वी. से पता चला। बस्ती में सबसे पहले टी.वी. अशोक छारा के घर आई। हम सब बच्चे शाम को अशोकभाई के घर जाते और उनकी खिड़की से झाँककर टी.वी. देखते। मैं और काल्या, मेरे काका का लड़का और मेरे बचपन का साथी, दोनों जैसे पागल थे टी.वी. देखने के। अंधेरा पड़ते ही हम लोग खिड़की के आगे की जगह पर कब्ज़ा कर लेते। टी.वी. देखकर काफी आश्चर्य होता की आखिर ये सब कैसे होता होगा ? ये नाचने-गानेवाले, हीरो-हीरोईन, ये इतने से डिब्बे में कैसे आ जाते होंगे?

मैं और काल्या अपने-अपने तुक्के लगाते। हमारे घर में रेडियो था। एक दिन बाप ने किसी कारणवश उसे खोला हुआ था। मैंने देखा की उसमें छोटे-छोटे गुड्डे के आकार जैसी कुछ रबर की चीजें लगी हुई हैं । बस फिर क्या था। मैं तुरंत काल्या के पास भागा।

काल्या सोरठ खेल रहा था।

'काल्या... काल्या...'

जख्मी के सोरठ के पत्तों की थेली में से पत्ता निकालते हुए। काल्या ने अमिताभ बच्चन पर बीस पैसे रखे हुए थे। पत्ता मिथुन का खुला। काल्या हार गया।

'क्या हुआ ?' काल्या ने पूछा ।

'अबे मुझे पता चल गया है कि ये टी.वी. में हीरो-हीरोईन कैसे आ

जाते हैं।'

काल्या उछल पड़ा।

'क्या बात कर रहा है ? तुझे कैसे पता चला ? तू क्या टी.वी. के अंदर गया था ?'

'अबे नहीं। मुझे पता चल गया है कि ये सारे हीरो-हीरोईन टी.वी. और रेडियो के अंदर ही बनाये होते हैं। मैंने रेडियो के अंदर देखा। छोटे-छोटे गुड्डे-गुड्डियाँ अलग-अलग जगह पर लगाए हुए हैं। जब हम टी.वी. या रेडिया चालू करते हैं तो वो लोग अंदर गाते-बजाते और नाचते हैं। अंदर एक बिलोरी काँच होता है जिससे ये गुड्डे-गुड्डियाँ हमें टी.वी. पर बड़े दिखते हैं। मैंने अपनी आँखों से उन्हें रेडियो के अंदर देखा...'

'अंदर लंबु बच्चन था ? कैसा लग रहा था वो ?' काल्या मेरी ओर चकित होकर देख रहा था।

'अबे, मैंने रेडियो खोलकर देखा। एक बार टी.वी. आ जाए तो उसे खोलकर भी देख लूँगा,' मैंने जरा बौद्धिक होकर जवाब दिया।

जख्मी, बच्चा, कालू, मोहम्मद, जिलानी, राकेश, यज्ञेश, भोला, हरीया... सभी हमारी बातें कान लगाकर सुन रहे थे।

फिर हम इसके बारे में ताल में देर रात तक बातें करते रहे। कुछ तो वहीं सो गए। गर्मियों की रात की हवा में दुनिया से बिलकुल बिन्दास्त हम अपनी दुनिया को जी रहे थे। ऐसा था हमारा बचपन। निर्दोष, भूखा, गंदा, गालियों से भरा, बिना रोक-टोक का घुमन्तु बचपन।

अचानक फोन बजा। मैं तेजगढ़ लायब्रेरी में हूँ। घर से फोन है। धीरू घर पे गाली-गलौच कर रहा है। जवानी सारी कर्जा चुकाने के लिए पैसा जुटाने में बीत गयी। लेकिन अब तक चुका नहीं पाए।

कल रात सुहानी की तबियत काफी खराब हो गयी थी। उसे अस्पताल में दाखिल करना पड़ा था। माया सात महिने पेट से है। माँ को तेज बुखार है। अगले दिन के लेक्चर केन्सल हुए। सर बरोडा जा रहे थे, मैं उनके साथ हो लिया।

सर के साथ तेजगढ़ से बरोडा का ये सफर १९९८ से २००६ तक मेरी की सबसे यादगार सफर रही। इस दो घंटे की सफर में मैंने 'वानप्रस्थ' को समझा। ये किताब कुछ ही दिनों पहले प्रकाशित हुई थी। तथाकथित विकास ने मुख्यधारा के समाजों में जो दीवारें खड़ी की हैं वो टूटनी चाहिए। जंगल जब इस देश में दिन-ब-दिन नष्ट होते जा रहे हैं तब वानप्रस्थ की स्थिति अब मात्र कल्पना और इतिहास बनती जा रही है। जहाँ तक मैं उनकी बात समझा, ये किताब कहना चाह रही है कि जिस प्रकार से जंगल में सभी को सभी का अधिकार है, चाहें वो विषैली बेल हो या मीठे आम देने वाला आम का पेड़, उस तरह मुख्यधारा के समाज से जंगल की संस्कृति कई गुना अच्छी है और मुख्यधारा जो भटक गयी है उसे ये आदिवासी, जानवर, जंगल, भटकते लोग ही अच्छी संस्कृति दे सकते हैं। उन्होंने कहा की अंत में उन्होंने लिखा है कि हम कम से कम ऐसा वानप्रस्थ बनायें जिस में हम कम से कम इन्सान से जानवर बनने तक का सफर तय करें।

मैं सर के साथ बरोडा तक आया। रात को उत्तर के साथ हॉस्टेल में रहा। मैं उत्तर के रूम में हूँ। रात के सवा एक बज रहे हैं। मुझे बहोत नींद आ रही है। मुझे सोना चाहिए।

सुबह उठा और सीधे अहमदाबाद के लिये निकला। वहाँ पहोंचकर सीधा अस्पताल गया जहाँ सुहानी को दाखिल किया था। सुहानी को खून दिया जा रहा था। रात का डेढ़ बज रहा है। मेरी डेढ़ साल की बच्ची को निमोनिया हो गया है और उसके शरीर में हिमोग्लोबिन की मात्रा बहोत कम है। उसका शरीर इस रोग के सामने प्रतिकार नहीं कर पा रहा है। रह रहकर 'उंहुं... उंहुं...' कर रही है।

बच्चों को कभी खिलौने लाकर नहीं दे सका। शहर में काम की तलाश में जाता तो कभी याद नहीं रहता तो कभी पैसे नहीं रहते। लेकिन फिर भी बच्चे अपना खेल और खिलौने का खुद ही आविष्कार कर लेते हैं। अगर नाटक की भाषा में लिखूँ तो वो अपने आसपास की मौजूद चीजों के साथ बहोत ही अच्छा इम्प्रोवाईझेशन कर सकते हैं। जैसे एक ईंट का टुकड़ा हमारे

लिए फालतू है लेकिन बच्चों के लिए वो उनकी गाड़ी है, उनका भगवान है जिसकी वो अगरबत्ती जलाकर पूजा करते हैं और वही उनके लिए कोई दृश्यमान अदृश्य साथी भी है जिसके साथ वो बातें करते दिखाई देते हैं। बच्चों का इम्प्रोवाईझेशन सेन्स शायद दुनिया के किसी भी नाटककार से बेहतर ही होता है। और उन में भी खास वो बच्चे हैं जिन्हें खिलौनों से कभी खेलना नहीं मिलता। वो प्रकृति से ही अद्‌भुत इम्प्रोवाईझेशन सीख लेते हैं और अपने खेलों का भरपूर आनंद उठते हैं।

मैं कई बार आयुष, साक्षी और सोना को खेलते देखता। साक्षी डॉक्टर बनती, आयुष पेशन्ट बनता और सोना डॉक्टर की नर्स। जिस तरह निर्देशक अपने किरदारों को दृश्य समझाता है बिलकुल वैसे ही साक्षी अपनी कल्पनाओं और अनुभवों को जोड़कर दृश्य समझाती। आयुष दवाई लेने आता।

'डॉक्तल... मेले को दवाई दो।'

'हाँ देती हूँ... बैठो... मुँह खोलो ।'

साक्षी सोना से लकड़ी की नन्ही टोर्च लेती।

'ओ... तुम ये क्या खाते रहते हो...?'

'कुछ नहीं... मैंने तो छास काना खाया,' आयुष अपनी तोतली आवाज़ में कहता।

साक्षी उसकी छाती पे रस्सी या वायर रखकर धड़कन सुनती।

ओ... हाँ... काए... कुन...

'आयुष पहले खून लगाओ फिर डॉक्तल के पास आना।'

आयुष, साक्षी और सोना घर के पिछवाड़े जाते और ईंटें तोड़कर, उसकी भूकी कर के उस में पानी डालकर उसका खून बनाते। फिर वो खून आयुष के हाथ-पैर या सिर पर लगाकर डॉक्टर और पेशन्ट का खेल खेलते। कई बार वो मम्मी और पापा खेलते जिस में वो मेरे और माया के उनके अनुभवों के दृश्य बनाते। कभी माँ-बेटी तो कभी रीहर्सल में देखी हुई नाटक। नाटक... जिस में ज़्यादातर साक्षी निर्देशक बनती और मेरी तरह बार-बार एक्शन

बोलती। सब को डाँटती। वो मिलकर कुर्सी, दुपट्टा और टॉवेल के इम्प्रोवाईझेशन से बहोत ही अच्छा घर बनाते जिसमें वो कुछ देर के लिए सो जाते। घर की सारी कुर्सिओं को इकट्ठा कर उसे हर ऐंगल से एक दूसरे से जोड़कर देखते।

सोना कई छोटे-छोटे कागज़ लिए आयुष और साक्षी के पीछे घूमती रहती। कागज़ हो या किताब़, सोना उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर के एक थैली में लेकर घूम़ती रहती। तीनों बहोत ही मज़ाक, मस्ती, झगड़ा, मनमुटाव, जिद करते रहते। खैर ये तो बच्चों का प्रकृतिवश स्वभाव ही होता है। लेकिन इनके ये निर्दोष खिलौने बिना के खेल मुझे बहोत स्पर्श करते। मुझे इनका इम्प्रोवाईझेशन देखने और समझने में बहोत मज़ा आता। कई बार दिन के किसी कोने में शहरी प्रभाव के कारण सोचता की कैसा अभागा बाप हूँ ! अपने बच्चों को उनकी इस उम्र में एक खिलौना भी नहीं दे सकता।

समय अपनी रफ्तार से चला जा रहा था। 'बूधन थियेटर' नामक वृक्ष का भी विकास हो रहा था। आलोक के बाद 'बूधन थियेटर' के और एक कलाकार विवेक को 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' में दाखिला मिला। वो दिल्ली के लिए रवाना हो रहा था। सोनू के यहाँ क्राईम ब्रांच की रेड पड़ी हुई थी। बाज़ार में से पुलीस ने उनके पंद्रह-सत्रह आदमियों को पकड़ लिया और बहोत मारा। बुधवार को बाज़ार बंद होने की वज़ह से भीड़-भाड़ काफी कम थी। सिर्फ पुलीस और ग्राहक दिखाई दे रहे थे। हम लोगों के धंधे पर भी तबाही थी। पुलीस सभी सट्टे का धंधा खेलेनेवालों को ढूँढ़ रही थी। इतनी बड़ी रेड के चलते पी.आई. की नौकरी खतरे में थी। किसी भी तरह वो सटोरियों को पकड़कर केस करना चाहता था, ताकि उसका उसी दिन का जुगार-सट्टा पकड़ने का रीकार्ड बने। मैं नाई की दुकान में छुपकर बैठा था। विवेक के दिल्ली जाने का वक्त हो गया था और वो आलोक के साथ मुझे मिलने और माँ के पैर छूने आया। पैर छू रहा था कि गले लगाया और कहा, 'अपना विकास करो... सब का विकास हो जाएगा।'

उसी दिन गंगा बाज़ार में सब्ज़ी लेने गई थी। वो सवेरे अकेली ही

सब्ज़ियाँ लेने जाती। सब्ज़ी मंडी का घर से तकरीबन आधा किलोमीटर का रास्ता होगा। गंगा ने घर में पड़ा कुछ लोखंड भंगार बेचा था जिसके उसे डेढ़ सौ रुपये मिले थे। इन पैसों से उस दिन के खाने का जुगाड़ हो गया था क्युंकि उस दिन रविवार था और रविवार को धंधा बंद रहता था । उस दिन गंगा ने एक टाईम खाने का जुगाड़ कर दिया था। वो सब्ज़ी लेकर लौट रही थी की पता नहीं पास खड़ी गाय को क्या हुआ, उस गाय ने गंगा को अपने सिंगों से धक्का मारकर नीचे गिरा दिया। गंगा अचानक हुए इस हमले से हतप्रत रह गई। ये देख बाज़ार में कुछ लोगों ने गाय को भगाया। ट्राफिक जाम हो गया था। सभी लोग नीचे गिरी हुई गंगा को देख रहे थे। सब्ज़ी की प्लास्टीक की थैलीयाँ फट गयीं और सब्ज़ियाँ कीचड़ में फैल गयीं । गंगा को काफी अंदरूनी चोटें आईं। वो धीरे-धीरे उठी। पास वाले दुकानदार से दूसरी प्लास्टिक की थैलीयाँ लेकर उस में बिखरी पड़ी सब्ज़ी भरकर जैसे-तैसे, लंगड़ाते हुए घर पहोंची।

मेरे लिए नाटक सीखने के लिए मेरी पारीवारिक और सामाजिक जीवन से दूसरी अच्छी और कोई 'स्कूल' नहीं थी। एक दिन हम 'राष्ट्रीय डिज़ाइन संस्थान', अहमदाबाद में नाटक करने गए थे। नाटक का नाम था 'दीपक तनुजा पवार'। यहाँ श्रीमती महाश्वेता देवी ने ये नाटक देखा। नाटक के पश्चात् हम सब अम्मा से मिलने महमान गृह गए। मैं अम्मा के रूम में गया। अम्मा ने मुझे अपनी गोद में बैठने के लिए कहा। मैं कुछ समझा नहीं, फिर सर ने मुझे थोड़ी देर के लिए अम्मा की गोद में बिठाया।

फिर सर ने मुझसे कहा, 'दक्षिण, तुम 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' में पढ़ने के लिए क्युं नहीं जाते? अगर आप तैयार हैं तो मैं सारी व्यवस्था कर दूँगा।'

मैंने बहोत सोचा। सामने कर्ज में डूबे परिवार की जिम्मेवारियाँ थी। मैंने सर को खत लिखा। 'मैं नहीं जा सकता।'

अभी रात के बारह बज चुके हैं । विवेक का दिल्ली से मिस्ड कॉल आया था । सौभाग्य से मेरे फोन में बैलेन्स था। मैंने फोन मिलाया।

'हाँ बोल,' मैंने कहा ।

'कविता लिखने बैठा हूँ। कोई ऐसा विषय बता की मैं रीचार्ज हो जाऊँ। एक झुनून आ जाए।' विवेक बोला।

'मुंबई में गरीबों की बस्ती को तोड़ते वक्त बुल्डोज़र एक नन्ही सी बच्ची पर चढ़ गया। इस बच्ची को उसकी नन्ही बहन मलबे में ढूँढ़ रही थी। सुप्रिम कोर्ट ने अतिक्रमण का जजमेन्ट देते हुए ये नहीं सोचा कि रास्ते पे रहनेवाले इस देश में करोड़ो की तादात में हैं।'

विवेक बोल उठा, 'बस, रीचार्ज हो गया। अब मैं लिखने बैठ रहा हूँ।'

विवेक बहोत ही सामान्य परिवार से है। बचपन में ही शराब ने उससे उसके बाप का साया छीन लिया था। माँ पर घर की जिम्मेवारियाँ आ पड़ी थीं। बेटीयों की शादी करनी थी, विवेक को पढ़ाना था और अपने एक बेटे जिसकी दिमागी हालत ठीक नहीं थी, दवाई भी करनी थी।

विवेक कई सारी परिस्थितियों में नाटक के द्वारा सामाजिक बदलाव की बात करता। वो ये क्युं कर रहा था उसे खुद को पता नहीं था, बस पता था तो सिर्फ इतना की जब भी उसे कोई चिंता होती, उसे गुस्सा आता या वो कभी ज़िंदगी से हताश हो जाता तब वो नाटक की राह पकड़ता। लिखने का उसे काफी शौक रहा है। उसकी कविताओं में सौम्य और पाश की सुगंध महसूस होती है। वो एक अच्छा लेखक है। चाय की कीटली पर बैठे-बैठे उसका लिखना होता है। उसके घर की आर्थिक स्थितियाँ बहोत खराब होती जा रही थीं।

एक दिन वो कह रहा था, 'समझ में नहीं आ रहा क्या करूँ ? घर के हालात देखते हुए जी करता है कि किसी टुकड़ी में जुड़ जाऊँ। कम से कम रोज़ का खर्चा तो मिलेगा। घर तो चलेगा।'

मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं था। उन्हीं दिनों उसे भारत सरकार के 'सांस्कृतिक मंत्रालय' से खत आया जिस में लिखा था कि वर्ष २००४-२००५ के लिए नाटक के क्षेत्र में युवा कलाकारों की स्कॉलरशिप के लिए उसका चयन हुआ है। उसे महिने रुपये दो हज़ार मिलेंगे। इस स्कॉलरशिप ने विवेक का रास्ता बदल दिया और उसे थियेटर में अपना भविष्य बनते नज़र

आया। वो दिन में सौम्य के साथ नाटक करता तो शाम को 'बूधन थियेटर' में। अब उसने थियेटर में अपना करियर बनाने की ठान ली थी। इसी स्कॉलरशिप ने आलोक का भी रास्ता बदला था और उसे उस दिशा में दौड़ने के लिए बल मिला था जिस राह वो जाना चाहता था।

विवेक के बारे में याद आ रहा है। कई पारीवारिक समस्याओं की वज़ह से उसकी बहन सपना ने अपने आप पर मिट्टी का तेल डालकर खुद को आग लगा ली थी। वो बुरी तरह झुलस गयी थी। विवेक बरोडा में सौम्य के साथ नाटक करने गया हुआ था। अपनी एेन्ट्री के लिए वो विंग में खड़ा था कि उसे ये समाचार मिला।

वो अस्वस्थ नहीं हुआ। दौड़ चला मंच की ओर। किरदार निभाया। नाटक खत्म हुआ। बहोत रोया। आग में बुरी तरह से झुलसी अपनी बहन से मिला। भाई और बहन दोनों खूब रोए। सपना विवेक को बहोत प्यार करती है। विवेक अपनी बहन को बचाने और उसे जल्द से जल्द अच्छा करने के लिए जुट गया। अधमरा-अर्धपागल भाई, आग में झुलसी बहन, माँ जो कभी साड़ी तो कभी कपड़ों की चोरी करके पेट भरे और साथ-साथ पढ़ाई... इन सभी के अलावा एकात्मयता से नाटक करना... ये किसी असमान्य कलाकार के लिए ही संभव है।

विवेक और कल्पना के बीच काफी अनबन रहती। हम लोग 'भोमा' की रिहर्सल कर रहे थे। रात के बारह बज चुके थे। मुझे ख्याल नहीं है किस बात पर लेकिन इतना ज़रूर याद है कि विवेक गुस्से में रिहर्सल छोड़कर घर चला गया था। अगले दिन शाम को गांधीनगर जिल्ले में शो था। विवेक मुख्य किरदार कर रहा था। हम सब चर्चा कर रहे थे कि क्या किया जाए? किसी ने कहा शॉ के लिए मना कर दो। मैंने कहा ये तो नहीं हो सकता। सभी को चिंता हो रही थी की क्या किया जाए। मैं विवेक की प्रकृति से परिचित था। वैसे भी दिग्दर्शक के तौर पर मुझे शांत होना भी चाहिए। कोई आधा घंटा बीता होगा कि विवेक वापस आया। वो शांत लग रहा था। हमने सारी रात रीहर्सल की और दूसरे दिन नाटक का मंचन किया। इस नाटक के मंचन

के बाद हमारी नाटक मंडली का नामकरण हुआ। इसका नाम रखा गया 'बूधन थियेटर'।

बूधन सबर । पश्चिम बंगाल के पुरुलिया जेल में पुलीस द्वारा मारा गया ये भोला आदिवासी युवक अब हमारी ज़िंदगी का अभिन्न अंग बन गया था। हमारी पहचान 'बूधन' नाटक से हो रही थी। लोग हमें इज्ज़त की नज़र से देख रहे थे। बूधन की हत्या से भारत की विमुक्त जनजातियों के हालात के बारे में देश और दुनिया को पता चला। मुंबई की 'सेन्ट ज़ेवियर्स कॉलेज' के विद्यार्थिओं ने इस नुक्कड़ नाटक का मंचन किया। मैं हैरान रह गया जब देखा कि अशोक रॉय का किरदार कर रहा युवक, बूधन का किरदार करनेवाले युवक को नाटक की सीमाओ से परे, उसे सच में मार रहा था। बूधन का किरदार करनेवाला वो लड़का नाटक खत्म होने के पश्चात तकरीबन-तकरीबन बेहोश हो गया था। मैंने उसे पूछा की नाटक में उसने ऐसा क्युं किया ?

जवाब था, 'हम बूधन की तकलीफ को सही मायने में महसूस करना चाहते हैं।'

मेरी आँखें फैली हुई थीं और आँखों के कोने में आँसू उभर आए थे। मेरे साथ नाट्‌य समीक्षक तथा भूतपूर्व 'राष्ट्रीय नाट्‌य विद्यालय' स्नातक ज्योतीबहन व्यास भी थीं। फिर 'बूधन' नाटक 'ज्योर्जटाउन युनिवर्सिटी' में पढ़ाया जाने लगा।

मैं भूत-प्रेत में तो नहीं लेकिन आत्मा में विश्वास रखता हूँ। मुझे हमेशा महसूस होता है कि उस भोले-भाले आदिवासी युवक की आत्मा मेरे साथ है और आगे लड़ने के लिए हमें मदद कर रही है।

'बूधन थियेटर' की बच्चों की नाटक मंडली ने एक नया नाटक बनाया। नाम रखा गया 'गोलमाल'। विषय था, किस तरह पुलीस झूठे केस में छारा लोगों को फँसाकर उनकी ज़िंदगी दोजख बना देती है। मुझे अंतिम चरण के रीहर्सल देखने के लिए बुलाया गया। मैं भौंचक्का रह गया जब उन बच्चों ने उनके माँ-बाप के साथ हुए अत्याचारों को वास्तविक नाट्‌य रूप दिया। इस नाटक का मंचन ५ जुलाई २००७ के दिन तेजगढ़ में किया गया। इस मंचन

के प्रसंग पर डॉ. देवी, डॉ. भगवानदास पटेल, फोर्ड फाउन्डेशन की डॉ. रवीना अगरवाल तथा अन्य बहोत सारे आदिवासी बच्चे और मित्र उपस्थित रहे।

मंचन के एक दिन पहले मैं तेज़गढ़ पहोंच गया था। तकरीबन चार महिनों की अवधि के बाद एकेडेमी जा पाया। यहाँ तकरीबन पचास बच्चे रहते हैं जो पढ़ाई में तो होनहार हैं ही, साथ ही परंपरागत संगीत वाद्य बजाने में भी काफी माहिर हैं। मैं जैसे ही एकेडेमी पहोंचा, मेरी चारों ओर से गुसपुस सुनाई दी।

'ए... देखा... नाटकवाला आया।'

'नाटकवाला भाई।'

एक लड़के ने गुसपुस में गीत गाना शुरू किया,

'नाटक नाटक,

खेलता नाटक,

उड़ता नाटक

बोलता नाटक

'नाटक नाटक ।'

रात को तकरीबन पंद्रह से बीस मिनट की अवधि में बातों ही बातों में उन कलाकार बच्चों के साथ एक पाँच मिनट की नाटिका का निर्माण हुआ। 'हमारे सपने'। ये नाटक उन बच्चों को पिछली रात आए हुए सपनों पर आधारित था।

शाम को डॉ. रवीना अगरवाल के साथ महुआ के पेड़ के नीचे 'बूधन थियेटर' के बारे में काफी विस्तृत चर्चा हुई। हम 'बूधन थियेटर' के विकास की प्रक्रिया के बारे में चर्चा कर रहे थे। हम एक सपना देख रहे थे कि 'बूधन थियेटर' के कर्मशील एक दिन इस देश के मनोरंजन क्षेत्र में अपनी जगह बनाएँगे और घुमन्तु समाज के माथे पर लगा 'जन्मजात गुनहगार' के कलंक को मिटाएँगे।

इसके कुछ ही दिनों बाद भारत के जाने-माने डॉक्यूमेन्टरी फिल्म मेकर, राकेश शर्मा से मुझे मिलने का मौका मिला। मैंने उनके साथ काम करने की

अपनी इच्छा व्यक्त की।

उन्होंने कहा, 'फँस गया तू। बोलकर फँस गया तू।'

मैंने कहा, 'मुझे आप के साथ काम करना अच्छा लगेगा।'

वो हँस दिए। कुछ दिनों बाद उनका फोन आया।

कहा, 'साथ में काम करते हैं।'

मैंने कहा, 'ठीक है।'

राकेश गुजरात के तीन-चार अलग-अलग मुद्दों पर फिल्में बनाना चाहते थे। जैसे गुजरात में हुए खेतिहर लोगों की आत्महत्या, कौमी दंगो में आदिवासी और दलित समाजों को घसीटना तथा उनकी आज की स्थिति और गुजरात सरकार का भगवा राजकारण।

हम शूटींग के लिए निकल पड़े। पहले पंचमहाल गए जहाँ नरोडा, रतनपुर, ओजनवा क्षेत्रों में दंगो में जो जेल जा चुके हैं या जो जेल में हैं उनके परिवारों से बात की। महसूस हुआ की भगवे राजकारण ने यहाँ के लोगों को बड़ा कसकर जकड़ा हुआ है। जंगल और पहाड़ों में रहनेवाले आदिवासियों के बीच देश का राजकारण अपनी जड़ें फैलाता हुआ महसूस हो रहा था। लोगों की स्थिति काफी दयनीय थी। आदिवासी गाँवों में राजकारण की लकीरें खिचीं हुई थीं। आदिवासी और मुस्लिम जो कभी भाई-चारे से रहा करते थे, आज एक ही गाँव में बँटे हुए थे। यहाँ से हम भावनगर जिले के जसपरा गाँव में गए। यहाँ हमारे साथ रोहित प्रजापति नामक एक कर्मशील व्यक्ति जुड़ा। वो शारीरिक तौर पर पोलियो ग्रस्त था लेकिन मानसिक तौर पर पोलाद था।

गाँव में जाकर पता चला की समंदर के किनारे बसे जसपरा और अन्य चार गाँवों की ज़मीनें सरकार जबरन लेना चाहती हैं क्युंकि केन्द्र सरकार यहाँ पर अणु वीज मथक बनाना चाहती है। यहाँ के लोग इसका विरोध कर रहे थे। इसकी खास वज़ह ये है कि समंदर के किनारे बसे इन गाँवों में समंदर से सिर्फ दस से बीस फीट दूरी पर मीठा पानी पाया जाता है जो यहाँ की खेती के लिए उपयुक्त है। सरकारी कागज़ो में बंजर बताई गयी इस जमीन को लोगों ने पिछले चालीस सालों में दिन-रात काम कर के खेती लायक बनाया है।

यहाँ लोग साल में तीन से चार फसलें लेते हैं। खून-पसीना बहाकर खेती के लायक बनाई गयी इतनी अच्छी ज़मीन शायद ही सौराष्ट्र के किसी क्षेत्र में दिखाई दे। सरकार अपनी मनमानी कर रही थी और लोगों ने अपनी बाँहें चढ़ा ली थीं। नंदीग्राम जैसे संघर्ष की तैयारियाँ शुरू हो चुकी थीं।

यहाँ से हम राजुला, पाणीया देव और वडली गए। इन गाँवों और क्षेत्रों में पिछले कुछ महिनों में कई खेतीहरों ने आत्महत्या की थी। सरकार की तरह मीडीया ने भी इसमें दिलचस्पी नहीं ली थी। गुजरात के खेतीहर महाराष्ट्र के खेतीहरों के रास्ते पर थे। ये सारे गाँव काफी पिछड़े हुए और अन्दरूनी क्षेत्रों में हैं। ये खेतीहर सिर्फ मौसमी बारीश पर ही निर्भर थे। नदियों की रेती धूप में चमक रही थी, पानी की एक बूंद नहीं थी। लोगों को पीने के पानी की समस्या रहती। जिन गाँवों और घरों में गया वहाँ घर और गाँव के हर कोने में भूख ने अपना साम्राज्य फैला रखा था। राजनीति के रंग यहाँ भी दिखाई दे रहे थे। जिन खेतीहरों ने आत्महत्या की थी उनकी विधवाएँ और भूखे-नंगे बच्चों की आँखों में भविष्य की चिंता साफ दिखाई दे रही थी। गाँव के सरपंच सुखी और समृध्ध थे। सौराष्ट्र का १९५६ का अकाल और लोगों की दुर्दशा के बारे में काफी लिखा गया है। वही अकाल की स्थिति आज भी बरकरार है। गुजरात के जिस क्षेत्र को पानी की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है उस क्षेत्र को नर्मदा के पानी से क्युं अछूत रखा गया है? क्या नर्मदा के पानी पर सिर्फ उच्च जातियों का ही अधिकार है? लाखों आदिवासियों के गाँव उजाड़ने और मनमानी कर 'सरदार सरोवर डेम' की ऊँचाई बढ़ाने के बाद भी ज़रूरतमंद लोगों तक पानी तो नहीं पहोंच पाया। अमरेली जिले के जुना मलेकनेस गाँव में एक किसान ने कुछ दिनों पहले आत्महत्या कर ली थी। इससे पहले इसी गाँव में छः लोगों ने आत्महत्या की थी लेकिन उन्होंने पुलीस रपट नहीं लिखाई जिससे इन 'सात मुर्दों' की बात दुनिया तक नहीं पहोंच पाई थी।

इसकी वज़ह है सामाजिक जड़ता। सौराष्ट्र के लोग काफी खमीरवंत होते हैं। अपनी इज्जत के लिए वो अपनी जान भी दे सकते हैं। जो इन्सान आत्महत्या करते हैं, उनके परिवार पुलीस में रपट नहीं लिखाते और इसे

'कुदरती मौत' कहकर पुलीस थाने जाने से अपने आप को बचा लेते हैं। अगर पुलीस थाने में इसकी रपट हो जाए तो बाकी लोगों को पता चल जाएगा की पीड़ित किसान के परिवार पर कर्ज है जिससे उस परिवार की लड़की से कोई शादी करने के लिए तैयार नहीं होगा। सामाजिक जड़ता की वज़ह से सच को कफन उढ़ा दिया जाता है।

दलित, आदीवासी और मुस्लिम समुदायों के बीच २००२ में जो दंगे हुए थे उस पर फिल्म बनाने के लिए हम पंचमहाल जिल्ले के लुणावाड़ा गाँव में गए । तेरह लोगों को आजीवन कैद की सज़ा हुई थी। वो तेरह लोगों के परिवारवालों से हम बात कर रहे थे कि अचानक एक बच्चे के रोने की आवाज़ आई। कैमरे के सामने उसकी माँ बोल रही थी। उसकी आँखों में आँसू आ गए।

मैं कुतूहलवश उसे रोते हुए बच्चे के पास गया। उसे शांत करने की कोशिश की। पूछा, 'क्युं रो रहा है ? चुप हो जा, कुछ तकलीफ है ?'

'भूख लग रही है।'

उस में रोने की भी ताकत नहीं थी। उसका पेट अंदर की तरफ ढुँसा हुआ था। मेरा दिल और कलेजा काँप उठा। आँखों में आँसू उभरने लगे। कुछ बिस्कीट पड़े थे । वो उसे दिए। किसी अकाल पीड़ित भूखे की तरह वो एक साथ चार-पाँच बिस्कीट खाने लगा। दो मिनीट के समय में वो पाँच बिस्कीट के पैकेट खाली कर चुका था। इससे उसकी भूख का अंदाजा आ सकता था।

उसकी भूख के सामने मैं विवश था, निर्बल था। लेकिन उसकी भूख की दुनिया तक पहोंचने के लिए मेरे पास फिल्म का माध्यम था ।

एक दिन सर ने गांधी के जन्म जयंती पर दांडी में एक मीटिंग बुलाई थी और एक नया सूत्र दिया था।

'हमें लड़नी है एक और लड़ाई। दूसरी आज़ादी की लड़ाई ।'

उस बच्चे की भूख दूसरी आज़ादी माँग रही थी।

राकेश के साथ शूटींग कर के काफी सीखने को मिला। एक बार डाँट भी पड़ी। उन्होंने लोगों के साथ वार्तालाप करने के बारे में समझाया। पंचमहाल, छोटाउदेपुर, अमरेली, सुरेन्द्रनगर, अहमदाबाद जिले में किसानों की आत्महत्या तथा हिन्दू-मुसलमान में बढ़ती दरारों को देखते हुए महसूस हो रहा था कि हम गुजरात को कई भागों में बाँट चुके हैं। भारत का ये राज्य अखंडित नहीं, खंडित है।

गुजरात के किसान बड़े पैमाने पर आत्महत्या कर रहे हैं लेकिन ये हकीकत आर्थिक, सामाजिक तथा राजकीय दबाव की वज़ह से दिखाई और सुनाई नहीं दे रहा।

गुजरात में हजारों सालों से मुसलमान-दलितों की एक साथ रहने की संस्कृति पिछले सात-आठ सालों से खत्म हो रही है।

कड़ी मेहनत से जिन ज़मीनों को किसानों ने उपजाऊ बनाया है, आज सरकारी कागज़ों में ये जमीनें बंजर हैं और वहाँ के किसानों को सरकार उखाड़कर फेंक रही है।

जहाँ कभी कोई राम को नहीं जानता था, आज उन आदिवासी विस्तारों में धर्म का राजकारण घर कर गया है।

शूटींग करके घर पहोंचा। बीवी बच्चे सो रहे थे। माँ बाप के लिए खाना बना रही थी। मैं कुछ लिखने के लिए बैठा ही था कि 'धक्क' सी कुछ आवाज़ आई। जाकर देखा तो बाप ने माँ का पिरसा हुआ खाना फेंक दिया था। दारू का नशा उस पर हावी हो रहा था। ठीक है। मुझे अपने जीवन से बाप की ज़िंदगी ज़्यादा रोमांचक और प्रेरणादायी लगती है। वो हमेशा मुझे कहता है, 'बेटे, तेरे बाप ने घाट-घाट का पानी पीया है और हिन्दुस्तान की सभी जेलें देखी है... तू क्या मुझे समझाएगा ?'

मैंने उसके जीवन में झाँकने की बहोत कोशिश की लेकिन उसने कभी खुलकर बात नहीं की। वो अपने जीवन के उस भयानक समय को अपने आप में छुपाकर रखना चाहता है।

राकेश की फिल्म के लिए जब मैं हिन्दू-मुसलमान के अनुभव और हादसों

के बारे में लोगों से बात करता तो मुझे वो मंझर याद आ जाता।

२८ फरवरी २००२। सुबह काफी देर से उठा। तकरीबन नौ बज रहे होंगे। में स्नान कर रहा था कि बाहर से हो-हल्ला शुरू हो गया। ये रोज़ की बात थी इसलिए मैंने उस पर ध्यान नहीं दिया। मेरा घर सड़क के किनारे ही है, पता चला लोग काफी बड़ी तादाद में इकट्ठा हो रहे हैं। बाहर आकर देखा तो सामने पाटीया की ओर से उठे काले धुएँ ने सूरज को मानो ढँक दिया था। सुबह का वो समय मानो शाम हो गयी हो ऐसा मालूम होता था।

बीरजु दौड़ता हुआ आया... 'दक्षिण... दक्षिण... हिन्दू-मुसलमान के झगड़े शुरू हो गए हैं, पाटीया पे मार-काट शुरू हो गयी है। पब्लिक जैसे पागल सी हो गयी है। लगता है सभी मुसलमानों को मार डालेंगे।'

रोड पर अफरा-तफरी मची हुई थी। लोग पाटीया की ओर दौड़े जा रहे थे। कुतूहलवश मैं भी उस ओर भागा । मेरे घर से पाटीया आधे किलोमीटर की दूरी पर है। पाटीया की ओर जाने का रास्ता बंद हो चुका था। मैंने बाईक वहीं छोड़ी और चलते हुए ही वहाँ तक पहोंचने की कोशिश की। मैं देख रहा था, हर तरफ हिन्दुत्व के नारे और डर फैला हुआ था। पुलीस छुट-पुट ही दिखाई दे रही थी। जैसे-तैसे हम नटराज रेस्तरां तक पहोंचे। चारों ओर आगजनी, हिन्दुत्व के नारे, लोगों की भगदड़, बच्चों और औरतों की चीखने की आवाज़ें, मस्जिद को तोड़ने की कोशिश दिखाई पड़ रही थी। सामने बापुनगर की तरफ से 'बीपिन ओटो' की ओर खड़े लाखों लोग दिखे, सैज़पुर की तरफ देखा तो सुधीर के ससुरालवालों की छत पे आग लगी हुई थी। ये सब इतना भयानक और तंग था की समझ से परे था। सड़क पर मौत का नंगा नाच हो रहा था। कहीं-कहीं से गोली की आवाज़ें कानों तक आ रही थीं। कुछ 'धमाके' की आवाज़ें भी आ रही थीं लेकिन समझ में नहीं आ रहा था कि ये आवाज़ें कहाँ से आ रही थीं।

अचानक जानवर रूपी मानव झुंड ने एक वयोवृद्ध व्यक्ति को पकड़ा। वो मदद की गुहार लगा रहा था... झुंड में से किसी ने उसकी मदद नहीं की।

'पेट्रोल लाओ... और जला दो साले को...'

उस वृद्ध की आत्मा जैसे काँप उठी। वो बोला... 'मुझे मत मारो... मैं... मैं... हिन्दू हूँ...'

एक आवाज़ आयी। 'नंगा करो साले को... देखो हिन्दू है के मुसलमान...'

वृद्ध ने अपने सारे कपड़े निकाल दिए। किसी ताज़ा जन्मे बच्चे की तरह वो रो रहा था। लोगों ने उसके लिंग को बारीकी से देखा... वो नंगा वृद्ध सूखे पत्ते की तरह काँप उठा था... शायद उसने पेशाब भी कर दिया था...

वो हिन्दु था। बच गया। पेट्रोल का उपयोग कहीं और हुआ होगा। किसी का घर जलाया गया होगा या तो किसी की कोमल चमड़ी और मांस को भूना गया होगा। अचानक मोबाईल की रींग बजी। बाप का फोन था।

'दक्षिण, घर आई जा।' (दक्षिण, घर आ जाओ ।)

'आई रहा... जरा थोड़ी वार...' (आ रहा हूँ... थोड़ी देर ...)

'आई जा दक्षिण... मे जीवना मं घणे एसे दंगे देख ह... तो खाली देखी भी रहा होगडा तो भी सपाई तेरा नाम लीखी देंगेडे ।' (आ... जाओ, दक्षिण। मैंने अपने जीवन में ऐसे बहोत सारे दंगे देखे है... तुम सिर्फ देख भी रहे होंगे तो भी पुलीस तुम्हारा नाम लिख देंगे।)

बाप के शब्दों में अनुभव था। मैं घर की ओर मुड़ा। मैं वहाँ रहकर भी क्या करता। बुत बनकर वो मंज़र ही तो देखना था। लाखों लोगों का राक्षस रूपी मानव समूह, कुछ गिने चुने मुसलमान, चारों तरफ से घेराव। सरकार की तमाम मशीनरी गांधी के तीन बंदरों की तरह बन गयी थी। गिद्ध ऊपर मंडराने लगे थे। भूखे गिद्ध हवा में तैर रहे थे, तो कुछ मानवभक्षी गिद्ध जमीन पर मांस नोचने में लगे हुए थे। मैं विवश, घर की ओर लौट चला।

रास्ते में देखा, कुछ गरीब लोग जला, टूटा-फूटा सामान लेकर जा रहे थे।इन में हमारे कुछ छारा लोग भी थे। पुलीस की आँखें ये सब देख रही थीं।

घर आया तो यहाँ कुछ और ही माहौल था। बस्ती के सभी लोग लकड़ी, तलवार और पाईप लेकर सड़क पर उतर आए थे। कुछ लोगों ने ये

अफ़वाह फैलाकर माहौल तंग बना दिया था कि शहर के मुसलमान यहाँ हमला करने आ रहे हैं, इसलिए सभी अपनी और अपने परिवार की सुरक्षा के लिए बाहर सड़क पर आ जाएँ।

जैसे ही घर पहोंचा बाप ने झाड़ दिया। मैंने आइने में अपने आप को देखा। चहेरा सूझा हुआ था। आँखें जैसे बाहर आ गयी थीं। शायद ब्लडप्रेशर बहोत बढ़ गया था।

माँ को सिवील अस्पताल के किडनी विभाग में दाखिल किया हुआ था। उसकी किडनी में पथरी हो गई थी, उसका ऑपरेशन हुआ था। अस्पताल में उसके साथ मेरी काकी थी और उन्हें खाना देने जाना था। मैं अपनी मोटरबाईक पर निकला। रास्ते पर अफरा-तफरी मची हुई थी। मैं मेघाणीनगर होकर जब सिवील की ओर जा रहा था, तब शायद राष्ट्र विरोधी दलों ने अहसान झाफरी और उनके परिवार को घेर रखा होगा। सिवील अस्पताल खचा-खच भरी हुई थी। अस्पताल के इमरज़ेन्सी वोर्ड में चिल्लम-चिल्ली हो रही थी। मैंने उस ओर ध्यान नहीं दिया और सीधा माँ के पास पहोंचा। माँ की तबीयत अच्छी थी। मैंने उसे शहर के तंग माहौल के बारे में अवगत कराया। मैं सोच रहा था, 'ऐसी स्थिति में सिवील अस्पताल से ज़्यादा सुरक्षित और कोई जगह नहीं हो सकती।'

टीफीन देकर मैं घर आया। धुएँ से सूरज ढँक चुका था। हर तरफ से जलने की बू आ रही थी। घर के बाहर सड़क पर हमारे छारा लोग लकड़ी और पाईप लेकर अपने गाँव और घर की सुरक्षा के लिए निकल पड़े थे। मेरे घर के सामने मुसलमान की दुकान को लोग जलाने आए। हमने उन्हें उल्टे पैर भगा दिया और उस मुस्लिम परिवार को सुरक्षित जगह पहोंचाया। इसी बीच एक सिंधी विडीयोग्राफर ने सड़क पर खड़े हमारे लोगों का विडीयो डॉक्युमेन्टेशन किया। इस राजकीय चाल से अनजान अबूध लोग जैसे अपना-अपना फ़ोटो निकलवा रहे थे। दंगों के बाद पुलीस ने उन सभी पर दंगों का आरोप लगाकर जेल की हवा खाने भेज दिया।

कोई एक लड़का पाटीया से टूटा-फूटा घड़ा उठाकर लाया। इस घड़े में

एक खत था। खत का कुछ भाग जल चुका था। वो खत हम सभी 'बूधन थियेटर'वालों ने पढ़ा। उस में लिखा था, 'शबाना। तुम लोगों की बहोत याद आती है। मजदूरी के पैसे जैसे ही मिल जायेंगे वापस आऊँगा। झरीना का निकाह करना है। झरीना का ख्याल रखना। हमें लोगों का कर्जा भी चुका देना है । मैं साथ में अनाज भी भरकर आऊँगा। झरीना का ख्याल रखना। उसे मेरा प्यार देना। झरीना के ब्याह की...'

आगे खत जला हुआ था। इस खत की हम लोगों पे काफी असर हुई और इस जले-कटे सपने भरे खत में से एक नाटक ने जन्म लिया। 'मज़हब हमें सिखाता आपस में बैर रखना।' कुछ ही दिनों में नाटक तैयार हो गया और उसी तनाव के माहौल में उसके दस-बारह मंचन किए गए। थोड़ा विरोध हुआ लेकिन मंचन चालू रहे।

अभी तक पुलीस कई छारा लोगों को नरोडा-पाटीया केस में ले गयी थी। जेलें भर चुकी थीं। लोग एक-दूसरे के ऊपर सोते थे। कीड़े-मकौड़ों की तरह जेलें इन्सानों से खदबदा रही थीं। इन्हीं दिनों एक कविता लिख डाली।

सब
जलकर खाख हो गया।
न जाने
कहाँ इंसा खो गया।
अब,
कभी वो दिन वापस न आएँगे
इंसा
इंसा ही नहीं रहे
धर्म क्या खाक पाएँगे।
कोशिशें तो बहोत हैं
जीने का कोई रास्ता नहीं
कहने को तो बहोत कुछ है पर

सुनने और सुनाने को इंसा ही नहीं।

अपनी पुरानी डायरी को ढूँढ़ा तो मेरे टूटे-फूटे कबाट में से कुछ मिला। मैंने आपसे ज़िक्र किया था कि मैं अमरिका जाने वाला था, उसकी कुछ प्रति मिली जिसमें लिखा था-

मैं उड़नेवाला हूँ। इंडियन एयरलाइन्स के दिल्ही जाने वाली फ्लाइट देरी से डेढ़ बजे चल रही है। मुझे दिल्ही में अमरिका जाने के लिए होनेवाले इमिग्रेशन की चिंता हो रही है। सुना है उसमें काफी समय लगता है। आयुष, साक्षी, सोना, सुहानी, गनीभाई, पश्चिम, निखिल, सुशील, राकेश, जीतू, प्रशांत, जीजू मुझे एरपोर्ट पे छोड़ने आए हैं। घर में सारा दिन 'अमरिका...अमरिका' का हो-हल्ला होता रहा। बच्चों ने कुछ न कुछ तैयारियाँ कीं। बाप ने मंदिर जाकर माता रानी की चुंदड़ी लाई जो मेरी रक्षा करेगी। बाप की आँखों में एक अजीब सी अनकही खुशी महसूस कर रहा हूँ।

आज मैं उड़ रहा हूँ।

मैंने अपनी खिड़की से बाहर झाँककर देखा तो अपने आप को चाँद के समकक्ष पाया। गहन अंधेरे में वो जलता हुआ शीतल दीपक सा महसूस हो रहा है।

एरपोर्ट के अंदर प्रवेश करते हुए बाप ने मुझे पहले दस हज़ार रुपये दिए, फिर मेरे मना करने पर भी और पाँच हज़ार रुपये दिए... वो अनसुनी, अनकही खुशी मैं उन पैसों में देख रहा था।

हमें अभी उसके बहोत सारे सपने सच करने हैं।

इन्दीरा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा।

दिल्ही की थकानेवाली इमिग्रेशन प्रोसेस को खत्म कर ब्रिटीश एरवेयज से तकरीबन नौ घंटे की उड़ान की सफर शुरू हुई।

लंडन के समयानुसार सुबह सात पच्चीस को मैं लंडन एरपोर्ट पर पहोंच गया। आगे की सफर की जानकारियाँ लीं। तकरीबन डेढ़ सौ रुपये की कॉफी पी, उससे अच्छी कॉफी तो हमारी चाय की कीटलीवाले बनाते हैं। खैर,

अब मैं लंडन से वॉशिंग्टन डी.सी. जा रहा था। लंडन से तकरीबन आठ घंटे का रास्ता था।

घर पे मेरी माँ और घरवाले रात को सोते हुए मातारानी से मेरी सुरक्षा की प्रार्थना कर रहे होंगे। बाप और पूरब धंधे में लगे होंगे । आज बच्चों को बाप के हाथों के सिरहाने के बिना ही सोना हुआ होगा। सोते वक्त 'बाप उनके लिए क्या लाएगा ?' जैसी बातें कर रहे होंगे ।

मैं वॉशिंग्टन डी.सी. पहोंचा। दोपहर के ढाई बजे थे। आखिर ज़मीन पर उतरा।

प्रो. हैनरी श्वार्ज ने मुझे गरम कपड़े पहनाकर मेरा स्वागत किया। मैं और प्रो. स्वार्ज़ 'ज्योर्जटाउन युनिवर्सिटी' के लिए निकले जहाँ उनकी ऑफिस थी। अमरिका के रास्ते पर पैर रखा। लोगों का रंग और ठंड सब कुछ देखा हुआ सा प्रतीत हो रहा था। 'ज्योर्जटाउन युनिवर्सिटी' और वहाँ का माहौल किसी ब्लैक एन्ड व्हाइट फिल्म की तरह दिखाई दे रहा था। ऑफिस का जैसे ही दरवाजा खुला अंदर सर को पाया जो किताब पढ़ रहे थे और हमारा इन्तज़ार कर रहे थे।

मैं और सर होटल 'मैरिऑट कॉन्फरेंस्स सेन्टर' में एक साथ रह रहे थे। सर ने मुझे कहा की 'बूधन थियेटर' का दूसरा प्रोडक्शन 'मृच्छकटिकम्' हो तो हम चोर की नज़र से दुनिया देख सकेंगे और फिर संस्कृत में लिखे गए सभी नाटकों में 'मृच्छकटिकम्' से अधिक वास्तविक कोई नाटक नहीं लिखा गया है । उन्होंने ये भी कहा के ये नाटक पिछले दो हज़ार सालों से मंचीत होता आया है।

दूसरे दिन सुबह सात बजे हमें तरुण लेने आया और हम युनिवर्सिटी ऑफ वर्जिनिया की ओर चल पड़े। रोटंडा की मुलाकात ली। यहाँ हमें प्रो. मेहर फारुकी के अलावा और भी काफी दोस्त मिले। हमने यहाँ फोटो खिंचवाई। सर के साथ ये मेरी पहली फोटो थी । मेहर फारुकी, उर्दू के प्रोफेसर। यहाँ लोग उर्दू पढ़ते हैं जानकर आश्चर्य के साथ खुशी हुई। यहाँ सर भाषाओं पर बोले। जिस देश में सिर्फ एक ही भाषा बोली जाती है वहाँ लोगों को

विभिन्न भाषाओं से समृद्ध हमारे देश तथा उनके अस्तित्व के बारे में जानकर शायद काफी आश्चर्य हुआ।

दूसरे दिन जब सुबह उठा तो बाहर झाँका। देखता हूँ बर्फ की बारिश हो रही है। पेड़, पौधे, रास्ते, सब बर्फ से छाए हुए हैं। वॉशिंग्टन सफेद चादर ओढ़ चुका था। युनिवर्सिटी और शालाओं में छुट्टी घोषित की गयी। कुदरत के इस खूबसूरत नज़ारे के साथ आज और दो महान कर्मशीलों के साथ भेंट होने वाली थी। कीम स्टेन्ली और एनगुगी वा थीओंगो ।

नौ अप्रैल को 'संयुक्त राष्ट्र' में सर ने घुमन्तु व विमुक्त जनजातियों पर वकतव्य किया। मैंने छारानगर की चर्चा करते हुए घुमन्तु विमुक्त जनजातियों के मानव अधिकारों की बात की। लोग 'बूधन थियेटर' के बारे में और अधिक जानना चाहते थे। 'संयुक्त राष्ट्र' में जब हमें आमंत्रित किया गया तो इसके प्रमुख के दावेदार श्री शशी थरूर और बांग्लादेश के विदेश दूत श्री अन्वरुल करीम चौधरी भी आए हुए थे। हमने संयुक्त राष्ट्र में आहवान किया की भारत की घुमन्तु जनजातियों को एक नया देश दिया जाए पर उस देश की कोई सीमाएँ न हों। दुनिया के किसी भी घुमन्तु को कहीं भी जाने के लिए इज़ाजत नहीं लेनी पड़े। घुमन्तुपन टिकेगा तो संस्कृति भी टिकेगी। संस्कृति टिकेगी तो समाज का अस्तित्व रहेगा। इसके साथ-साथ हमने भारत की विमुक्त जनजातियों पर जो अमानवीय अत्याचार हो रहे हैं उसका भी ब्योरा दिया।

रात को प्रो. हैनरी के भाई के घर रुके और दूसरे दिन सुबह 'प्रिन्सटन युनिवर्सिटी' के लिए रवाना हो गए। यहाँ 'स्कूल ऑफ आर्किटेक्ट' में मेरी मदारी समाज पर बनाई गयी फिल्म 'फाइट फॉर सरवाइवल' दिखाई गयी। मदारी और अन्य घुमन्तु विमुक्त जनजातियों पर काफी चर्चा हुई। लोग परंपरा और व्यवस्था के बीच समाधान ढूँढ़ रहे थे। प्रतिती नामक एक युवा प्रौफेसर ने मुझे वॉशिंग्टन में शेक्सपियर का नाटक देखने के लिए पचास डॉलर दान किया।

सर का घुमन्तु विमुक्त जनजातियों तथा 'बूधन थियेटर' पर काफी अच्छा संवाद रहा। प्रेक्षकों में से काफी सारे सवाल उठे। गांधी और अहिंसा पर

स्नातकोत्तर विद्यार्थिओं के साथ संवाद हुआ। जिस देश ने दुनिया में हिंसा का प्रतिनिधित्व किया है उस देश के विद्यार्थी गांधी का अहिंसा का मंत्र जानना चाह रहे थे।

तेरह फरवरी को काफी भारी बर्फबारी वॉशिंग्टन में शुरू हुई। सरकार ने युनिवर्सिटी और शालाओं को बंद करने का फरमान ज़ारी किया। जिस दो दिन के संवाद के लिए आए थे उस में से एक दिन तो यहाँ के खराब मौसम ने ले लिया था । दूसरे दिन कीम स्टेन्ली और न्गुगी जैसे महान लेखकों के साथ साक्षात्कार हुआ। ग्लोबल वॉर्मिंग और आदिवासी भाषाओं के बारे में काफी चर्चा हुई। भारत के घुमन्तु विमुक्त जनजातियों की आज की वर्तमान स्थिति जानकर उन दोनों लेखकों की आँखें फैल गयी थीं। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था की आज की स्थितियों में भी क्या ये संभव है और वो भी भारत देश जैसे महान गणराज्य में।

दूसरे दिन चारों ओर बर्फ बिखरी होने के बावजूद संवाद जारी रखा गया। आश्चर्य के साथ काफी सारे लोग इस संवाद में शरीक हुए। कविताएँ गाई गयीं। ज्योर्जटाउन के साउथ एशियन स्टुडेन्ट्स द्वारा 'एनकाउन्टर' नाटक प्रस्तुत किया गया। वास्तविकता के काफी नज़दीक थे वे। मैंने कविताएँ गाई। 'लेनन लिटररी सिम्पोज़ियम' में सर ने आए हुए विद्यार्थी और महेमानों को आदिवासी की भाषा, उनकी संस्कृति और दुनिया को टिकाए रखने के लिए आदिवासी के ज्ञान की ज़रूरत पर व्याख्यान दिया। आदिवासीयों भाषाओं के प्रलेखीकरण और प्रकाशन के बारे में सुनकर लोग दंग रह गए थे। यहाँ मैंने पाश की कविता 'भारत' गाई। सर ने उसका शब्द सह अनुवाद कर मुझे मदद की। 'बुलडोज़र' फिल्म भी दिखाई गयी ।

काफी रसप्रद, ज्ञानवर्धक और अच्छा समय बीता। मैं अपनी विदेश यात्रा पूरी कर अपने देश की ओर निकला।

मैंने आपसे मेरे जीवन के बारे में बिलकुल खुलकर बात की है। छारानगर की उन अंधेरी गलियों से विदेश की चकाचौंध रोशनी तक का सफ़र, जीवन में नाटक का महत्त्व, हमारी पहचान, घरेलू बातें, अपने बाप की जीवनी, समाज

के रीति-रिवाज़, अपने साथी दोस्तों के संघर्ष, उनके जीवन, उनकी नाटक के प्रति कटिबद्धता, 'भाषा' संस्था का हमारे जीवन उभारने में योगदान, सर के विचारों से हमारे जीवन में आए बदलाव, दूसरों के लिए जीवन जीना, मानवीय हकों के लिए परंपरागत कला द्वारा अहिंसक लड़ाई, ऐसी बहोत सी बातें मैंने आप के साथ दिल खोलकर की हैं। अपने जीवन को कई वर्षों से लिखता आया हूँ, लिख रहा हूँ, क्युं लिख रहा हूँ पता नहीं, लेकिन आज अपने आप में काफी प्रफुल्लित महसूस कर रहा हूँ। शायद काफी कुछ छूट भी गया है, लेकिन उसके बारे में फिर कभी बात करेंगे। मैं जानता हूँ कि मैं एक अच्छा लेखक नहीं हूँ। मेरी लेखन शैली, चाहे वो नाटक हो, कहानी हो या आत्मकथा, बहोत ही सीधी और सरल है। लेकिन जीवंत है।

मेरे इस लेखन से मेरे बाप को, मेरी बीवी को, मेरे घरवालों को और शायद मेरे समाज को भी बुरा लगेगा। परिवार का मैं पारिवारिक रूप से और समाज का सामाजिक तौर से गुनहगार हूँ। मैं आपसे कबूल करना चाहता हूँ की मैंने मेरे माँ-बाप को बहोत दुःख दिए हैं। मेरी शादी को दस साल से ज़्यादा हो गए लेकिन बीवी और बच्चों की इच्छाओं को कभी पूरा नहीं कर पाया। परिवार मुझ पर काफी आशाएँ लगाए है और मैं जिम्मेवारियों के साथ जीने की कोशिश कर रहा हूँ।

उत्तर ने सारी ज़िंदगी हॉस्टेल में रहकर पढ़ाई की। वो कभी-कभार ही घर आता। बरोडा की 'एम. एस. युनिवर्सिटी' में पढ़ाई पूरी कर अमरिका पढ़ने गया। अब वो इन्जीनियर बन गया है। बाप की एक नई पीढ़ी की शुरूआत हुई है। उत्तर माँ-बाप और परिवार को सम्मान भरी ज़िंदगी देना चाहता है। उन्हें विश्व की यात्रा पर भेजना चाहता है। एक नई दुनिया दिखाना चाहता है, बनाना चाहता है।

अब तक मैंने कोई पंद्रह से ज्यादा डॉक्युमेन्ट्री फिल्में बनाई हैं। कुछ समय पहले ही अपनी फिल्म प्रोडक्शन कंपनी शुरू की है। नाम है 'नॉमैड मुवीज़'। एक छोटा सा ऑफिस काफी मशक्कत के बाद मिला है। अपने आप को कुछ बनाने की कोशिश कर रहा हूँ।

'बूधन थियेटर' को तीन वर्षों के लिए फोर्ड फाउन्डेशन द्वारा नाटक बनाने और मंचन करने के लिए आर्थिक सहायता मिली है। नुक्कड़ नाटक के साथ-साथ छारानगर में फ्राँस के लेखक जा जेनेट की 'ला बालकन', श्रीमती महाश्वेता देवी लिखित 'चोली के पीछे क्या है?' और 'स्तन दाईनी' तथा इटाली के नोबेल विजेता डारीयो फ़ो लिखित 'एक्सीडेन्टल डेथ ऑफ एन एनार्कीस्ट' नाटक किए जा रहे हैं। 'बूधन थियेटर' के काफी सारे दोस्त बन चुके हैं। लोग आज हमें सम्मान भरी नज़र से देखने लगे हैं। बदलाव का एक दौर शुरू हुआ है। समाज और जीवन अपनी गति से चल रहा है। लोगों की सोच बदल रही है... उसे और बदलना है।

अंत में, 'बूधन थियेटर' ने एक पीढ़ी पूरी कर ली है, आनेवाली पीढ़ी ने नाटक का शस्त्र हाथ में उठा लिया है। विकास की नई परिभाषा के लिए छारानगर के कलाकार बच्चे अब तैयार हैं। ये अपने नाटक स्वयं सोचते हैं, बनाते हैं, खेलते हैं और अपने संवैधानिक हकों के लिए उन्होंने आवाज़ उठाना शुरू कर दिया है।

छारानगर से उठी ये आवाज़ एक दिन भारत के घुमन्तु और विमुक्त जनजातियों को सम्मान से जीने में मदद करेगी। वो सवाल जो पिछले दस सालों से हम सरकार और लोगों से पूछ रहे हैं कि, 'क्या हम दोयम दर्जे के नागरिक हैं?', इसका जवाब 'बूधन थियेटर' की ये दूसरी पीढ़ी लेगी। इक्कीसवीं सदी का पहला दशक पूरा हो रहा हैं। आनेवाला दशक आशाओं से भरा है।

लाल सलाम ! जय विमुक्त !

दक्षिण बजरंगे छारा

अहिंसात्मक लड़ाई के नाटक

•

बूधन

फरवरी १९९८ । पश्चिम बंगाल की सबर जनजाति के एक युवक, बूधन सबर पर झूठा केस लगा के पुलीस थाने की लॉक अप में बेरहमी से मारा गया । तीन बार रीमान्ड आर्डर देने के बाद उसे जेल में मार दिया गया। बूधन सबर के दूसरे पोस्ट्मोर्टम के लिए जब श्रीमती महाश्वेता देवी द्वारा कलकत्ता हाई कोर्ट में याचिका की गयी तब उसकी पहली पोस्ट्मोर्टम की फर्जी रीपोर्ट और उस पर बेरहमी से किए गए अत्याचारों का झूठ सामने आया। बूधन सबर की बेवा श्यामली को मुआवज़ा मिला ।

कलकत्ता हाई कोर्ट के इस अनशतः न्याय की बात गुजरात के छारा समाज के युवक-युवतियों तक पहोंची। बूधन सबर पर हुए अत्याचार इनके लिए रोज़ाना जीवन का हिस्सा था। इन युवक-युवतिओं ने इस एतिहासिक केस पर नाटक खेलने का सोचा ।

अगस्त १९९८ में भारत में पहली बार 'नेशनल कनवेन्शन ऑफ डीनोटीफाईड ट्राईब्स' छारानगर में आयोजित हुआ। यहाँ इस नाटक को खेला गया ।

वो दिन और आज का दिन है, 'बूधन' नाटक आज तक खेला जा रहा है। तीन सौ मंचन के बाद इसकी गिनती बंद कर दी गयी । छारा समाज की अब दूसरी पीढ़ी ने भी इसे आत्मसात कर लिया है । खुद भोगे हुए अनुभवों की ये नाट्यात्मक अभिव्यक्ति का प्रवाह अविरत चलता रहेगा ।

•

पात्र

सूत्रधार | हवलदार १, २, ३ | पानवाला

बूधन | श्यामली | इन्स्पेक्टर अशोक रॉय

सुप्रिन्टेन्डेन्ट | जज | श्रीधर

काजी | संत्री | आशीष

(ये नाटक काफी करुणामय है। इसलिए नाटक करते वक्त करुणा का भाव उत्पन्न हो यही इस नाटक की सार्थकता है। नाटक में संगीत के लिए ढोल का उपयोग किया जा सकता है।)

(दृश्य १)

सूत्रधार : नमस्कार ! आइए, नाटक से पहले हम अपने इतिहास को टटोलें। हमारा भारत देश। देश की कुल आबादी एक अरब । जिनमें घुमन्तु-विमुक्त जनजातियों की जनसंख्या छः करोड़ । फिर भी न जाने क्युं सरकार के लिए अलक्षित हम । डी.एन.टी.। हम आदिवासी। हमें जन्म से अपराधी माना जाता है। सदियों से पृथ्वी पर हो रहे परिवर्तनों के गवाह। कुदरत के बीच नैसर्गिक वातावरण में रहनेवाले, कुदरत की कोख से पैदा हुए, उसी में पले, बड़े हुए और मर गए। हमें हमारे जंगलों के लिए दावा करना पड़ता है। सदियों से घुमन्तु-विमुक्त बे-मौत मरते आए हैं। कभी सवर्णों के गाँव के आगे से गुजरते तो शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाते थे।

(मंच के पृष्ठभाग के एक कोने में कुछ आदिवासी लकड़ियाँ लेकर निकल रहे हैं। वही जंगल में छुपे गैर आदिवासी लोग उन पर हमला बोल देते हैं। चारों ओर इन असहाय आदिवासियों की 'बचाओ, बचाओ आह... आह...' की दर्दनाक चीखें गूँज उठती हैं। लोग इनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं। सभी पात्र धराशायी हो जाते हैं।)

सूत्रधार : ऐसे ही सन् १९७९ में लोधा जमात के लोगों को पानी में डुबोकर तड़पा-तड़पाकर मारा गया था ।

(इस संवाद के दौरान कुछ पात्र दूसरा दृश्य बनाते हैं जिस में आदिवासियों को बाँध रखा है और अन्य पात्र संवाद बोल रहे हैं।)

हवलदार १ : इनका सिर पानी में डुबो दो।

हवलदार २ : जब तक साँस न रुके सिर को पानी में ही रहने दो।

हवलदार ३ : तड़पा-तड़पाकर मारो सालों को।

(बंधे हुए आदिवासियों का सिर पानी में डुबो दिया जाता है। वो तड़प-तड़पकर मर जाते हैं।)

सूत्रधार : और इस तरह न जाने कितने ही घुमन्तु-विमुक्त बेमौत मारे जा रहे

हैं। न जाने उन पर कितने अत्याचार किए जा रहे हैं। देश के सही हकदारों के हक छीने जा रहे हैं। पेश है, ऐसे ही सबर जमात के एक युवक बूधन पर हुए पुलीस अत्याचार की सत्य गाथा।

(सभी पात्र एक-एक कर क्रांति का नारा लगाते हैं और एक लाइन में खड़े हो जाते हैं।)

सभी : एक क्रांति आई थी, एक क्रांति आएगी।

वो क्रांति देश की आज़ादी की थी, ये क्रांति घुमन्तु-विमुक्त की है !

(सभी पात्र अपने-अपने संवाद बोलकर सड़क के किनारे स्थित एक पान की दुकान का दृश्य बनाते हैं। फिर सभी कलाकार बारी-बारी से सूत्रधार का पात्र निभाते हैं।)

सूत्रधार : आप जो देखने जा रहे हैं वो अन्त नहीं, आरम्भ है।

सूत्रधार : ये है पश्चिम बंगाल का एक छोटा सा गाँव, अकरबैद। यहाँ की सबर जमात कानून की नज़रों में चोरों की जमात मानी जाती है।

सूत्रधार : बूधन अपने छोटे से गाँव में अपनी प्यारी सी बीवी श्यामली और मासूम बच्चों के साथ शांति का जीवन बसर कर रहा था।

सूत्रधार : लेकिन १० फरवरी १९९८ के दिन कानून को अपने हाथों में लेकर चलनेवाले पुलीस ऑफिसर अशोक रॉय की काली नज़र बूधन पर पड़ी और उसने बूधन की ज़िंदगी को तहस-नहस कर दिया।

सूत्रधार : एक ऐसा भयानक अत्याचार जो आपको सोचने पर मजबूर कर देगा कि क्या हम सही मायने में आज़ाद हैं ?

सूत्रधार : आज़ादी के छ:दशकों के बाद भी अंग्रेजों का घुमन्तु-विमुक्तों को दिया हुआ 'जन्मजात अपराधी' का लेबल आज भी बरकरार है।

सूत्रधार : बूधन सबर पर हुए पुलीस अत्याचार का नाटक आप आगे देखिए। तो प्रस्तुत करते हैं, बूधन सबर पर हुए पुलीस अत्याचारों का नाटक ! 'बूधन'!

(दृश्य २)

(सड़क के किनारे स्थित एक दुकान का दृश्य बनाया जाता है। बूधन अपनी साइकिल हाथों में लिए अपनी बीवी श्यामली के साथ चला आ रहा है। वहीं उसे पानवाला आवाज़ देता है।)

पानवाला : (बूधन से) अरे...ओ...बुधनवा तनिक पान-बान चबाई ल्यो।

(बूधन पानवाले चाचा की ओर देखता है। अपनी बीवी से पूछता है।)

बूधन : अरे... ओ... श्यामली... तू पान खाएगी क्या ?

(श्यामली घुंघट में से ही 'हाँ' कहती है। बूधन पानवाले की ओर जाते हुए कहता है)

दुई बनारसी पान बना दो चाचा।

पानवाला : हाँ... हाँ... अभी बनावत हैं। (कुछ देर पान पर चूना-कत्था लगाने के बाद) अरे... बुधनवा... तुम कहाँ जात रहे हो ?

बूधन : अरे क्या बताएँ चाचा ? वो... वो... मामा ससुर हैं न हमरे, उनकी जरा तबियत ठीक नहीं है, वहीं जा रहे हैं।

पानवाला : अच्छा। अच्छा हमरी याद देना उन्हें... इ लो तोहार दुई पनवा।

बूधन : और ये लो तुम्हारा पैसा।

(बूधन जैसे ही पैसे देने के लिए हाथ बढ़ाता है वैसे ही इन्सपेक्टर अशोक रॉय उसका हाथ पकड़ लेता है। इन्सपेक्टर अशोक रॉय अपने थाने में एक विलम्बित केस थोपने के लिए किसी सबर की तलाश में घूम रहा है।)

अशोक रॉय : (बूधन का हाथ पकड़ते हुए) ऐ... तेरा नाम क्या है ?

बूधन : (घबराते हुए) बूधन सबर, साब।

अशोक रॉय : हूँ... सबर...चल, पुलीस थाने चल।

बूधन : लेकिन साब... मेरा गुनाह क्या है ?

अशोक रॉय : हरामज़ादे, तेरा सबसे पहला गुनाह तो ये है कि तूने पुलीस से सवाल किया।

(अशोक रॉय बूधन को हाथों से खींचकर नीचे गिरा देता है।)

बूधन : साब... क्या कर रहे हो साब ? मैं तो...

अशोक रॉय : सीधी तरह चल वरना बीच बाज़ार नंगा कर के ले जाऊँगा। (बूधन को लातों और घूसों से मारता है) चल। चल...

बूधन : (गिड़गिड़ाते हुए) मुझे जाने दो साब, मैंने क्या किया ?

(बूधन की आवाज़ सुन श्यामली बूधन को छुड़ाने दौड़ते हुए आती है।)

श्यामली : बूधन। क्या हुआ बूधन ? बूधन... साब...क्युं मार रहे हो साब...? मेरे बूधन ने क्या किया है, साब ?

अशोक रॉय : तू... कौन है तू ?

श्यामली : साब... मैं... मैं... श्यामली। इसकी औरत।

अशोक रॉय : अच्छा... इसकी औरत। साली चोर की औरत चोट्टी। चल भाग यहाँ से (वो श्यामली को धक्का मारकर नीचे गिरा देता है। हवलदार से) ले चलो साले को बीच बाज़ार घसीटते हुए।

श्यामली : (चिल्लाते हुए) बूधन...

(सभी पात्र कुछ देर के लिए स्थिर हो जाते हैं।)

सूत्रधार : श्यामली एक भोली-भाली, अबोध औरत है।

सूत्रधार : बूधन को गिरफ्तार करने से पहले बताया भी नहीं गया कि उसका गुनाह क्या है।

सूत्रधार : कानून के मुताबिक मुज़रिम को गिरफ्तार करने से पहले ये बताया जाना चाहिए कि उसका गुनाह क्या है।

सूत्रधार : बूधन का एक गुनाह तो ये था कि वो चोरों की जमात मानी जाने वाली सबर जमात से था।

सूत्रधार : लेकिन अशोक रॉय कानून को तो हमेशा अपने बंदूक की नोक पर रखता था।

सूत्रधार : सबरों को मारना उसके लिए दिल लुभावन खेल था।

सूत्रधार : वाह ! क्या बेरहम दिल इन्सान है।

(दृश्य ३)

(सभी पात्र 'बड़ाबाज़ार' पुलीस थाने का दृश्य बनाते हैं।)

अशोक रॉय : (हवलदार से) ले चलो इसे ।

हवलदार : (पुलीस थाने के बाहर खड़ा हुआ) सलाम साब ।

अशोक रॉय : सलाम ।

(हवलदार बूधन को लॉक-अप में ले जाता है। अशोक रॉय अपना रिवाल्वर केस टेबल पर रखकर दूसरे हवलदार को कुछ हिदायत देता है और लॉक-अप में जाता है।)

अशोक रॉय : (बूधन से) बोल... चोरी का माल कहाँ रखा है ?

बूधन : (घबराते हुए) साब, मैंने कोई चोरी नहीं की है।

अशोक रॉय : हरामज़ादे, ये मैं भी जानता हूँ कि तूने चोरी नहीं की है, लेकिन पिछले दिनों मेरे इलाके में सत्रह चोरियाँ हुई हैं। कितनी ? सत्रह। उन सबकी रिपोर्ट तो बनानी पड़ेगी ना।

बूधन : लेकिन साब... मैं तो हाथों से खिलौने बनाकर समिती में...

अशोक रॉय : (बूधन की बात बीच में ही काटते हुए) तू चाहे जो भी करता हो, चोरी तो तुझे कबूल करनी ही पड़ेगी। (डंडा दिखाते हुए) आखिर कानून ने हमें ये डंडा किस लिए दिया है। चल, कबूल कर चोरी।

(अशोक रॉय डंडा बूधन के पैरों पर मारता है। दर्द के मारे बूधन के मुँह से चीख निकल जाती है। अशोक रॉय वहशी जानवर की तरह उसे मारने लगता

है। वहाँ पुलीस थाने के बाहर श्यामली बूधन को ढूँढते हुए आती है।)

श्यामली : बूधन... बूधन... (श्यामली पुलीस थाने के अंदर जाने की कोशिश करती है।)

हवलदार : (श्यामली को रोकते हुए) ए... लड़की, कहाँ जा रही है ?

श्यामली : (हवलदार के सामने गिड़गिड़ाते हुए) साब... साब... मुझे मेरे पति से मिलना है साब।

हवलदार : तेरा पति कौन ?

श्यामली : वो... बड़े साब... अभी-अभी लाये वो !

हवलदार : अच्छा वो... वो तो साला सबर है। चोर है।

श्यामली : नहीं साब... ऐसा मत बोलो साब... वो चोर नहीं है साब। उसने कोई चोरी नहीं की। हम तो खिलौने बनाकर समिती में बेचते हैं। उसने कोई चोरी नहीं की।

हवलदार : उसने चोरी की है कि नहीं ये पता लगाना पुलीस का काम है। समझी ?

श्यामली : लेकिन साब वो तो मेरा सुहाग है, मेरा पति है। मुझे तो उससे मिलने दो।

हवलदार : तुझे अपने पति से मिलना है तो यहाँ नहीं, कोर्ट में मिलना। चल... चल... निकल यहाँ से।

(हवलदार श्यामली को धक्का मारता है। लेकिन श्यामली बूधन के लिए जोर-जोर से चिल्लाती है। आवाज़ लॉक-अप में बूधन को मार रहे इन्स्पेक्टर अशोक रॉय के कानों तक पहोंचती है।)

अशोक रॉय : कौन... कौन चिल्ला रहा है ये ?

(अशोक रॉय बाहर आता है। श्यामली अशोक रॉय को देख उसके पैरों में गिर पड़ती है।)

श्यामली : साब... साब... मेरे पति को छोड़ दो साब... उसने कुछ नहीं किया है।

अशोक रॉय : (श्यामली को देख) तू...तू...यहाँ भी आ पहोंची !

श्यामली : (गिड़गिड़ाते हुए) साब... मैं आपके पैर पड़ती हूँ। आपके हाथ जोड़ती हूँ। मेरे पति को छोड़ दो।

अशोक रॉय : (पैरों में पड़ी श्यामली को अपने पैरों से धक्का मारते हुए) सीधी तरह से चली जा वरना तुझे भी डंडे पड़ेंगे।

श्यामली : (गुस्से में) मार डालो। मुझे भी मार डालो... लेकिन मेरे बूधन को छोड़ दो साब। (अशोक रॉय के सामने अपना पल्लू फैलाते हुए) मैं आपसे अपने सुहाग की भीख माँगती हूँ साब...

अशोक रॉय : अरे... ये पुलीस स्टेशन है। कोई मंदिर नहीं जहाँ भीख दी जाए। चल हट।

(अशोक रॉय अंदर चला जाता है। श्यामली पीछे गिड़गिड़ाती रहती है।)

श्यामली : साब... सा...ब...छोड़ दो साब...मेरे बूधन को छोड़ दो ।

(हवलदार श्यामली को अंदर जाने से रोकता है।)

नेपथ्य से आवाज़ : सबरों के खून की, पुलीस बनी है प्यासी !

अरे कौन समझाए इनको, ये भी हैं भारतवासी !

सूत्रधार : दिनांक ११ फरवरी १९९८।

(दृश्य ४)

(बड़ाबाज़ार पुलीस थाना। ग्यारह फरवरी की सुबह अशोक रॉय पुलीस थाने आता है ।)

हवलदार : सलाम साब ।

अशोक रॉय : सलाम ।

हवलदार : सलाम साब ।

अशोक रॉय : सलाम। कुछ कबूल किया ?

हवलदार : नहीं साब।

अशोक रॉय : हूँ...(कुछ सोचने के बाद हवलदार से) तुम चलो मेरे साथ।

हवलदार : साब... वो... बूधन सबर की कल की गिरफ्तारी की तारीख रजिस्टर में डाल दूँ ?

अशोक रॉय : कब समझेगा तू ? इन्सपेक्टर बनना है कि नहीं ? हमारा काम कल को आज करना है। ये सरकारी कागज़ हैं किस लिए ? बूधन सबर की गिरफ्तारी की तारीख आज की होनी चाहिए। और ध्यान रहे नम्बर रजिस्टर में नहीं होना चाहिए। समझे ?

(अशोक रॉय हवलदार को लेकर लॉक-अप में जाता है। वहाँ बूधन पानी से बाहर लायी हुई मछली की तरह तड़प रहा है।)

अशोक रॉय : (हवलदार से) उठाओ इसे।

(हवलदार बूधन को लात मारकर उठाता है। बूधन नींद में से जागते ही जैसे तड़प उठता है।)

बूधन : पानी...पानी... पानी...पानी... मुझे... कोई... पानी दो...

(गला सूख जाने की वज़ह से बूधन के गले से आवाज़ भी ठीक तरह से नहीं निकल पा रही है।) मेरा... मेरा गला सूखा जा रहा है... मुझे कोई पानी दो...पानी... पानी...

(बूधन को तड़पता देख अशोक रॉय के चेहरे पर क्रूरता छा जाती है।)

अशोक रॉय : शिवलाल... ला वो शराब की बोतल और उड़ेल दे इस हरामज़ादे के मुँह में ।

(शराब का नाम सुनते ही बूधन बुरी तरह घबरा जाता है।)

बूधन : साब... साब... मैं शराब नहीं पीता। मैं शराब नहीं पीता... मुझ

गरीब पर रहम करो साब...

अशोक रॉय : सबर ! और शराब नहीं पीता!

(इस बीच शिवलाल दारू की बोतल लाता है और अशोक रॉय को देता है।)

अशोक रॉय : चल... मुँह खोल। (हवलदार से) तुम इसकी नाक दबाओ ।

बूधन : नहीं... साब... नहीं... (सारी शराब बूधन के मुँह में जबरदस्ती उड़ेल दी जाती है। शराब पीने की आदत न होने की वज़ह से बूधन बुरी तरह खाँसने लगता है ।)

अशोक रॉय : अब तू तो क्या तेरे फरिश्तों को भी कबूल करना पड़ेगा कि चोरी तूने की है।

(बूधन को फिर लातों, घूसों और डंडो से वहशी जानवर की तरह मारा जाता है। बूधन दर्द के मारे कराह उठता है। उसकी दर्दनाक चीखें बाहर बैठी भूखी-प्यासी श्यामली के कानों में पड़ती हैं। वो बुरी तरह तड़प उठती है। वो फिर से दौड़कर पुलीस थाने के दरवाजे पर जाती है। वहाँ उसे हवलदार रोकता है।)

हवलदार : (आँखें दिखाते हुए) ए...लड़की...तू अभी तक नहीं गई ?

श्यामली : (गुस्से में) नहीं जाऊँगी। अपने बूधन से मिले बिना नहीं जाऊँगी।

हवलदार : (डंडा उठाता है) सीधी तरह जाती है कि नहीं ?

श्यामली : (निडरता से उसका सामना करते हुए) मार डालो। मुझे भी मार डालो। जब मेरा बूधन ही नहीं होगा तो मैं जीकर क्या करूँगी ?

हवलदार : अरे... मरने का इतना ही शौक है तो जा के गाँव के कुएँ में मर। चल निकल यहाँ से। (श्यामली को हवलदार धक्का मारता है। श्यामली राह चलते लोगों से अपने सुहाग को बचाने के लिए बिनती करती है।)

श्यामली : (रोते हुए) अरे...कोई तो मेरे पति को बचाओ... ये लोग उन्हें

मार डालेंगे। भाई साब... भाई साब आप तो मेरी मदद करो। उन्होंने कुछ नहीं किया। बहन जी... बहन जी आप तो मेरी मदद करो। वो लोग मेरे बूधन को मार डालेंगे...(पुलीस थाने से बूधन की एक दर्दनाक चीख) देखो... देखो कितनी बेदर्दी से मार रहे हैं मेरे बूधन को। भाई... भाई... आप तो मेरी मदद करो... हम तो... हम तो सिर्फ पान खा रहे थे... क्या हमारे लिए पान खाना भी... ? बूधन... बूधन...

नेपथ्य से आवाज़ : इस देश के कानून का, कैसा अत्याचार है।

जुर्म करे कोई, मगर निर्दोष पे ही मार है।

(अपने-अपने संवाद बोलते हुए पात्र पुलीस थाने का दृश्य तथा चरित्र बदलते हैं।)

सूत्रधार : दस फरवरी से बारह फरवरी तक बूधन को लॉक-अप में भूखा-प्यासा रखा गया।

सूत्रधार : बिना रिमान्ड ऑर्डर बूधन पर थर्ड डिग्री आजमाया गया। ये कैसा कानून है ?

सूत्रधार : तेरह फरवरी को सबर जमात के एक युवक श्रीधर सबर को 'बड़ाबाज़ार पुलीस थाने' में लाया जाता है।

(दृश्य ५)

(बड़ाबाज़ार पुलीस थाने में आमने-सामने दो लॉक-अप हैं। एक हवलदार श्रीधर को पकड़कर लॉक-अप में अन्दर करता है।)

हवलदार : (श्रीधर का गिरेबान पकड़ते हुए) चल... अंदर चल... साला सबर चोरी करता है। चल... अंदर चल...

श्रीधर : साब... छोड़ दो न...कुछ खर्चा पानी...

हवलदार : मुँह बंद कर अपना...

(लॉक-अप का दरवाजा बंद करता है। वहीं दूसरे लॉक-अप में बूधन कैद है। बूधन बेहोशी की हालत में फर्श पर पड़ा है और बार-बार अपनी जान बक्श देने के लिए बिनती कर रहा है।)

बूधन : (लड़खड़ाती हुई आवाज़ में) सा... ब... मुझे छोड़... दो... साब... मैं... मर... जा... ऊँ ... गा... साब...

अशोक रॉय : ये सबरों की जान बड़ी सख्त होती है। लगता है ये इतनी आसानी से नहीं मानेगा। इस पर थर्ड डिग्री का इस्तमाल करना ही पड़ेगा। (हवलदार से) इसे इलेक्ट्रिक शॉक देने की तैयारी करो ।

हवलदार : लेकिन...साब...इस तरह तो इसकी मौत भी हो सकती है।

अशोक रॉय : (हवलदार को आँख दिखाते हुए) तुम्हें जितना कहा गया है उतना ही काम करो। ये मेरा हुक्म है।

(अशोक रॉय जैसा कहता है हवलदार वैसा करने लगता है। वो बूधन को घुटनों के बल बिठाता है। उसके हाथ पीछे से बाँध देता है। बूधन के सिर में इलेक्ट्रिक बेल्ट बाँधता है। अशोक रॉय बूधन को इलेक्ट्रिक शॉक देता है। इलेक्ट्रिक शॉक लगते ही बूधन का पूरा शरीर काँप उठता है। वो मछली की तरह तड़पने लगता है। उसकी आँखें ऊपर चढ़ जाती हैं। उसके मुँह से लार टपकने लगती है। बूधन को दो-तीन बार इलेक्ट्रिक शॉक के झटके दिये जाते हैं और वो एक जिंदा लाश का ढेर बनकर गिर पड़ता है। ये दृश्य दूसरे लॉक-अप में बंद, श्रीधर देख रहा है। बूधन श्रीधर का दोस्त है। वो छुपकर ये सारा नज़ारा देखता है। उसकी आँखों में भी आँसू आ जाते हैं। पर वो चाहकर भी बूधन को नहीं बचा सकता है । फिर सभी पात्र अपने-अपने संवाद बोलकर पुरुलिया जेल में चल रही हाजरी का दृश्य बनाते हैं। ये लोग नीचे बैठे हैं और सहायक सुप्रिटेन्डेन्ट हाजरी ले रहा है।)

सूत्रधार : कोर्ट का हुक्म हैं, बूधन को तेरह फरवरी से सोलह फरवरी तक रिमान्ड पर लिया जाए।

सूत्रधार : अंधे-बहरे कानून को ये नहीं दिखाई देता कि बूधन का रिमान्ड तो

पहले से ही लिया गया है। एस.पी., डी.एस.पी. और अशोक रॉय बूधन को हथकड़ियाँ पहनाकर तलाशी के लिए उसके घर ले गए जहाँ उन्हें सिवाय गरीबी के कुछ भी नहीं मिला।

सूत्रधार : तेरह फरवरी को कोर्ट श्रीधर सबर की जमानत रद्द करती है और उसे पुरुलिया जेल ले जाया जाता है।

सूत्रधार : तीन दिन के रिमान्ड के बाद कोर्ट बूधन की भी जमानत रद्द करती है और उसे भी पुरुलिया जेल ले जाया जाता है।

सूत्रधार : सूर्यास्त के पश्चात् बूधन को पुरुलिया जेल ले जाया जाता है जो कानून के खिलाफ है।

(दृश्य ६)

(सभी पात्र अपने-अपने संवाद बोलकर पुरुलिया जेल का दृश्य बनाते हैं, जहाँ सहायक सुप्रिटेन्डेन्ट सभी कैदियों की हाजरी ले रहा है। श्रीधर भी कैदियों की लाईन में बैठा है।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : श्रीधर...

श्रीधर : हाँ, जी साब।

(सुप्रिन्टेन्डेन्ट अपने हाजरी रजिस्टर में लिखता है।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : काजी !

काजी : जी... साब ।

(सुप्रिन्टेन्डेन्ट अपने रजिस्टर में लिखता है। इसी दौरान एक हवलदार बूधन का हाथ पकड़कर, सँभाल-सँभालकर जहाँ हाजरी चल रही है वहाँ लाता है। बुरी तरह मार खाने की वज़ह से बूधन ठीक तरह से चल भी नहीं पा रहा है। उसे चलने के लिए हवलदार के सहारे की ज़रूरत है।)

हवलदार : (सुप्रिन्टेन्डेन्ट से) साब, ये सबर है। कल शाम बड़ाबाज़ार पुलीस

थाने से लाया गया है।

(सुप्रिन्टेन्डेन्ट का चेहरा 'सबर' सुनते ही नफ़रत से भर जाता है।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : तलाशी लो इसकी।

(हवलदार बूधन की तलाशी लेता है लेकिन उसे कुछ भी नहीं मिलता।)

हवलदार : कुछ भी नहीं है साब ।

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : ठीक है। इसे वहीं नीचे बैठा दो और अपना काम करो।

हवलदार : लेकिन साब... लगता है इसे बहोत मारा गया है। ठीक तरह चल भी नहीं पा रहा है। अभी तक इसकी डॉक्टरी जाँच भी नहीं हुई है।

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : हाँ... हाँ... ठीक है, ठीक है। उसे बैठाओ और तुम जाओ।

(हवलदार बूधन को बैठाकर चला जाता है। हवलदार के जाने के बाद।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : (बूधन से) ए... तू... नाम क्या है तेरा ?

(बूधन की ओर से कोई प्रत्युत्तर नहीं । बूधन इस हालत में है ही नहीं कि वो जवाब दे सके। बूधन के न जवाब देने की वज़ह से सुप्रिन्टेन्डेन्ट बौखला उठता है। वो बूधन के पास जाकर उसे बुरी तरह झंझोड़कर पूछता है।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : हरामज़ादे। सुनता नहीं? मैं तुझसे पूछ रहा हूँ । नाम क्या है तेरा ?

(बूधन अचानक जैसे सपने से बाहर आया हो, इस तरह का भाव प्रकट करता है। वो भयानक असमंजस में है। ये सब उसके साथ क्युं हो रहा है, वो नहीं जान पा रहा है। वो अपनी बाकी बची टूटी-फूटी आवाज़ में जवाब देता है।)

बूधन : बू...ध...न...

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : हूँ... बूधन... बूधन सबर। (वो अपने हाजरी रजिस्टर में लिखता है।) बीवी का नाम ?

(बूधन की ओर से फिर कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता ।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : (आवाज़ ऊँची करते हुए) बी...वी...का...नाम...?

बूधन : (घबराकर) श...या...मली...

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : बच्चे?

बूधन : बूधेव...

(सुप्रिन्टेन्डेन्ट अपने रजिस्टर में कुछ लिखता है।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : हाँ... ठीक है... श्रीधर, तुम टिफिन देकर एक नम्बर के गेट पर खड़े रहो।

श्रीधर : जी... साब। (चला जाता है)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : काजी, तुम जाकर बाथरूम साफ करो।

काजी : जी साहेब।

(काजी भी चला जाता है। श्रीधर और काजी दोनों मंच के पिछले हिस्से में अपने काम में व्यस्त हो जाते हैं।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : (बूधन से) और... तू... बूधन सबर। तुम जेल का सारा कचरा निकालोगे। समझे?

(ऑर्डर देकर सुप्रिन्टेन्डेन्ट जेल का चक्कर लगाने के लिए निकल पड़ता है। बूधन के हाथ-पैर पहले से ही तोड़े गये थे। वो बड़ी मुश्किल से उठता है और झाड़ू हाथ में लेता है। मगर पूरे बदन में भयंकर दर्द की वज़ह से वो एक कदम भी आगे नहीं चल पाता और वहीं बैठ जाता है। उसे बैठे देख संत्री उस पर चिल्लाता है।)

संत्री : ए... क्या कर रहा है ? काम क्युं नहीं करता ? (इसी बीच वहाँ सुप्रिन्टेन्डेन्ट आ जाता है।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : क्या हो रहा है ये सब ? क्या हो रहा है यहाँ ?

संत्री : साब... ये काम नहीं कर रहा है।

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : ये साले सबर बड़े हरामखोर होते हैं। हराम की खाने की आदत पड़ चुकी है इन्हें...(बूधन को गिरेबान से पकड़कर नीचे गिरा देता है।) मारो...

साले को, इतना मारो की ज़िंदगी भर हरामखोरी करना भूल जाये।

(संत्री और सुप्रिन्टेन्डेन्ट बड़ी ही बेदर्दी से बूधन को मारते हैं। डंडे की मार से बूधन की पसलियाँ टूट जाती हैं। उसके हलक से आवाज़ तक नहीं निकल पाती। संत्री और सुप्रिन्टेन्डेन्ट दोनों जानवरों की तरह बूधन को पीटते हैं। पीटने के बाद)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : ले जाओ साले को अंधेरी कोठरी में। जब सूरज की रोशनी के लिए तड़पेगा तब पता चलेगा इस सबर को कि हराम का खाना क्या होता है।

(संत्री पीछे काम कर रहे दूसरे कैदियों और अपने साथियों को बुलाता है। सभी मिलकर अधमरे बूधन को उठाकर अंधेरी कोठरी में डाल देते हैं।)

(दृश्य ७)

(बूधन थोड़ी देर तक इसी तरह बेसुध हालत में पड़ा रहता है। श्रीधर, जिसे दूध देने का काम सौंपा गया है, बूधन को दूध देने कोठरी में आता है। कोठरी में बहोत अंधेरा है। श्रीधर बूधन को कोठरी में ढूँढ़ते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ता है।)

श्रीधर : (बूधन को आवाज़ लगाते हुए) बूधन..बू..ध..न...कितना अंधेरा है यहाँ! कुछ दिखाई भी नहीं दे रहा। बू...ध.. न...अरे...ओ बूधन...अरे आवाज़ तो लगा। कहाँ है तू ?

(श्रीधर अंधेरे में धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। बूधन अधमरी हालत में एक कोने में बैठा हुआ है। श्रीधर का पैर बूधन को छूता है। अचानक बूधन जैसे गहरी, दर्दभरी नींद से जागा हो और उसके ताजे ज़ख्म किसी ने उँगली डालकर कुरेद दिये हों, इस तरह वो दर्द से चिल्ला उठता है।)

बूधन : (श्रीधर के छूते ही) मुझे... मत... मारो... मुझे मत मारो... मैंने कुछ नहीं किया साब... मैं बेकसूर हूँ साब... मुझे... मत मारो... मैंने कोई...

चोरी नहीं की... मत मारो... आ... आ...

(उसे जैसे कोई मार रहा हो बूधन उस तरह तड़प उठता है।)

श्रीधर : (बूधन को शांत करते हुए) बू... ध... न... बूधन, मैं... मैं... श्रीधर। तुम्हारा दोस्त श्रीधर। (बूधन को सँभालते हुए) मुझे नहीं पहचाना...? मुझे देखो... मैं... मैं... श्रीधर...

('श्रीधर'नाम सुनते ही बूधन जरा शांत होता है। वो धीरे-धीरे अपने आपे में आता है। वो अपनी आँखों को छोटा कर ध्यान से अंधेरे में श्रीधर के चेहरे को छूता है। वो श्रीधर ही है, ये यकीन होते ही बूधन जैसे छोटे बच्चे की तरह फूट-फूटकर रोने लगता है।)

बूधन : श्री... ध... र। श्रीधर, मुझे बचा ले श्रीधर... ये लोग मुझे बहोत मारते हैं श्रीधर... मैंने कु... छ... नहीं किया... मैं... मैं बेकसूर हूँ श्रीधर... मैंने कोई चोरी नहीं की... तुम तो जानते हो न, मैं तो खिलौने बनाता हूँ... श्रीधर, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ। मुझे बचा लो... नहीं तो... नहीं तो ये लोग मुझे मार डालेंगे...श्री...ध...र...

(अपने दोस्त की ये हालत देखकर श्रीधर भावुक हो जाता है।)

श्रीधर : (बूधन को सांत्वना देते हुए) बूधन... तुम डरो मत बूधन। सब ठीक हो जायेगा।

बूधन : (रोते हुए) श्रीधर... मैं... बेकसूर हूँ... मैं बेकसूर हूँ...

श्रीधर : मैं जानता हूँ मेरे दोस्त... तुमने कुछ नहीं किया... लेकिन हम ठहरे सबर जमात के। हम गरीब आदिवासी क्या कर सकते हैं इन जालिमों का? तुम... तुम हिम्मत रखो, मेरे दोस्त। (बूधन का चेहरा अपने हाथों में लेते हुए) तुम्हें कुछ नहीं होगा...कुछ नहीं होगा तुम्हें। (नीचे रखा हुआ दूध का ग्लास अपने हाथ में लेते हुए) ये... लो बूधन... दूध पी लो...

(बूधन दूध पीने से मना करता है।)

श्रीधर : अब... पी... भी लो बूधन... शायद कई दिनों से तुमने कुछ खाया

भी नहीं होगा। (ग्लास बूधन के होठों के करीब लाता है। बूधन दूध पी लेता है। दूध पीने के बाद जैसे ही श्रीधर जाने के लिए उठता है, बूधन उसके पैर पकड़ लेता है।)

बूधन : मुझे छोड़कर... मत जाओ श्रीधर... मुझे यहाँ बहोत डर लगता है...ये...लोग मुझे मार डालेंगे श्रीधर...मुझे छोड़कर मत जाओ।

(श्रीधर न चाहते हुए भी अपने पैर बूधन से छुड़ाता है और उससे ग्लास लेता है।)

श्रीधर : तुम... चिंता न करना बूधन... तुम्हें कुछ नहीं होगा... कुछ नहीं होगा।

(श्रीधर चला जाता है। श्रीधर के जाने के बाद बूधन को फिर से अंधेरी कोठरी का अकेलापन पागल बनाने लगता है। उसे बहोत ही घबराहट होती है। वो बेचैन होने लगता है। उसे ऐसा लगता है जैसे उसके शरीर के साथ-साथ उसकी आत्मा और उसके मन पर भी घाव लगा हो। उसका मानस जैसे असंतुलित होकर उसे ही डराने लगता है। वो अपने आप पर, अपनी क्रियाओं पर काबू नहीं रख पा रहा है। उसे ऐसा लगने लगता है जैसे उस अंधेरी कोठरी में उसके प्यारे बच्चे उसे आवाज़ लगा रहे हों।)

नेपथ्य से आवाज़ : बाबा...बाबा... मेले... लिये बाजाल से चकली ले आना।

बाबा... बाबा... मे... ले... लिए मिठाई ले आना।

(वो अंतःस्फुरित आवाज़ सुनकर बूधन विचलित हो जाता है। उसे चारों ओर खालीपन महसूस होता है। उसके मन की स्थिति डगमगाने लगती है।)

नेपथ्य से आवाज़ : 'बूधन... ओ बूधन' की लयात्मक आवाज़ सुनाई पड़ती है जो तेज हो रही है। बूधन को लगता है कि चारों ओर से उस अंधेरी कोठरी में कोई उसे आवाज़ लगा रहा है। वो बावला बनकर इधर-उधर देखने लगता है। मन की उस विचलित स्थिति में उसे शारीरिक पीड़ा महसूस होती है। चारों पात्र 'बूधन... ओ बूधन' बोलते हुए, एक ही अंदाज में घूमते हुए,

बूधन को चारों ओर से घेर लेते हैं। ये चार पात्र हैं अशोक रॉय, सहायक सुप्रिन्टेन्डेन्ट, संत्री और हवलदार। बूधन एकदम से तड़प उठता है। उसे लगता है जैसे फिर से उस पर वही अत्याचार होने वाले हैं। उस अंधेरी कोठरी में राक्षस की छायाकृति में चारों पात्र बूधन के इर्द-गिर्द आकर उसे डराने लगते हैं।

सभी : बूधन चोर है...
चोरी कबूल कर...
मारो साले को...
इलेक्ट्रिक शॉक दो...
पागल बना दो...
अंधेरी कोठरी...

(गोल-गोल घूमते हुए आवाज़ का स्वर बढ़ाते हुए)

सभी : बूधन चोर है...
चोरी कबूल कर...
मारो साले को...
इलेक्ट्रिक शॉक दो...
पागल बना दो...
अंधेरी कोठरी...

(आवाज़ को और तेज करते हुए)

सभी : बूधन चोर है...
चोरी कबूल कर...
मारो साले को...
इलेक्ट्रिक शॉक दो...

पागल बना दो...

अंधेरी कोठरी...

(एकदम उच्च स्वर में बोलते हुए सभी पात्र एकदम से शांत हो जाते हैं। इस दौरान बूधन अपने मानस पर ये प्रहार सहन नहीं कर पाता और उसकी हालत अर्ध-पागल जैसी हो जाती है। बूधन को महसूस होता है कि ये चारों पात्र यमदूत का रूप लेकर आए हैं और धीरे-धीरे अपने हाथ फैलाकर उसका सीना चीरकर उसकी आत्मा निकाल रहे हैं।)

सभी : (अपने हाथों को बूधन के सीने की ओर ले जाते हुए)

मौत...

मौत...

(पात्र आवाज़ को क्रमबद्ध बढ़ाते हैं। बूधन अपने पर हुए शारीरिक अत्याचार और कोठरी के उस अंधेरेपन के कारण बना मानसिक असंतुलन सहन नहीं कर पाता और एक दर्दनाक चीख के साथ हमेशा के लिए हर तरह के अत्याचार से मुक्त हो जाता है। माहौल शांत हो जाता है। बिलकुल शांत।)

(दृश्य ८)

(बूधन का शरीर लाश के रूप में पड़ा हुआ है। यहाँ सुप्रिन्टेन्डेन्ट अपने साथियों के साथ बूधन की डॉक्टरी जाँच करवाने के लिए आता है।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : (अंधेरी कोठरी में प्रवेश करते हुए) आज... तो इस सबर की डॉक्टरी जाँच करवानी ही पड़ेगी (बूधन को नीचे पड़ा देख) उठाओ साले को...

(एक जेल कर्मचारी बूधन को लात मारता है। लेकिन बूधन की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। ये देख सुप्रिन्टेन्डेन्ट बूधन को उठाने की कोशिश करता है। लेकिन फिर भी बूधन की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। सुप्रिन्टेन्डेन्ट बूधन की नाक पर उँगली रखकर साँस की जाँच करता है। फिर बूधन की

छाती पर अपना कान रखकर धड़कन सुनने का प्रयास करता है। लेकिन शरीर की कोई भी क्रिया चालू न देख सुप्रिन्टेन्डेन्ट घबरा जाता है।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : ओ... माई गॉड... ये तो मर चुका है।

(ये सुनते ही सभी के चेहरे शुष्क हो जाते हैं।)

हवलदार : साब, अगर ये बात बाहर गई तो हम सब के लिए मुसीबत खड़ी हो सकती है।

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : हाँ। बात तो सही है लेकिन...(सोचने लगता है। थोड़ी देर बाद) इसे कौन से पुलीस थाने से लाया गया था ?

हवलदार : बड़ाबाज़ार पुलीस थाने से ।

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : हाँ... (मंच के एक कोने में जाकर फोन लगाता है। वहीं दूसरी ओर बड़ाबाज़ार पुलीस थाने में अशोक रॉय सो रहा है। फोन की घंटी बजने से अशोक रॉय फोन नींद में ही फोन उठाता है।)

अशोक रॉय : हल्लो... बड़ाबाज़ार पुलीस स्टेशन...मे आई हेल्प यु ?

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : मैं पुरुलिया जेल का सहायक सुप्रिन्टेन्डेन्ट बोल रहा हूँ।

अशोक रॉय : हाँ... बोलिए सुप्रिन्टेन्डेन्ट साब।

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : क्या मैं इनस्पेक्टर अशोक रॉय से बात कर सकता हूँ ?

अशोक रॉय : हाँ... जी... बोल रहा हूँ।

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : इन्सपेक्टर अशोक रॉय, कल शाम आप के थाने से एक आरोपी लाया गया था। बूधन सबर।

अशोक रॉय : हाँ... हाँ... तो...?

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : आपकी जानकारी के लिए अब वो इस दुनिया में नहीं रहा! मर गया !

(ये सुनते ही अशोक रॉय की नींद उड़ जाती है।)

अशोक रॉय : (थोड़ा घबराकर) क्या बात कर रहे हो... सुप्रिन्टेन्डेन्ट साब...?

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : जी... हाँ... शायद ज्यादा यातना की वज़ह से उसकी मौत हुई है। बूधन सबर पर हुई यातना आपकी हिरासत में भी हो सकती है और हमारी जेल में भी। सिक्के के दो पहलू की तरह हम लोग बराबर फँसे हुए हैं। अब सोचना ये है कि इस मुसीबत से छूटने के लिए किया क्या जाए।

अशोक रॉय : (बेफिक्री से) अरे... करना क्या है ? वही जो हमेशा से करते आए हैं। खुदखुशी।

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : खुदखुशी... (दोनों का अट्टहास। सुप्रिन्टेन्डेन्ट फोन रखता है। बूधन की लाश के पास आकर खड़ा रहता है।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : (संत्री को हुक्म देते हुए) तुम... जल्दी जाकर बाज़ार से एक गमछा ले आओ।

(संत्री जाकर गमछा ले आता है। इस बीच दूसरे साथी बूधन की लाश को खड़ा करते हैं। सुप्रिन्टेन्डेन्ट गमछा बूधन के गले में डालकर ऊपर किसी चीज से बाँध देता है। इस तरह बूधन की हत्या को आत्महत्या का रूप दिया जाता है।)

अब कोई भी नहीं कह सकता कि इसकी मौत... इसकी लाश को नीचे उतारो और इसके घर पहोंचा दो।

(बूधन की लाश नीचे उतारी जाती है और उसके घर पहोंचाई जाती है।)

(दृश्य ९)

(बूधन की लाश पड़ी है। श्यामली दौड़ती हुई आती है। बूधन की लाश को देख उसके पैरों तले जमीन सरक जाती है। थोड़ी देर के लिए वो मूर्त सी बन जाती है। उसे विश्वास नहीं होता कि उसके सामने बूधन की लाश पड़ी है।)

श्यामली : बू...ध...न... बू...ध...न... क्या हुआ बूधन ? तुम कुछ बोलते क्युं नहीं ? बूधन... देखो...देखो मैं श्यामली...तुम्हारी श्यामली... मुझे देखो

बूधन... मुझसे बात करो बूधन... बूधन, तुम चुप क्युं हो बूधन...? तुम कुछ बोलते क्युं नहीं ? उठो बूधन उठो... तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते...

(बूधन की कोई प्रतिक्रिया न देख श्यामली का दिल घबराने लगता है । वो विलाप करती है।)

बू... ध... न... बूधन तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते। अरे... कोई मेरे बूधन को उठाओ रे... अरे... इसे कोई जगाओ रे... बूधन... बूधन... मुझे अपने साथ ले चलो... मैं... मैं न कहती थी बूधन कि वो लोग तुम्हें मार डालेंगे... अरे... मार... डाला रे... मेरे बूधन को मार डाला...

(श्यामली जोर-जोर से चीखती है। बार-बार अपने हाथों से अपनी छाती को पीटती है। वो पागलों की तरह, बावरी बनकर बूधन की लाश पर गिरकर रोती है। इसी बीच अशोक रॉय और सहायक सुप्रिन्टेन्डेन्ट उसके घर आते हैं।)

सुप्रिन्टेन्डेन्ट : ए... लड़की... तेरे पति ने जेल में गले में गमछा लगाकर आत्महत्या की है।

अशोक रॉय : इसकी लाश को जल्दी से जल्दी जला दो... और वो भी हमारे सामने। और ये रोना-धोना बंद करो। जल्दी से जल्दी इसके क्रियाकर्म का इंतज़ाम करो। समझी ?

(ये कहकर अशोक रॉय और सहायक सुप्रिन्टेन्डेन्ट चले जाते हैं। उनको जाते देख श्यामली मानो पागल सी हो जाती है। वो चिल्ला-चिल्लाकर उन पर अपने दिल की हाय निकालती है।)

श्यामली : गमछा ?... बूधन... तेरे पास तो कोई गमछा था ही नहीं तो फिर...? अरे... सत्यानाश हो जाए तुम लोगों का... तुम्हारी बीवियाँ बेवा हो जाएँ... तुम्हारे बच्चे यतीम हो जाएँ... अरे... कीड़े पड़के मरोगे तुम लोग... (उन्हें आवाज़ लगाते हुए) अरे... हरामी लोग... आओ... आओ... मेरा सुहाग छीननेवालों आओ...

(श्यामली चिल्लाते-चिल्लाते जैसे टूट जाती है। बूधन की लाश के पास जाकर)

बूधन... इन्हीं लोगों ने तुम्हें मारा है न... मैं... मार डालूँगी इन हरामियों को... बूधन...

(श्यामली बूधन की लाश पर सिर रखकर रो रही है। इसी दौरान एक आदमी महाश्वेता देवी का संदेश लेकर आता है।)

आशीष : (रोती हुई श्यामली से) श्यामली, अम्मा ने संदेश भिजवाया है कि बूधन की लाश को किसी भी कीमत पर जलाया न जाए। किसी को पता न चले ऐसी जगह पर बूधन की लाश को दफना दो और पुलीस को धोखा देने के लिए बूधन का पुतला जला दो। ठीक है ? समझ गयीं ? और तुम बिलकुल फिक्र मत करना। हम सब समिती और गाँव के लोग अम्मा के साथ मिलकर उन ज़ालिमों से बूधन की मौत का बदला लेकर रहेंगे।

(आशीष यह संदेश देकर चला जाता है। उसके जाने के बाद श्यामली धीरे-धीरे उठती है। नेपथ्य से 'बूधन... बूधन' की लयात्मक आवाज़ गूँज रही है। वो अपने ही घर में जमीन खोदकर, दिल पर पत्थर रखकर बूधन की लाश को दफना देती है और वहीं उसकी कब्र पर बावरी बनकर पड़ी रहती है। दूसरी ओर बूधन की मौत का न्याय दिलवाने के लिए जबरदस्त आंदोलन छिड़ गया है। एक आंदोलनकारी समूह न्याय के लिए नारे लगाता है।)

सभी : बूधन ने आत्महत्या नहीं की थी, उसकी हत्या की गयी है।

सभी : बूधन का फिर से पोस्ट्मार्टम करवाओ।

सभी : पुलीस ने बूधन की हत्या की है।

सभी : बूधन निर्दोष था ।

सभी : हमें इंसाफ चाहिए, इंसाफ चाहिए ।

(सभी गोल चक्कर में घूमते हुए नारे लगाते हैं।)

सभी : हमें इंसाफ चाहिए।

पात्र-३ : बूधन हत्याकांड की जाँच की जाए। हमें चाहिए...

सभी : इंसाफ ।

पात्र-३ : बूधन के कातिलों को गिरफ्तार करो। हमें चाहिए...

सभी : इंसाफ।

पात्र-५ : सबरों पर अत्याचार बंद करो... हमें चाहिए...

सभी : इंसाफ। हमें इंसाफ चाहिए, इंसाफ चाहिए।

(नारे लगाते हुए सभी एक कतार में खड़े हो जाते हैं। फिर सभी अपना-अपना संवाद कहकर अदालत का दृश्य बनाते हैं।)

पात्र-३ : लोगों की आवाज़ पहोंची...

पात्र-४ : न्यायतंत्र जागा...

पात्र-५ : आखिर वो दिन आ गया...

पात्र-६ : न्याय का दिन...

पात्र-७ : दिनांक २१ फरवरी १९९८ । कोलकाता हाई कोर्ट ।

जज : ऑर्डर...ऑर्डर। अदालत ने बूधन हत्याकांड केस के सिलसिले में श्रीमती महाश्वेता देवी, एडवोकेट प्रदीप रॉय और जस्टिस डी. के. बसु की अपीलें सुनी। दूसरी पोस्टमॉर्टम और सी.एफ. एस. एल. (फॉरेन्सिक) रपट से ये साबित होता है कि बूधन सबर ने आत्महत्या नहीं की थी। उसकी हत्या की गयी थी। अदालत इस हत्याकांड में शामिल सभी पुलीस कर्मचारियों को निलम्बित करने का आदेश देती है। ये अदालत सरकार को बूधन सबर की बेवा श्यामली सबर को एक लाख रुपए बतौर मुआवज़ा देने का हुक्म करती है तथा बूधन सबर हत्याकांड केस की गहन छानबीन के लिए ये केस सी.बी.आई. को सौंपती है।

(इस अन्तिम फैसले के बाद सभी पात्र निश्चल खड़े हो जाते हैं। बूधन अपनी आत्मा के रूप में मंच पर प्रवेश करता है। बूधन की आत्मा दर्शकों को संबोधित करती है।)

बूधन : आखिर... आखिर कोई तो बताओ कि मेरा गुनाह क्या था ? मुझे क्युं मारा गया ? मैं तो... सिर्फ पान खा रहा था। क्या हमारे लिए पान खाना भी... मेरी बीवी बेवा हो गई... मेरे बच्चे यतीम हो गये... अब... मेरे बाद उनका क्या ? क्या... क्या मेरा गुनाह सिर्फ इतना था कि मैं... मैं एक सबर था। एक डी.एन.टी. ?

(सभी पात्र अपना-अपना संवाद कहकर एक अर्धचंद्राकार दृश्य बनाते हैं।)

पात्र-२ : यही सवाल। यही सवाल आज हर डी.एन.टी. का है। आखिर उन पर ये अत्याचार क्युं ?

पात्र-५ : डी.एन.टी. कोई छोटा गुनाह करता है तो क्या उसकी सज़ा मौत हो ?

पात्र-४ : डी.एन.टी. में से कोई भणसाली पैदा नहीं हुआ।

पात्र-३ : डी.एन.टी. में से कोई हर्षद मेहता पैदा नहीं हुआ।

पात्र-६ : किसी डी.एन.टी. ने चारा कांड नहीं किया।

पात्र-७ : किसी डी.एन.टी. ने बोफोर्स कांड नहीं किया।

पात्र-१ : क्या हम दोयम दर्जे के नागरिक हैं ?

सभी : क्या हम दोयम दर्जे के नागरिक हैं ?

क्या हम दोयम दर्जे के नागरिक हैं ?

क्या हम दोयम दर्जे के नागरिक हैं ?

(सभी पात्र दोनों हाथों को उठाकर मानव श्रृंखला बनाते हैं।)

सभी : हमें चाहिए आत्मसम्मान।

हमें चाहिए आत्मसम्मान।

हमें चाहिए आत्मसम्मान।

v v v
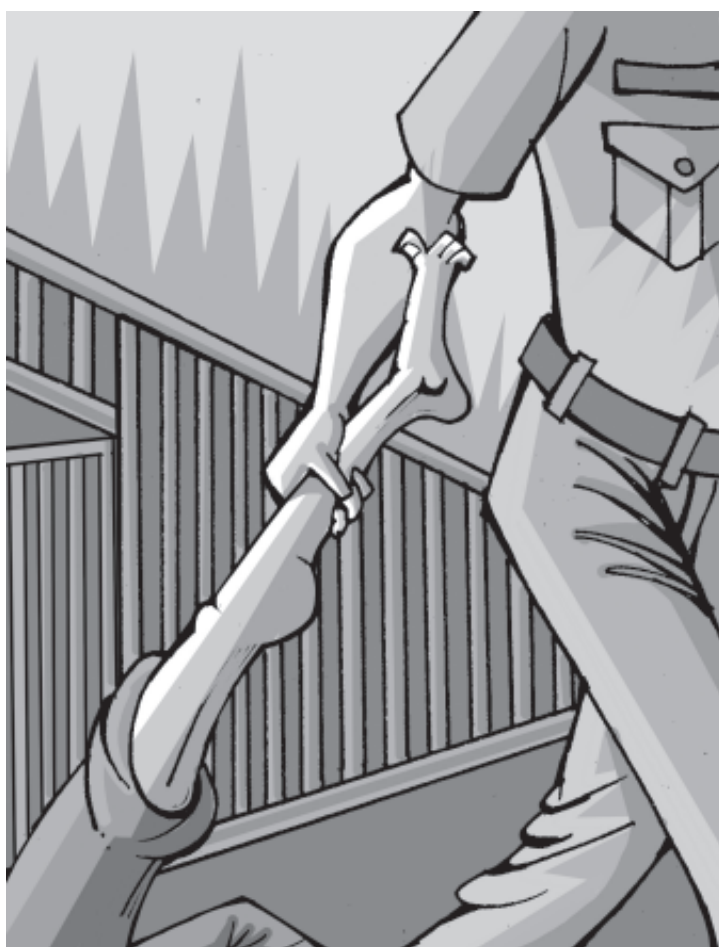
एन्काउन्टर

घुमन्तु जनजातियों पर पुलीस द्वारा हो रहे अत्याचारों को अभिनित करना 'बूधन थीयेटर' के कलाकारों के लिए सामाजिक और राजकीय कटिबद्धता बन गयी है ।

दीपक पवार एक पारधी था जो महाराष्ट्र के सोलापुर जिले में भीख माँगकर अपना गुजारा करता था। पुलीस ने उसे मुखबिर बनने पर मजबूर किया पर जब उसने उनकी नाजायज बात न मानने का फैसला किया तो उसका एन्काउन्टर कर दिया गया।

'एन्काउन्टर' दीपक पवार और उसके जैसे अनेक घुमन्तु जनजाति के लोग जो रोजाना ऐसी ही मौत मरते हैं, उनकी वास्तविक कहानी है । 'एन्काउन्टर' का पहला मंचन भोपाल के 'इन्दीरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय' में हुआ जहाँ पहली बार घुमन्तु जनजातियों की स्थिति पर गहन चर्चा का आयोजन किया गया था । इस मंचन की खासियत ये थी कि इस नाटक को देखने के लिए काफी सारे पुलीस अफसर भी आए थे । भोपाल में आयोजित इस विमर्श गोष्ठी ने घुमन्तु जनजातियों के मानव अधिकारों के आंदोलन को एक नई दिशा दी।

•

पात्र

तनुजा । दीपक । मुन्ना । आदमी १, २, ३

इन्सपेक्टर । हवलदार पांडे ।

हवलदार २, ३ । बस्तीवाला १, २, ३, ४

(दृश्य १)

(फुटपाथ का दृश्य है। दीपक लूला-लंगड़ा बनकर सड़क पर पड़ा है। उसका बच्चा सड़क के पासवाली फुटपाथ पर कबूतरों के लिए डाले हुऐ दानों को चुन-चुनकर खा रहा है। उसकी बीवी तनुजा गला फाड़-फाड़कर रास्ते से आने-जानेवालों और बस स्टेन्ड पर खड़े लोगों से भीख माँग रही है।)

तनुजा : (एक राहगीर से भीख माँगते हुए) ओ... ओ... भाईसाब, अल्लाह के नाम कुछ दे दो बाबा, भगवान के नाम कुछ दे दो बाबा, भगवान आपका भला करेगा। अरे... कुछ दे दो भाई। अरे... साब, दे दो साब। तीन दिन से खाना नहीं खाया, कुछ दे दो साब।

(राहगीर जेब से अठन्नी निकालता है और दीपक के आगे फेंक चल देता है।)

तनुजा : भगवान आपका भला करेगा साब, भगवान आपका भला करेगा। भूखे की दुआ लगेगी साब।

दीपक : (धीरे से तनुजा से पूछता है) ए... तनु... कित्ता बसता ? (कितना बजा ?)

तनुजा : (वहीं बैठे-बैठे सामने टावर को देखकर) एक... दो... तीन, चार पाँच, छे... ऐ... इरक्या (तनुजा दीपक को प्यार से इरक्या कहती है) वो सामने टावरवाली घड़ी में छोटावाला काँटा है न वो छे पर है और बड़ा वाला...

दीपक : (निराश होते हुए) हैं ? अब्बी छेइज बसता?(अभी छे ही बजा है!)

तनुजा : हाँ... हाँ... में... अब्बी ज आली। (मैं अभी आ रही हूँ।)

(तनुजा दीपक के पास से उठती है और बस स्टेन्ड पर खड़े एक आदमी से भीख माँगती है। वो आदमी सिगरेट पी रहा है और साथ ही साथ पान भी चबा रहा है।)

तनुजा : (अत्यंत दयनीय भाव से) ए... साब ! कुछ दे दो साब, तीन दिन से खाना नहीं खाया, साब। (हाथ से दीपक की ओर इशारा करते हुए) मेरे

पति को लकवा मार गया है साब, भूखे का पेट भर दो, साब...भगवान आपका भला करेगा ।

आदमी १ : (तनुजा की ओर नशीली आँखों से देखते हुए) दिखने में तो बहोत अच्छी लगती है, इस लूले-लंगड़े के साथ क्या कर रही है ? चल... मेरे साथ, चलती क्या ? बहोत पैसा दिलाऊँगा ।

तनुजा : (अपना असल स्वभाव दिखाते हुए) ए... श्याने, ज्यासती भंकसबाजी नई करने का। एक चप्पल मारेंगी...

आदमी १ : (अपनी बेईज्जती होते देख बात बदलते हुए) ठीक है... ठीक है... मैं पूछता हूँ कि तुम लोगों को भगवान ने हाथ-पैर किस लिए दिए हैं? मेहनत करने के वास्ते तो दिए हैं... तो मेहनत...

तनुजा : ज्यासती भासनबाजी नहीं करने का। नहीं तो फोड़ डालेगी साले को। चल वट यहां से, भाषणबाजी करता है साला...।

आदमी १ : (तनुजा को दुत्कारते हुए) चल हट, भिखारिन कहीं की। (अपने रास्ते चल पड़ता है)

तनुजा : (किसी अन्य राहगीर से) साब, कुछ दे दो साब, पेट में आग लगी है। मेरा बच्चा भूख से मर जायेगा साब। गरीब का पेट भरोगे तो भगवान आप को लखपति बनाएगा, साब । गरीब पर दया करो साब। (वो आदमी तनुजा को अनसुना करता है। अपनी दाल न गलते देख, तनुजा अपने बच्चे को, जो अब भी फुटपाथ पर पड़े दाने चुन-चुनकर खा रहा है, बुलाती है।)

तनुजा : ए... मुन्ना इकडे आ... इकडे आ... (बच्चा तनुजा के पास आता है। तनुजा इशारे से उसे पास खड़े आदमी से भीख माँगने के लिए कहती है। उसका बच्चा आदमी के पैर पकड़ लेता है।)

मुन्ना : साब... कुछ दे दो साब... तीन दिन से खाना नहीं खाया, साब कुछ दे दो साब, बोत भूख लगी है।

आदमी २ : (बच्चे को लात मारकर दूर करते हुए) अबे... ए... पैर छोड़,

छोड़ मेरा पैर... चल... चल... भाग यहाँ से।

मुन्ना : (गुस्से से) भीख नहीं देनी है तो मत दे, लात काई को मारता है?

तनुजा : (बात बिगड़ते देख बच्चे को पीठ पर मारकर वापस भेजती है) ऐ... पोरया, गपबेस... चल... चल... जा यहाँ से । (तनुजा उस सिरफिरे आदमी को छोड़ बस स्टेन्ड पर खड़े अन्य व्यक्ति से भीख माँगने लगती है।)

तनुजा : साब... ओ बड़े साब, भगवान आपको अच्छी नौकरी देगा। भूखे को कुछ दे दो बाबा, तीन दिन से खाना नहीं खाया। कुछ दे दो, गरीब की दुआ लगेगी ।

(बस स्टेन्ड पर खड़ा आदमी पेपर पढ़ने में व्यस्त है । वो अपनी ऊपरवाली जेब से अठन्नी निकालकर तनुजा के हाथ में देता है। अठन्नी देखकर) ओ बड़े साब, आज के इस महँगाई के जमाने में इस अठन्नी से क्या होता है ? कुछ रुपिया... दो रुपिया... पाँच रुपिया... दे दो ।

आदमी ३ : ए... दिया ना... चल जा यहाँ से। (बस का बेसब्री भरा इन्तजार खत्म होता है) ऐ... बस... आली... रे... बस... आली... (बस रुकती नहीं है। बस स्टेन्ड पर खड़े सभी पैसेन्जर बस पकड़ने के लिए बस के पीछे दौड़ते हुए मंच से बाहर चले जाते हैं।)

(तनुजा, दीपक जहाँ लूला-लंगड़ा बनकर पड़ा है, वहाँ आती हैं।)

तनुजा : चल रे इरक्या.. आठ बाजनार है। (आठ बजने वाले हैं।)

दीपक : (लूले-लंगड़े की अवस्था से उठकर अपने अकड़े हुए बदन को सीधा करते हुए।) अरे... देवा... रे... देवा... आज तो अपन का बहोत बदन दुखरेला है। देवा.... हो... देवा ! (वो जिस चद्दर पर लेटा हुआ था उस चद्दर को उठाकर अपने कंधे पर रखता है। तनुजा भीख में मिले पैसे इकट्ठा करती है।) ए... तनु ! कितना मिला आज ?

तनुजा : (पैसे दीपक को देते हुए) कहाँ कुछीज? ले तू गिन। (बच्चे से, जो अब भी फुटपाथ पर पड़े दाने चुन-चुनकर खा रहा है।) ए... पोरया चल

उठ। घर जाने का है। (बच्चा दोनों के साथ चल देता है।)

दीपक : (पैसे गिनकर निराश होते हुए) बस ? पांचीज रुपिया?

तनुजा : पांचीज रुपया ? देवा... रे... देवा... आक्खा दिन गला फाड़ा तो मिला कितना, पांचीज रुपिया !

दीपक : लगता है लोगों की हालत भी अपन जैसी हो गयी है। माँ-बाप ने भीख माँगकर आक्खा जिंदगी निकाला और वईज धंधा मेरे को भी सिखाया। भीख माँगने के सिवा अपन लोगों को आताईज क्या है ? (निराश हो जाता है।)

तनुजा : ए... इरक्या... वो धोलकर की बीबी है न, कित्ते अच्छे-अच्छे कपड़े पेन्ती है। नहीं ? ये धोलकर क्या करता है ?

दीपक : धोलकर ? अरे, धोलकर और क्या करेगा ? कच्ची शराब की भट्टी निकालता है। और क्या ?

तनुजा : (कुछ सोचने के बाद) इरक्या... क्या वो धंधा हम नहीं कर सकते?

(दीपक तनुजा की ओर देखता है और कुछ भी बोले बिना तीनों अपने घर की ओर चल देते हैं।)

नेपथ्य से कोरस : गरीबी गरीबों से क्या-क्या कराए,

न चाहते इंसा से भूख क्या न कराये!

(दृश्य २)

(रेल्वे फ़ाटक के पासवाली बस्ती में दीपक की झुग्गी। दीपक अपने घर में एक जगह बैठा बीड़ी पी रहा है। तनुजा खाना भी बना रही है और साथ ही दारू की भट्टी भी चला रही है। तनुजा दोनों काम एक साथ सँभालने से परेशान सी है। मुन्ना दौड़ते हुए आता है और अपनी माँ से खाना माँगता है।)

मुन्ना : माई... माई... रोटी दो ना... बोत भूख लगी है । माई, रोटी दो ना।

मा...ई रोटी दो ना। (रोने लगता है) बोत भूख लगी है... मा... ई।

(काम में व्यस्त और परेशान तनुजा मुन्ने को धक्का देकर दूर कर देती है। मुन्ना रोते हुए दीपक के पास जाता है।)

दीपक : (बच्चे को चुप करते हुए, बड़े प्यार से) अर... र... र... मेरा मुन्ना क्युं रोता है? किसने मारा मेरे मुन्ने को ?

मुन्ना : (माँ की शिकायत करते हुए) मा...ई... ने मारा। खाना नहीं देती है। बोत भूख लगी है... बाबा... रोटी दो।

तनुजा : (परेशान सी) देती... हूँ... देती... हूँ। दो मिनीट नहीं खाएगा तो मर नहीं जाएगा। और भगवान ने मुझे दो ही हाथ दिए हैं, चार हाथ थोड़े ही दीए हैं। एक तरफ भट्टी निकालो, दूसरी ओर रोटी बनाओ और तेरे बच्चे को भी सँभालो। (किस्मत को कोसते हुए) हाय... मैं तो तंग आ गयी हूँ इस ज़िंदगी से।

(खाना कच्चा-पक्का जैसा भी बना है तनुजा उसे हंडी में से निकालती है और एक कटोरी में डालकर मुन्ना को देती है।)

तनुजा : (खाना देते हुए) ले... खा... मर।

(मुन्ना रोना बंद करता है और खाना लेकर एक कोने में बैठ जाता है।)

तनुजा : (दीपक को बीड़ी पीते देख चिड़चिड़ाती है) और, और तू ये आक्खा दिन बीड़ी... बीड़ी... बीड़ी... (दीपक के मुँह से जलती हुई बीड़ी निकालकर फेंकती है।) अरे... जब भीख माँगता था न तब बीड़ी के वास्ते एक पैसा नहीं रहता था तेरे पास। और अब आक्खा दिन में दस रुपिये की बीड़ी पी जाता है।

दीपक : (तनुजा की इस डाँट को अनसुना कर) हाँ... हाँ... ठीक है... ठीक है। चल अब ये तेरी बकवास बंद कर... और ला... एक और पव्वा।

तनुजा : देवा रे देवा... आक्खा दिन में जितनी दारू निकालती हूँ उसमें से आधी तो तुइज पी जाता है। तो फिर बेचूँ क्या और खिलाऊँ क्या ?

दीपक : (गुस्से से) ए... तू... गपबस... तू देती है की नहीं ?

तनुजा : (जैसे अपने पति से हार गई हो) देती हूँ... देती हूँ... (तनुजा दारू से भरे टिन में से एक ग्लास में दारू निकालती है और दीपक को लाकर देती है) ले... पी... मर।

(दीपक ग्लास लेकर दारू पीता है और तनुजा भट्ठी की ओर जाती है। वहीं नेपथ्य से किसी के चिल्लाने की आवाज़ आती है।)

नेपथ्य ७ बस्तीवालों की आवाज़ : ए... ए... भागो... भागो... चिवड (पुलीस).... आला रे.......... । (ये सुनकर दीपक और तनुजा भट्ठी का सामान लेकर जैसे ही भागने जाते हैं, पुलीस अंदर आती है और दोनों को भट्ठी समेत पकड़ लेती है। थोड़ी देर बाद इन्सपेक्टर अंदर आता है।)

इन्सपेक्टर : (सिगरेट सुलगाते हुए हवलदार पांडे से) काये रे पांडे... कुछ मिला क्या ? (तीन हवलदार में से पांडे ने दीपक की पतलून पीछे से पकड़ी हुई है। एक ने तनुजा का हाथ पकड़ा हुआ है और तीसरा दीपक के पास खड़ा हुआ है।)

पांडे : हाँ साहब। माल मुद्दे के साथ पकड़ेला है।

इन्सपेक्टर : अच्छा । (जलती भट्ठी की ओर देखते हुए) ओ... हो... हाथ भट्ठी ची दारू। (दीपक से) क्युं रे... तेरा नाम क्या है ?

दीपक : (घभराते हुए) दी... दीपक, साब...

इन्सपेक्टर : ए... भाड्या। जात क्या है तेरी ?

दीपक : (घबरा जाता है) प... पवार साब । (दीपक के पवार बोलते ही पीछे खड़ा पांडे, दीपक को सर पर मारता है।)

पांडे : अबे... ए... तू तो पारधी था, पवार कब से बन गया ?

दीपक : (अपना झूठ खुल जाने से बहोत घबरा जाता है) वो... वो... क्या है न साब... वो... बस्ती में रहने के वासते जात बदलना पड़ा साब । (अत्यंत

दयनीय भाव से) क्या करें माई-बाप ? यहाँ रहने के वास्ते करना पड़ा।

पांडे : अरे पारधी, जात बदलने से तेरा गंदा खून थोड़े ही बदल जाएगा ? और तू तो भीख माँगने का धंधा करता था न फिर ये कच्ची शराब का धंधा कब से शुरू किया ?

दीपक : आजीज से किया माई-बाप ।

इन्सपेक्टर : आज ही से... (दीपक के पैरों पर डंडा मारता है) इज़ाजत ली थी ? किसकी इज़ाजत ली थी ?(पांडे से) पांडे, चल केस बना इसका। ले चलो इस साले को थाने।

(थाने का नाम सुनते ही दीपक और तनुजा दोनों घबरा जाते हैं ।)

तनुजा : (इन्सपेक्टर के पैरों पर अपना सर रखकर, गिड़गिड़ाते हुए) दया करो माई-बाप, दया करो। हम भूखे मर रहे थे, खाने को कुचीज नहीं था इसीलिए पेट के वास्ते...दया करो, साहेब। मेरे बच्चे के मुँह से निवाला मत छीनो, मेरा बच्चा भूखा मर जाऐगा, माई-बाप दया करो ।

इन्सपेक्टर : देख पारधिन, तेरे बच्चे के मुँह में निवाला जाए या न जाए, पहला निवाला हमारे मुँह में जाना चाहिए । (दीपक की और देखते हुए) समझा ? (दीपक को कुछ समझ नहीं आता और वो 'ना' में सर हिलाता है।)

इन्सपेक्टर : पांडे, समझा साले को। दिमाग खराब करता है साला !

पांडे : (दीपक को दो-तीन तमाचे मारता है) समझता नहीं है ? समझता नहीं? अरे साब खर्चे-पानी की बात कर रहे हैं।

दीपक : (असमंजस में) कित्ता देना पड़ेगा ?

पांडे : पचास रुपए।

(पचास रुपए सुनते ही दीपक और तनुजा दोनों के जैसे होश उड़ जाते हैं।)

दीपक : (तनुजा की ओर देखते हुए) पचास रुपिया ? इत्ता सारा ?

इन्सपेक्टर : (अपनी दाल न गलते देख) ए... पांडे, चल केस बना, केस बना साले का। ले चलो थाने साले को।

तनुजा : दया करो साहब... दया करो। पेरी पड़ा माई-बाप (तनुजा इन्सपेक्टर के पैर पकड़ लेती है।)

पांडे : (तनुजा को बाल से पकड़कर उठाते हुए) ए... साब के पैर छोड़। तू पैसा देती है कि नहीं ?

तनुजा : देते हैं साहेब... देते हैं ।

(तनुजा अपनी साड़ी के पल्लु में से रुपए निकालकर देती है। पांडे रुपए लेता है। रुपए लेने के बाद)

इन्सपेक्टर : हाँ... ठीक है... ठीक है। आज तो छोड़ देता हूँ, लेकिन कल से अपने को ये सब धंधा बंद माँगता है। समझा?(पांडे से) पांडे, इकड़े आ।

(पांडे इन्सपेक्टर के नज़दीक जाता है। इन्सपेक्टर उसके कान में कुछ कहता है। इन्सपेक्टर फिर बाकी के हवलदारों के साथ चला जाता है।)

पांडे : ए दीपक, इकड़े आ ।

दीपक : आया साब।

पांडे : तुझे मालुम है कि साब तेरे बारे में क्या बोले?

(दीपक 'ना' में सर हिलाता है।)

पांडे : तुझे ये धंधा करना है ?

दीपक : हाँ साब, धंधा तो करने का है।

पांडे : तो तुझे साब का एक काम करना पड़ेगा, बोल करेगा ?

दीपक : हाँ साब, करेगा । पेट के वास्ते अपन कुछ भी करेगा।

पांडे : हाँ। तो देख, तेरी बस्ती में चोरी चकारी करने वाले बहोत लोग रहते हैं। तू एक काम कर, तू उनकी मुखबरी कर।

दीपक : (मुखबरी का नाम सुनते ही) अरे... ये क्या बात करते हो साब? जरा धीरे से बोलो। कोई सुन लेगा तो मुझे जान से मार डालेंगे साब।

पांडे : धंधा करना है ?

दीपक : (न चाहते हुए कहता है) हाँ।

पांडे : (तनुजा को देखकर) तो मुखबरी करनी पड़ेगी ।

पांडे : ए... तू यहाँ क्या कर रेली है? चल एक पव्वा ला, चल जल्दी कर। और सुन, पहली धार की लाना... कड़क।

(तनुजा दारू लेने जाती है।)

पांडे : (दीपक से) देख, तू चिंता मत कर। तुझे कोई कुछ नहीं करेगा। पुलीस को मारना और मुखबिर को मारना एक ही बात है। तू एक-दो अच्छी खबर ला जिस में साब को भी कुछ माल मिले। फिर मैं तुझे पुलीस डिपार्टमेन्ट से मुखबिर का कार्ड दिलवा दूँगा । फिर तो तू बिंदास धंधा करना। (तनुजा दारू लेकर आती है। पांडे दारू पीकर) अ... हा... दारू तेज बनाता है। ठीक है... ठीक है, चल मे चलता, लेकिन याद रहे धंधा करना है तो मुखबरी करनी पड़ेगी। रोज़ का एक खबर मंगताइज।

(पांडे चला जाता है। पांडे के जाने के बाद तनुजा अपनी किस्मत को कोसती है।)

तनुजा : हाय रे किस्मत ! दो दिन की कमाई एकीज झटके में चली गई । अरे... सत्यानाश हो जाए इन लोगों का। मुझ गरीब की हाय पड़ेगी इन्हें । मेरे बच्चे की हाय पड़ेगी। रेड डालने के वास्ते मेराइज घर मिला था? क्या और लोगों के घर जल गए थे ?

दीपक : तन्नु बस... गपबस ? कोई सुनेगा तो यहाँ से भी भगा देंगे। इस में कोई क्या कर सकता है? अपन लोगों का नसीबज ऐसा है।

(दृश्य ३)

(रात का समय है। दीपक और तनुजा दोनों बैठे बात कर रहे हैं। दोनों के बीच मुन्ना सो रहा है।)

दीपक : देख तन्नु, अपन का ज़िंदगी तो जैसे-तैसे कट गया, लेकिन अपन को मुन्ने का लाइफ सेटल करने का है।

तनुजा : ए... इरक्या। अपन मुन्ना को शाला में डालें तो ये थानेदार बन जायेगा। नहीं ?

दीपक : अरे पगली ! थानेदार बनने के लिए तो बोत पढ़ाई-लिखाई करनी पड़ती है।

(अचानक दरवाजे पर जोर की दस्तक की आवाज़ होती है। बस्तीवाले बाहर जोर-जोर से चिल्ला रहे हैं ।)

बस्तीवाला १ : ए... दीपक । दरवाजा खोल, दरवाजा खोल, नहीं तो साले सारे घर को आग लगा देंगे।

(दीपक और तनुजा इस हमले से बेहद घबरा जाते हैं, मुन्ना भी डर के मारे रोने लगता है।)

बस्तीवाला २ : ए... दीपक... ओ भिखारी दरवाजा खोल । दरवाजा खोल साले। कहाँ घुस गया है ? अपनी बीवी के घघरी में घुस गया है क्या ? दरवाजा खोल, ए भड़वे ।

(दीपक धीरे-धीरे, डरते-डरते दरवाजा खोलने के लिए आगे बढ़ता है।)

बस्तीवाला ३ : दरवाजा खोल ! नहीं तो साले तुझे तेरी बीवी-बच्चे समेत जिंदा जला देंगे। दरवाजा खोल...

(दीपक दरवाजा खोलता है । दरवाजा खोलते ही सभी बस्तीवाले दीपक और तनुजा पर टूट पड़ते हैं । तीनों बस्तीवाले दीपक को घेरकर खड़े हो जाते हैं और तनुजा को धक्का मारकर एक कोने में धकेल देते हैं। मुन्ना रोते हुए एक

कोने में छुप जाता है।)

दीपक : (घबराकर) अरे... म...ग...मा...मा...

बस्तीवाला १ : मामा के बच्चे ! साला हमारी मुखबरी कर के हमारी नींदें हराम कर के खुद चैन की नींद सो रहा है।

बस्तीवाला २ : अरे... मामा... मुझे तो अभी-अभी पता चला कि ये साला पवार नहीं, पारधी है।

बस्तीवाला १ : पारधी है ? तू पारधी है ? (दीपक को एक जोरदार घूसा मारते हुए) अरे, ये पारधी है तो हमारी बस्ती में क्या कर रहा है ? (दीपक को एक और घूंसा मारते हुए) तू हमारी बस्ती में क्या कर रहा है ?

बस्तीवाला ३ : अबे जात बदलने से तेरा गंदा खून थोड़े ही बदल जायेगा।

बस्तीवाला १ : और साले पारधी, हम तो ये चोरी-चकारी का धंधा करते हैं हमारी मजबूरी से। पर तुम लोग, तुम लोग तो सालों माँ के पेट से ही चोर पैदा होते हो। साले, तेरी मुखबरी की वज़ह से हमारे चार आदमी जेल में सड़ रहे हैं।

बस्तीवाला ४ : मारो साले को । और इतना मारो कि साला ज़िंदगीभर मुखबरी करना भूल जाये। (सब बस्तीवाले दीपक और तनुजा पर जानवरों की तरह टूट पड़ते हैं। अपने माँ-बाप को इस तरह जानवरों की तरह पिटते देख मुन्ना अपने माँ-बाप को बस्तीवालों के हाथ और लकड़ियों की मार से बचाने की असफल कोशिश करता है।)

मुन्ना : मेरे बाबा को मत मारो... मेरे बाबा को मत मारो। छोड़ दो। छोड़ दो...

(एक बस्तीवाला बड़ी बेरहमी से मुन्ना को धक्का मारता है। मुन्ना उठकर अपनी माँ को बचाने जाता है।)

मेरी माँ को छोड़ दो... उसे मत मारो... छोड़ दो...

बस्तीवाला १ : (मार-मारकर दीपक को बेसुध करने के बाद) देख ए पारधी, आज के बाद अगर तूने हमारी मुखबरी की तो साले, तुझे तेरे बीवी-बच्चे समेत बस्ती के बीचों बीच जिंदा जला देंगे। समझा ? (अपने साथीदारों से) चलो भाइयों।

(बस्तीवालों के जाने के बाद दीपक और तनुजा दोनों धीरे-धीरे उठने की कोशिश करते हैं। मुन्ना उनकी मदद करता है। दीपक पागल सा हो जाता है।)

दीपक : ऐ... भगवान, क्या कुत्ते की माफिक ज़िंदगी दिया है तू अपुन को। धंधा करना है तो साला उन कुतरया लोगों के लिए मुखबरी करो। पेट के वास्ते मुखबरी किया तो साला ये बस्तीवाले... क्या कीड़े-मकौड़े जैसा ज़िंदगी दिया है रे तू अपुन को। ये भी साला कोई ज़िंदगी है ? इससे तो अच्छा भगवान मौत दे दे मुझे... मौत दे दे मुझे... (हताश दीपक गुस्से में अपना सर जमीन पर पटकता है।)

तनुजा : (दीपक को रोकते हुए) ऐसा मत बोल रे इरक्या, ऐसा मत बोल... ये दिन तो आने का हीज था। तू ही तो बोला था। अपन लोगों का किस्मत हीज ऐसा है। सब ठीक हो जाएगा। सब ठीक हो जाएगा।

(दृश्य ४)

(दीपक घर में भट्टी निकाल रहा है। तनुजा घर में झाडू लगा रही है। झाडू लगाते-लगाते वो दरवाजे की ओर जाती है। इतने में वहाँ इन्सपेक्टर अपने हवलदारों के साथ आता है।)

इन्सपेक्टर : (तनुजा को नशीली आँखों से देखते हुए, दीपक से) काए रे... इरक्या... कस्साला ? (कैसे हो इरक्या ?)

(तनुजा इन्सपेक्टर की नज़र भाँप जाती है और दूसरी ओर जाकर कुछ काम करने लगती है।)

दीपक : (इन्सपेक्टर को देख) अरे... आवा... न... साब... आवा... बैठो साब... बैठो... कुछ... ठंडा... गरम...

इन्सपेक्टर : (कटाक्ष में) वईज तो पीने को आया है। (पांडे से) पांडे !

पांडे : (दीपक से) ए... चल, साब के लिए एक तेज तरराट दारू की बोतल ले आ... पहेली धार वाली।

(एक बोतल सुनते ही दीपक का चहेरा फ़ीका पड़ जाता है।)

पांडे : (दीपक को खड़ा देख) ए... देखता क्या है ? चल जा... जल्दी... दारू लेकर आ ।

(दीपक दारू लेने जाता है। इन्सपेक्टर अपने साथियों के साथ टोली जमाकर बैठता है। इन्सपेक्टर की तनुजा पर लगी बुरी नज़र पांडे भाँप जाता है। पांडे अपने साब को खुश करने के लिए गाना गुनगुनाने लगता है।)

पांडे : अरे... दरोगाजी... चोरी हो गयी, दरोगाजी चोरी हो गयी...

सभी : दरोगाजी चोरी हो गयी... अरे... दरोगाजी चोरी हो गयी... (इन्सपेक्टर मन ही मन खुश होता है।)

(इस बीच दीपक तनुजा को दारू की बोतल इन्सपेक्टर को देने के लिए कहता है। तनुजा इन्सपेक्टर को दारू देने जाती है। इन्सपेक्टर तनुजा को फिर से घूरता है। तनुजा को देख सभी के गाने के अंदाज में और लचीलापन आ जाता है ।)

सभी : (तनुजा को देखते हुए) दरो.. गा.. जी.. चो..री... हो...गई...

(तनुजा दारू की बोतल रखकर चली जाती है। तनुजा के जाने के बाद पांडे इन्सपेक्टर को नाक पर उँगली रखकर कुछ इशारा करता है। इन्सपेक्टर पांडे को नज़दीक बुलाकर उसके कान में कुछ कहता है। थोड़ी देर बाद पांडे उठता है और दीपक को बुलाता है।)

पांडे : ए... दीपक... इकडे... आ ।

दीपक : हाँ... साब... बोलिये साब... क्या हुकुम है...?

पांडे : देख... तेरे को पता है साब तेरे बारे में क्या बोले ?

(दीपक 'ना' मे सर हिलाता है।)

पांडे : साब... बोले... आज से तेरे को ये बस्तीवालों की मुखबरी नहीं करने की।

(ये सुनकर दीपक तो मारे खुशी से पागल हो जाता है।)

दीपक : हे... हे... सच्ची ? साब सच्ची...?

पांडे : हाँ... और साब बोले... तू धंधा भी बिन्दास कर। हप्ता भी नहीं देना।

(दीपक खुशी के मारे फूला नहीं समाता है।)

दीपक : हे... क्या बात कर रहे हो साब ? सच्ची... सच्ची? (दीपक की आँखों में आँसू आ जाते हैं) साब आप बड़े दयालु हैं। आप हमारे माई-बाप हैं, साब।

पांडे : हाँ... लेकिन इसके बदले तुझे अपने साब का एक छोटा सा काम करना पड़ेगा। बोल करेगा ?

दीपक : (खुशी से पागल होते हुए) हाँ... हाँ... साब करेगा... अपन सब कुछ करेगा।

पांडे : तो फिर एक काम कर... आज रात को तेरी बीवी को पुलीस थाने भेजना। अकेली। साब को खुश करने के वास्ते ।

(ये सुनते ही दीपक की खुशी जैसे एक क्षण में हवा हो जाती है । बात जब इज्जत पर आती है तो वो आग बबुला हो जाता है।)

दीपक : देखो साब... मेरे... मेरे... बीवी के बारे में एसी-वैसी बात मत करो... वो... मेरी बीवी है, साब।

पांडे : अबे, वो... तेरी बीवी है तबीज तो तेरे को बोल रेला है।

दीपक : देखो... साब... आखिर... आखिर अपन की भी कोई इज्जत है।

पांडे : (इन्सपेक्टर से) अरे... साब... ये... ये पारधी तो इज्जत की बात कर रेला।

(अब तक इन्सपेक्टर दारू के नशे में धुत्त हो चुका है। दीपक को मना करते देख वो आग बबुला हो जाता है।)

इन्सपेक्टर : क्युं बे साले ? पारधी... पारधी होकर पुलीस के सामने इज्जत की बात करता है ? साले... तुम लोगों को हम पुलीसवालों के बलबूते पर तो रोटी मिलती है और इतनी छोटी सी बात के लिए हमें मना करता है। (घबराई हुई तनुजा को देख) और ए... भिखारिन... कान खोलकर सुन ले, आज से अपन को ये धंधा बंद मंगता। समझी ? चलो...

(पांडे भट्टी को लकड़ी मारकर गिरा देता है। अन्य लोग बाकी चीजें भी तोड़-फोड़ कर चले जाते हैं। दीपक की समझ में नहीं आता की वो क्या करे ।)

(दृश्य ५)

(दीपक अपने घर में बड़ी ही बेचैनी से इधर-उधर घूम रहा है। वो कभी बैठता है, कभी उठता है तो कभी चलता है। बार-बार बीड़ी को जोर-जोर से फूँकता है। इसी बीच तनुजा प्रवेश करती है।)

दीपक : (तनुजा को देख) कहाँ से आ रही है तू ?

तनुजा : (सब्ज़ी की थैली रखते हुए) सब्ज़ी मंडी से। और कहाँ से ?

दीपक : सब्ज़ी मंडी में इतनी देरी लगती है क्या ?

तनुजा : क्या ? तू कहना क्या चाहता है रे ?

दीपक : देख तनु, अपन तेरे को बोल देता है, आज के बाद तेरे को घर के बाहर जाने का नहीं! बस ।

तनुजा : क्युं ? घर से बहार क्युं न जाऊँ ? और अगर मैं घर से बाहर नहीं जायेगी तो ये सब्ज़ी तरकारी कौन लाएगा ? तू ?

दीपक : (शंका के भाव से बड़बड़ाते हुए) देख तनु, तू... तू... घर से बाहर... जाती है तो मेरे दोस्त लोग तेरे बारे में तरह-तरह की बातें करते हैं।

तनुजा : अ... हो... हो... मैं घर से बाहर जाती हूँ तो तेरे टपोरी यार दोस्त मेरे बारे में तरह-तरह की बातें करते हैं ? (सामने आते हुए) अरे, अगर वो मेरे बारे में ऐसी-वेसी बातें करते हैं तो तू उनका मुँह क्युं नही तोड़ देता है ?

दीपक : मुँह तोड़ दूँ ? मुँह तोड़ दूँ ? अरे, अपनी इतनी औकात है कि किसी का मुँह तोड़ दें ? और... और... तेरे बाप का राज है जो किसी का मुँह तोड़ दूँ ?

तनुजा : देख इरक्या, मेरे तक बात ठीक है लेकिन... लेकिन मेरे बाप का नाम मत लेना।

दीपक : एक बार नहीं, हज़ार बार लूँगा... और तू... क्या करेगी तू ? (तनुजा को तमाचा मारते हुए) क्या करेगी तू ? (दीपक तनुजा को पीटने लगता है।)

तनुजा : (गुस्से से) तू... तू मेरे को मारा? मेरे को मारा ? (कपड़ों की गठरी बाँधती है।) ठीक है... ठीक है... अब...

दीपक : (तनुजा को कपड़ों की गठरी बाँधते देख) क्या... क्या कर रही है तू ?

तनुजा : (गठरी बाँधते हुए) मे... मे जाती... मे अपने बाप के घर जाती । (गठरी बाँधकर चलने लगती है।)

दीपक: (बिलकुल बिदांस होते हुए) हाँ... हाँ... चली जा... चली जा... बोत देखी तेरे जैसी...

तनुजा : (तनुजा जाना नहीं चाहती है । वो चाहती है कि दीपक उसे रोक ले। धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए) देख... इरक्या... मे... मे... जाती... हाँ... मे सच्ची मे जाती।

दीपक : ऐ... तो जा ना । तू चली जाएगी तो अपन अकेला नहीं हो जाएगा। दूसरी को लाएगा। बोत है अपन के पास।

तनुजा : क्या... क्या बोला रे तू ? तू दूसरी औरत करेगा ? मेरी सौत लाएगा? अरे... कीड़े पड़ेंगे। मेरी हाय लगेगी उस कलमुई पर... इरक्या... मे जा रही हूँ... मे जा रही हूँ...

दीपक : (पैरों से चप्पल निकालकर तनुजा पर फेंकता है) अरे... कब से चिल्ला रही है, 'जा रही हूँ... जा रही हूँ...' तो फिर जाती काई को नहीं ? चल निकल यहाँ से।

तनुजा : (जैसे निश्चय कर लिया हो) ठीक है... तो... तो अब मे जाती... अब मे कब्बी तेरे पास नही आयेगी...तू... तू बुलाएगा तो बी नहीं आएगी (ये बोलकर तनुजा चली जाती है।)

(तनुजा के जाने के बाद दीपक थोड़ी देर इधर-उधर बेचैनी से घूमता है। उसे लगता है जैसे तनुजा कही नहीं गई और घर के बाहर ही बैठी है।)

दीपक : (तनुजा के जाने के थोड़ी देर बाद) ए... तनु... चल... आ जा... आ... आ... (बाहर से कोई आवाज़ नहीं आने पर) अरे... आ जा... न... अच्छा ठीक है... ठीक है... नहीं मारेगा अपन तेरे को अबी । तू भी तो खाली-पीली दिमाग खराब करती है... तो हाथ अपना उठेगाईज। चल... अब नहीं मारेंगा ।

(बाहर से कोई जवाब नहीं आता । जब दीपक को लगता है कि तनुजा वाकई घर छोड़कर चली गई है तो वो 'तनु... तनु' पुकारते हुए उसे ढूँढ़ने निकलता है। दीपक तनुजा को रेल्वे स्टेशन, सब्ज़ी-मंडी और बस अड्डे पर ढूँढ़ने जाता है।)

(दृश्य ६)

(सुबह के चार बजे हैं। इन्सपेक्टर और उसके हवलदार सड़क के किनारे खड़े पेट्रोलिंग कर रहे हैं।)

पांडे : (हवलदार २ से) कल तो अपने साब की फोटो अखबार में छपेगी ।

हवलदार १ : क्युं ?

पांडे : अरे... साब ने ट्रक पकड़ा है, हथियारों से भरा हुआ। कल तो सारे प्रेसवाले अपने साब का फोटो पहले पन्ने पर छापेंगे... क्युं साब ?

इन्सपेक्टर : फोटो नहीं रे पांडे, फोटो नहीं, पैसा चाहिए... पैसा । आखिर अपन इत्ता पैसा खर्च करके ये कुत्ते की माफिक नौकरी काई को करता है ? पैसा के वास्ते, पैसा के वास्ते ।

पांडे : (सहमत होते हुए) हाँ.. साब। बात तो आपने सोला आने सही कही है। (थोड़ा रुककर, धीरे से इन्सपेक्टर के कान में) साब... वो... बाबुराव है न, बाबुराव ?

इन्सपेक्टर : बाबुराव ? कौन बाबुराव ?

पांडे : (याद दिलाते हुए) अरे... साब... वो... वो... ट्रक... हथियार...ट्रक का मालिक...

इन्सपेक्टर : हाँ... हाँ... याद आया। तो ?

पांडे : साब... वो आपके साथ कुछ मांडवली करना चाहता है। दस पेटी तक देने को तैयार है।

इन्सपेक्टर : (सतर्क हो जाता है) अच्छा... ऐसी बात है ? (कुछ सोचकर, हवलदारों से) तुम लोग एक काम करो, तुम दोनों फाटकवाली बस्ती है ना वहाँ से किसी को भी पकड़ के ले आओ और ये हथियारवाला केस उस पर डाल दो (पांडे से) और तुम बाबुराव को मुझसे मिलने को कहो। सूरज उगने से पहले ये काम हो जाना चाहिए।

(इसी दौरान दीपक मंच पर प्रवेश करता है। थका हुआ सा वो धीरे-धीरे चलता हुआ जा रहा है। एक हवलदार की नज़र उस पर पड़ती है।)

हवलदार २ : (इन्सपेक्टर से) साब... बस्ती का बकरा हलाल होने के लिए इधरीज आ रहा है ।

(दीपक को देखकर सब सतर्क हो जाते हैं। इन्सपेक्टर फटाफट एक योजना बनाता है और पांडे को दीपक के पास भेजता है।)

पांडे : (दीपक के पास पहोंचकर) काये... रे... इरक्या ? कहाँ से आ रहा है तू ?

दीपक : (पांडे और इन्सपेक्टर को देख) अरे... सा... ब... लोग... आप ?

इन्सपेक्टर : कहाँ से आ रहा है तू ?

दीपक : कहीं से नहीं, साब । वो मेरे ससुराल गया था। बीवी को ढूँढ़ने के वास्ते।

इन्सपेक्टर : (कटाक्षात्मक अंदाज से) क्युं ? क्या भाग गई तेरी बीवी तेरे को छोड़ के ? (सब लोग दीपक पर हँसते हैं।)

दीपक : नहीं साहेब... वो... वो... भागी नहीं है । वो तो कहीं चली गई है। (स्वगत) एक... छोटा सा झगड़ाइज तो हुआ था... पता नहीं कहाँ चली गई ?

पांडे : अच्छा... ठीक है... ठीक है । एक बात तो बता। तूने दारू का धंधा बंद काई को किया ?

दीपक : वो... साब... आपीज लोगों ने तो बोला था।

पांडे : देख... इरक्या... तूं धंधा कर या मत कर। हमारे साब को तो उनका हप्ता बराबर मंगता। समझा ?

दीपक : लेकिन साब... अपन भीख माँगकर खाने वाला। आप लोगों का हप्ता कैसे देगा ?

पांडे : अरे... तबीज तो तेरे को बोला था... भेज दे तेरे बीवी को एक रात के वास्ते। तू भी खुश रहता, हमारे साब भी खुश रहते और तेरी बीवी भी नहीं भागती...

(पुलीस ठहाका लगाकर दीपक पर हँसती है। दीपक का खून खौल उठता है।)

दीपक : ए... साब, अपन बोल देता है। मेरी बीवी के बारे में अइसा बात नहीं करने का। अपन तो भीख माँगकर खाता है। साले तेरी तरह भड़वाईगिरी तो नहीं करता।

पांडे : (इन्सपेक्टर से) अरे... साब... ये... पारधी तो पुलीसवालों को गाली देता है।

इन्सपेक्टर : (दीपक को पेट में घूसा मारता है) क्युं बे पारधी ? तेरी इतनी हिम्मत की तू पुलीस को गाली दे !

दीपक : अरे... साब... आप लोगों को मुझसे मंगता क्या है ? मैंने... मैंने... दारू का धंधा बंद कर दिया... भीख माँगना भी छोड़ दिया । और... और आपको मुझसे मंगता क्या है ?

पांडे : हप्ता ।

इन्सपेक्टर : तेरी... बीवी ।

दीपक : (गुस्से से आग बबुला हो जाता है) देखो साब ! अबी अगर तुमने मेरी बीवी के बारे में अईसी वैसी बात की न... तो... तो...

इन्सपेक्टर : क्या करेगा तू ? मारेगा ? तू साला पारधी हो के पुलीस पर हाथ उठाएगा ? ले... मार (दीपक के पास जाते हुए) मार...

(इन्सपेक्टर दीपक को दो-तीन घूसे पेट में मारता है। सभी दीपक पर टूट पड़ते हैं और दीपक को जानवरों की तरह पीटते हैं। दीपक अपनी सारी शक्ति इकट्ठी कर इन्सपेक्टर और हवलदारों को धक्का मारकर धकेल देता है। अब सब पुलीसवाले एक तरफ और दीपक दूसरी तरफ हो जाते हैं।)

पांडे : साब... इसने आपको मारा ! इस पारधी ने आप पर हाथ उठाया ! गोली मार दो, गोली मार दो साले को !

(इन्सपेक्टर अपनी रिवोल्वर निकालकर भागते हुए दीपक की पीठ पर गोली चलाता है। गोली लगते ही दीपक धड़ाम से जमीन पर गिरता है और जीवन से मुक्त हो जाता है।)

इन्सपेक्टर : (दीपक की लाश के पास जाकर उसे अपने पैरों से सीधा करते हुए) मर गया... साला... पारधी...

हवलदार २ : (घबराकर) साब... ये... तो... ये... तो... मर्डर केस हो गया।

इन्सपेक्टर : अरे, काई का मर्डर केस ? ये साले पारधी तो जन्मजात गुन्हेगार होते हैं। इनका काई का मर्डर केस ? तुम लोग एक काम करो, ये हथियार से भरी ट्रकवाला केस इस पारधी पर लगा दो। लिख दो कि हथियारों से भरी ट्रक ले जाते वक्त पुलीस की मुठभेड़ में 'एन्काउन्टर' हो गया।

नेपथ्य से कोरस : गरीब भूखे, हाल बेहाल,
निर्दोष की ली जाती जान,
नहीं रोटी, कपड़ा, मकान,
कौन आज़ाद और कौन गुलाम ?
फिर भी... मेरा... भारत... देश... महान। (२)

v v v

•

मज़हब हमें सिखाता आपस में बैर रखना ???

वर्ष २००२।

फरवरी और मार्च का समय।

गुजरात में दंगों की आग भड़क उठी थी। झुलस्ती गर्मी से बचने के लिए एक ओर लोग कूलर और ए.सी. में रह रहे थे तो दूसरी ओर लोगों को ज़िन्दा जलाया जा रहा था। हिन्दू और मुसलमान, दोनों कौमों की एक दूसरे के लिए नफ़रत की आग में बच्चे और बड़े, स्त्री और पुरुष जल रहे थे। उनकी कोमल सी चमड़ी की परतें जल कर काली हो रही थीं, उनके फूल जैसे शरीर राख बन रहे थे।

उनकी दिल दहलानेवाली चीखों को अनसुना किया जा रहा था।

इन चीखों को सुनकर नाटक या साहित्य कैसे चुप रहता ?

उसी नफ़रत के माहोल में इस नाटक का जन्म हुआ।

•

पात्र

चेतना । तुषार । सुशील । आलोक

रोक्सी । कल्पना । बुज़ुर्ग । अफ़जल

औरत । हिन्दू १,२,३,४,५,६,७,८,९,१०

मुसलमान १,२,३,४,५,६,७,८,९, १०

युवक । झरीना । शबाना । सज्जन

पार्वती । अमर । अमर के पिताजी

युसुफ । रहीम चाचा । राजनीतिज्ञ । पी.ए.

लड़का, लड़की । विशाल । अंकुर

(दृश्य १)

(मंच पर खड़े सभी कलाकार 'मज़हब नहीं सिखाता...' गाने को एक ही सुर में गाने की रीहर्सल कर रहे हैं। लगातार कोशिशों के बावजूद भी वो ये गाना एक सुर में नहीं गा पा रहे हैं। अतः)

चेतना : दिमाग घास खाने गया है क्या ? पिछले दो घंटो से हम ये गाना एक ही सुर में गाने की कोशिश कर रहे हैं और तुम हो की एक लाईन ठीक से नहीं गा सकते।

तुषार : मैं सही गा रहा हूँ।

सुशील : नहीं ! तुम बिलकुल गलत गा रहे हो, तुषार !

तुषार : नहीं ! मैं तो बिलकुल सही गा रहा हूँ, तुम लोग गलत गा रहे हो।

आलोक : ये क्या बकवास कर रहे हो तुषार ! तुम अच्छी तरह जानते हो ये गाना जब से बना है तब से आज तक इस गाने के शब्द इसी तरह से गाए जा रहे हैं... और तुम हो की...

तुषार : (बात काटते हुए) मैं जानता हूँ, लेकिन अब इस गाने के शब्दों में परिवर्तन होना चाहिए।

रोक्सी : परिवर्तन ! कैसा परिवर्तन ?

तुषार : जिस तरह समाज परिवर्तनशील है, समय परिवर्तनशील है, ठीक उसी तरह अब इस गाने के शब्दों में भी परिवर्तन आना चाहिए।

कल्पना : (गुस्सा होते हुए) लेकिन क्युं ? और आखिर तुम कैसा परिवर्तन चाहते हो इस गाने के शब्दों में ?

तुषार : आज़ादी के बाद जब भी इस देश में कौमी दंगे हुए हैं, तब-तब इस गाने को लोगों में भाईचारा बना रहे, इसलिए गाया गया है। लेकिन अब बहोत हुआ, इस बार ये गाना भाईचारे के लिए नहीं बल्कि सत्य को सामने लाने के लिए गाया जाना चाहिए।

विशाल : सत्य ? कैसा सत्य ?

तुषार : (कुछ पंक्तिया गाता है)

मज़हब ही हमें सिखाता,

आपस में बैर रखना।

खूनी हैं हम,

झुनुनी हैं हम,

कौमवाद धर्म हमारा।

रोक्सी : बंद करो तुम्हारी ये बकवास!

तुषार : ये बकवास नहीं, ये सत्य है।

आलोक : देखो तुषार, कौमवाद के इस माहौल में लोगों में भाईचारा बना रहे इस उद्देश्य से हम ये नाटक कर रहे हैं। पर तुम हमारे उद्देश्य से बिलकुल विपरीत बात कर रहे हो।

तुषार : आखिर कब तक, कब तक हम ये भाईचारे का नाटक कर के अपने आपको और इस तमाशायी जनता को धोखा देते रहेंगे? ये भाईचारे का ढोंग ही हमें सत्य की ओर जाने से रोकता है।

चेतना : अरे... यार! ये बंदा क्या कहना चाहता है ? क्या करना चाहता है? मेरे तो कुछ पल्ले नहीं पड़ रहा है।

रोक्सी : तुषार...तुम जानते हो सत्य हमेशा कड़वा होता है और हमारी ये जनता सत्य की कड़वाहट बर्दाश्त नहीं कर पाती है। उसे अब तक इसकी आदत नहीं हुई है।

तुषार : बस इसी, इसी परिवर्तन की तो बात कर रहा हूँ मैं। कि हमारी इस जनता को सत्य की कड़वाहट सहन करने की आदत हो। कम से कम हम लोग, हम लोग तो उस नग्न सत्य की समीक्षा कर सकते हैं जो हमने अभी-अभी देखा है।

सुशील : अभी... अभी ? कहाँ... क्या देखा हमने ?

तुषार : अभी... अभी तो देखा हमने, अभी तो शायद जख्म भी नहीं भरे होंगे। उस सत्य को हमने जलता-कटता देखा है। उसे लहुलुहान देखा है। उसका बलात्कार होते देखा है।

विशाल : तुम कहना क्या चाहते हो ?

तुषार : मैं... मैं... साबित करना चाहता हूँ...

सुशील : क्या साबित करना चाहते हो ?

तुषार : यही कि आज तक डंके की चोट पर हम जो भाईचारे का ढोंग करते आए हैं, वो इस सदी का सबसे बड़ा असत्य है और ये लोगों में घना अंधेरा बनाए हुए है। हमने अपने आपको इस घोर अंधेरे को समर्पित कर दिया है। इस ढोंगी भाईचारे के तहत समाज, शिक्षा, विज्ञान, पक्ष, संप्रदाय, राजनीति, हम सब का खून चूस रहे हैं। शायद लोग इस बात को अच्छी तरह जानते भी हैं। लेकिन ये भाईचारे का ढोंग ही इस खून चूसने की प्रक्रिया पर परदा डाले हुए है। हमें ये परदा उठाना है, दोस्तों।

कल्पना : लेकिन कैसे ?

तुषार : आंगीकम् भुवनम् यस्य, वाचिकम् सर्व वांगमयम्।

आहार्यम् चँद्र, तरादी, तम् वंदे सात्विकम् शिवम्॥

कल्पना : (आश्चर्य से) तुम्हारा मतलब है इस नाटक द्वारा ?

तुषार : हाँ...

सुशील : अरे यार कोई समझाए इसे, ये बंदा हम सबको पिटवाएगा।

तुषार : बस... यही डर... यही डर रोकता है हमें सत्य बताने से। देखो दोस्तों, हम कलाकार हैं, संवेदनशील हैं। झूठ, अत्याचार, अन्याय हमसे बर्दाश्त नहीं होता । नाटक में हमारे संवादों पर लोगों को आस्था होती है। नाटक समाज का दर्पण होता है। और तुम जानते हो कि दर्पण कभी झूठ नहीं बोलता...

आलोक : ठीक है तुषार। तुम जो कह रहे हो उसे अगर साबित कर सकते हो तो हम सब तुम्हारे साथ हैं... क्युं दोस्तों ?

सभी : (अपनी सहमती जताते हुए) हाँ... हाँ...

तुषार : तो ठीक है। असत्य के अंधेरे से सत्य के उजाले की ओर जाने की प्रक्रिया का पहला दृश्य।

गुजरात! गरवी गुजरात ! जिसकी लोकभाषा, जिसकी असीम संस्कृति का सारी दुनिया आदर करती है, सन्मान करती है। एक दिन इसी गरवी गुजरात में खून पसीने की मेहनत से जोते गए घर और जिंदा मनुष्यों को जलाने से एकाएक आसमान काला हो गया। ये आपसी रंज था या सियासत की चाल, कोई समझ नहीं पाया...

(दृश्य २)

नेपथ्य से कोरस : २८ फरवरी २००२ ! गोधरा कांड के प्रत्याघात रूप विश्व हिन्दू परिषद द्वारा गुजरात बंध का एलान। अहमदाबाद का एक संवदेनशील इलाका। यहाँ कुछ लोग बाज़ार लगाए बैठे हैं। सुबह के तकरीबन नौ बजे हैं। एक बुज़ुर्ग जिसकी उम्र तकरीबन साठ साल होगी, अपनी दुकान लगाने आता है।

बुज़ुर्ग : (एक युवक से जो अपनी दुकान खोल ही रहा है) कैसे हो अफज़ल मीयां ?

अफज़ल : सलाम वालेकुम, रहीम चाचा।

रहीम चाचा : (मुस्कुराते हुए) वालेकुम सलाम।

अफज़ल : क्युं चाचा, आज देर से दुकान खोल रहे हो ?

रहीम चाचा : हाँ... अफज़ल मीयां ! सुबह से अल्लाह परवरदीगार की बंदगी में बैठा था, पता ही नहीं चला समय कैसे निकल गया। और वैसे भी आज माहौल बहोत ही तंग है।

औरत : क्युं चाचा ?

रहीम चाचा : बेटा, कल जो गोधरा में शर्मनाक वाक्यात् बना है उसने सारे देश को हिला के रख दिया है। गोधराकांड के प्रत्याघात रूप विश्व हिन्दू परिषदवालों ने आज गुजरात बंद का एलान किया है। इन बुढ्ढी आँखों को बहोत ही भयानक मंज़र की आशंका हो रही है।

(कुछ हिन्दू युवक 'जय श्री राम' के नारे लगाते हुए बाज़ार में हल्ला करते पहोंचते हैं। वो सभी की दुकानें बंद करवाने लगते हैं।)

हिन्दू १ : ए... बंद करो सभी अपनी दुकानें । चलो...भागो यहाँ से...आज सब कुछ बंद रहेगा।

(अफज़ल अपनी दुकान बंद नहीं करता। बाकी सभी लोग डर के मारे मंच के एक कोने में इकट्ठा हो जाते हैं। अफज़ल से)

अबे... ओ... सुनाई नहीं देता क्या ? चल...दुकान बंद कर।

अफज़ल : क्युं ? क्युं भाई ? मैं अपनी दुकान क्युं बंद करूँ?

हिन्दू २ : क्या ? क्या बोला तू ...? दुकान बंद नहीं करेगा...? अबे... अखबार में पढ़ा नहीं क्या ? आज हमने गुजरात बंद का एलान किया है ।

अफज़ल : हाँ... हाँ... किया होगा। लेकिन इससे मेरा क्या वास्ता...? चाहे कुछ भी हो... मैं अपनी दुकान बंद नहीं रखूँगा। और भाईसाब...

हिन्दू २ : ए... भाई किसे कहता है...?

अफज़ल : ठीक है... ठीक है... पर मैं अपनी दुकान बंद नहीं करूँगा... हम तो रोज कमा के खानेवाले गरीब हैं। अगर मैंने अपनी दुकान बंद कर दी तो मेरे बच्चे क्या खायेंगे ?

हिन्दू २ : अगर तेरे बच्चे भूख से मर जाएँ तो अच्छा ही होगा। सपोले साँप नहीं बन पाएँगे !

अफज़ल : खुदा के लिए ऐसी बात मत करो।

हिन्दू २ : क्युं ? अपने बच्चों की मौत के एहसास से ही तुम काँप उठे ? उन मासूम बच्चों के बारे में सोचा है जिनको तुम लोगों ने जिंदा जला दिया...?

अफज़ल : हमने ? हमने कहाँ कुछ किया है ? वो तो...

संदीप : किया है ! तुम लोगों ने ही किया है ।

अफज़ल : लेकिन...

हिन्दू १ : ए... बंद कर तेरी ये बकवास । तोड़ डालो साले की दुकान को ।

(सभी हिन्दू नारे लगाते हुए अफज़ल की दुकान तोड़ने लगते हैं। कुछ लोग सामान बाहर फेंकते हैं। अफज़ल उन लोगों को रोकने की कोशिश करता है लेकिन... ! एक बूढ़ा बुज़ुर्ग ये सारा माज़रा देख रहा है । वो इन सबको रोकने की कोशिश करता हैं।)

बुज़ुर्ग : अरे... रुक जाओ... अल्लाह के लिए रुक जाओ ।

(वो हिन्दू-१ का हाथ पकड़ लेता है।)

हिन्दू १ : (बुज़ुर्ग को धक्का देते हुए) ए... कौन है ये बुढ्ढा ?

बुज़ुर्ग : बेटा मैं... मैं... बुज़ुर्ग हूँ... आपका भी और इस गरीब का भी।

हिन्दू २ : देख बूढ़े... तू बुज़ुर्ग होगा । लेकिन इसका हम से नाता जोड़ने की कोशिश मत करना । चल भाग यहाँ से ।

बुज़ुर्ग : देखो बेटे... बुज़ुर्गीयत उम्र से होती है, कौम से नहीं। इस बेचारे ने कल ही पाँच सौ रुपए कर्ज कर के ये धंधा शुरू किया है। आपको दुकान ही बंद करवानी है ना... मैं समझाता हूँ इसे...

आलोक : देख बुढ्ढे, हम लोगों पर खून सवार है। इस हरामी से दुकान किस तरह बंद करवानी है हमें बहोत अच्छी तरह आता है।

अफज़ल : ए... हरामी किसे कहता है ?

हिन्दू ४ : तुझे... तुझे कहा सुव...

बुज़ुर्ग : अल्लाह के लिए... अब बस करो ।

हिन्दू १ : बस करें ? हमारे कानों में अब भी उन मासूमों की चीखें गूँज रही हैं जिन्हें तुम लोगों ने जिंदा जला दिया।

(एक लड़का खून से लथपथ मंच पर आकर गिरता है। सभी भौंच्चके से रह जाते हैं। हिन्दू जुथ उसे सँभालने में जुट जाता है ।)

हिन्दू २ : किशोर... किशोर... ये क्या हुआ, किशोर...?

किशोर : (अपना दम तोड़ते हुए) वो... वो... बंद... करवा...

(वहीं दूसरी ओर एक मुस्लिम युवक भागते हुए मंच पर आता है। उसकी आँखों में डर और आँसू हैं।)

युवक : अब्बा... अब्बा...

बुज़ुर्ग : क्या हुआ, समीर ?

युवक : वो... उन लोगों ने... इरफान को...

औरत : क्या... क्या हुआ इरफान को ?

युवक : उन लोगों ने इरफान को जिंदा जला दिया... (डर के मारे उसकी आँखें फट जाती हैं।)

औरत : हाय... अल्लाह...

(वहीं दूसरी ओर हिन्दू जुथ नारे लगाने लगता है।)

हिन्दू ४ : भाई, खून का बदला खून।

हिन्दू २ : पचपन लोगों को जिंदा जलाया ! बीस बहनें अब भी लापता हैं...और अब... अब एक और मौत !

हिन्दू ३ : अगर इतने बड़े सामूहिक धार्मिक हत्याकांड के बाद भी हम यूँ ही बैठे रहे तो हमें हिन्दू कहलाने का कोई अधिकार नहीं है ।

हिन्दू ४ : हमें जागना होगा ।

हिन्दू २ : हाँ... हिन्दुओं को जागना होगा ।

हिन्दू १ : हिन्दू जागेगा। ये हिन्दू राष्ट्र है। अब यहाँ और किसी की हुकूमत नहीं चल सकती ।

सभी : नहीं चल सकती। नहीं चल सकती।

हिन्दू १ : हिन्दुत्व ने हमें आवाज़ दी है। बदला... बदला... बदला... (वहीं मुस्लिम जुथ की ओर से)

सभी : बदला... बदला... बदला...

मुस्लिम जुथ : अल्लाह हो अकबर !

(यहाँ धर्म के नाम 'अस्तित्व' की लड़ाई शुरू हो जाती है। दोनों समूह एक दूसरे पर जानवरों की तरह टूट पड़ते हैं। माहौल में, 'काटो, जिन्दा जला दो', 'एक को भी मत छोड़ना', 'जय श्री राम', 'अल्लाह हो अकबर', 'या अली' के नारे गूँज उठते हैं।)

(दृश्य ३)

(अहमदाबाद में शुरू हुए दंगो से अनजान एक मुस्लिम परिवार। शबाना नाम की एक युवती खाना बना रही है।)

झरीना : (घर के बाहर से आवाज़ देते हुए) अम्मी... ओ... अम्मी...

शबाना : (अंदर से) हाँ... झरीना...

झरीना : अम्मी... मुझे भूख लगी है... खाना जल्दी बनाओ ।

शबाना : हाँ... हाँ... बनाती हूँ... बस थोड़ी ही देर...(दुःखी होकर) हाय अल्लाह ! पता नहीं कौन से पापों की सज़ा दे रहा है परवरदीगार। झरीना तीन दिन से चावल माँग रही है । लेकिन... मैं... क्या करूँ मैं ?

झरीना : (बाहर से ही) अम्मी...

शबाना : हाँ... हाँ.... आ जा... बन गया खाना ।

झरीना : (मंच पर आकर अपनी अम्मी से लिपटकर) अम्मी... अम्मी... मेरी प्यारी अम्मी... अम्मी, मैं शबनम से कह आई की आज हमारे घर चावल बन रहे हैं। आज मैं ज़रूर चावल खाऊँगी। है न अम्मी ?

शबाना : अच्छा... अच्छा... ठीक है । ये... ले... जल्दी पी ले । काम पर देर से जाएगी तो तेरा सेठ तुझे मारेगा ।

झरीना : ये... ये क्या अम्मी ? आज फिर से नमकवाले चावल का पानी ?

शबाना : (संकोच करते हुए) हाँ... झरीना, तू आज ये पी ले। मैं तेरे लिए माँगकर लाई हूँ। मैं तुझे कल ज़रूर चावल खिलाऊँगी।

झरीना : नहीं, अम्मी। नमकवाले चावल का पानी पीने से मेरा पेट फूल जाता है । मैं ये नहीं पीऊँगी।

शबाना : देखा झरीना, तुम्हारे अब्बु काम पे गए हैं ना, वो आएँगे तो ज़रूर चावल की पोटली साथ लाएँगे। तब हम सब साथ बैठकर पेट भर के चावल खाएँगे। देख बेटा...ये ले, पी ले... भूखे पेट काम पर नहीं जाते बेटा...

झरीना : नहीं अम्मी... (जिद करते हुए) आज मैं चावल खाए बिना नहीं जाऊँगी।

शबाना : (गुस्से से) तो... जा मर...

(झरीना को धक्का देती है। झरीना रोने लगती है । शबाना को पछतावा होता है।)

या परवरदीगार ! मुझे माफ करना। पर मैं भी क्या करूँ...? घर में फूटी कौड़ी भी नहीं है ।

(झरीना के पास जाकर उसे शांत करती है।)

मत रो मेरी प्यारी बिटीया । अपनी अम्मी को माफ कर दे । देख... मैं तुझे तेरे अब्बु का खत पढ़कर सुनाती हूँ ।

नेपथ्य से कोरस : दंगो के दौरान एक जले हुए घर के टूटे हुए बरतन में से एक

खत मिला। इस खत में एक मजदूर बाप ने अपनी गरीब मासूम बिटीया के लिए कुछ सपने सजाये थे। सत्य घटना पर आधारित ये दृश्य उस मजदूर बाप, उसकी प्यारी अम्मी और उनकी मासूम बिटीया को श्रद्धांजली अर्पीत करता है।

शबाना : (खत पढ़ती है) सलाम वालेकुम शबाना... मेरी झरीना को मेरा ढेर सारा प्यार देना। (झरीना से) देखा, तुम्हारे अब्बा ने तुम्हें ढेर सारा प्यार लिखा है।

झरीना : अम्मी, मुझे भूख लगी है... मुझे चावल दो...

नेपथ्य से कोरस : झरीना को भूख लगी है, चावल दे दो। (२)

शबाना : (खत आगे पढ़ते हुए) फिर तुम्हारे अब्बु क्या लिखते हैं...? मैं यहाँ ठीक हूँ। मुझे म्युनिसिपालिटी में गड्ढा खोदने का काम मिला है। लेकिन पैसे अभी नहीं मिले हैं। शबाना, मेरी झरीना का ख्याल रखना। (झरीना से) देखा झरीना, तुम्हारे अब्बु तुम्हें कितना प्यार करते हैं!

झरीना : अम्मी, मुझे भूख लगी है... मुझे चावल दो।

नेपथ्य से कोरस : झरीना को भूख लगी है, चावल दे दो। (२)

शबाना : (खत आगे पढ़ते हुए) और फिर आगे क्या लिखते हैं ? गड्ढे खोदकर मुझे जो पैसे मिलेंगे उससे हम झरीना का निकाह करेंगे। तुम कोई अच्छा सा लड़का देखकर रखना... झरीना से कहना कि उसके अब्बु उसे बहोत याद करते हैं।

झरीना : अम्मी, भूख लगी है... मुझे चावल दो।

नेपथ्य से कोरस : झरीना को भूख लगी है, चावल दे दो। (२)

शबाना : (आँखों में आँसू लिए) और... और क्या लिखते हैं ? सुनो... उस मासूम बिटीया को मैं... जल्दी ही घर आऊँगा और साथ में चावल की पोटली भी लाऊँगा।

(इतना पढ़ते-पढ़ते तो जैसे शबाना का बाँध टूट जाता है और वो रो देती है।)

झरीना : (अपनी माँ के पास जाकर) अम्मी...तुम क्युं रो रही हो ? अम्मी मुझे भूख नहीं लगी है... अम्मी... अम्मी... (अचानक बाहर से दंगाईयों की आवाज़ें आती हैं। दरवाजे को तोड़ने की कोशिश...)

शबाना : हाय अल्लाह ! ये कैसी आवाज़ें हैं ?

(बाहर झांकती है और तुरन्त डरते हुए वापस आ जाती है)

हाय रब्बा... ये...तो...ये...तो... दंगे शुरू हो गए... मैं...मैं क्या करुँ ? झरीना अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं है । झरीना, तुम वहाँ छुप जाओ... बाहर मत निकलना... मैं अभी आती हूँ।

(वो जैसे ही दरवाजा खोलने जाती है की दंगाई घर के अंदर घुस आते हैं।)

हिन्दू १ : (शबाना के बाल खींचते हुए) कहाँ भागे जा रही है, मुसलमानी ?

शबाना : अल्लाह के लिए मुझे जाने दो! तुम्हें... तुम्हें... खुदा का वास्ता है। मुझे जाने दो, भाईजान।

हिन्दू २ : ए... मुसलमानी, भाई नहीं बोलने का...बहोत शौक है न तुम लोगों को बाबरी मसजिद बनाने का । बुला तेरे अल्लाह को...बुला...

हिन्दू ३ : समय मत खराब करो... हमें और भी बहोत काम करने हैं । हमारी कई बहनें अब भी लापता हैं । उन गुमसुदा बहनों का बदला लेना है हमें...

शबाना : (गिड़गिड़ाते हुए) अरे... लेकिन हमने क्या किया है ? हम गरीबों को तो जाने दो... नहीं... नहीं...

(सभी उसकी ओर कदम बढ़ाते हैं और शबाना 'बचाओ, बचाओ' कि आवाज़ें लगाती है। शबाना का रुदन... उसका बलात्कार। अंत में चुन्नी के चिथरे-चिथरे कर दिये जाते हैं। यहाँ शबाना दर्द के मारे कराह रही है।)

हिन्दू १ : ए...मुसलमानी...अब तू मुसलमानी नहीं हिन्दू हो गयी है ।

हिन्दू २ : हिन्दू राष्ट्र जिंदाबाद। हिन्दू राष्ट्र जिंदाबाद।

हिन्दू १ : मिट्टी का तेल लाओ ।

(एक आदमी मंच की दूसरी ओर जाता है।)

हिन्दू २ : अरे... कोई मिट्टी का तेल लाओ ।

(एक सज्जन वहाँ आता है। उसके हाथ में पेट्रोल है।)

सज्जन : ये लीजिए, 'श्रीकृष्ण बिल्डर्स' की ओर से ये पाँच लीटर पेट्रोल दान में दिया जाता है।

हिन्दू ३ : इस धार्मिक लड़ाई में आपका ये दान अमूल्य है । जय श्री राम...!

सज्जन : जय श्री राम ! और हाँ, दानवीरों की सूची में हमारी फर्म का नाम... समझ गए न आप?

हिन्दू ४ : इस दान से आपको ज़रूर फायदा होगा । जय श्री राम...!

(हिन्दू ३ जख्मी शबाना के पास जाता है।)

हिन्दू ३ : ये लीजिए, 'श्रीकृष्ण बिल्डर्स' की ओर से ये पाँच लिटर पेट्रोल इस शुभ कार्य के लिए दान दिया गया है ।

(शबाना पर पेट्रोल छिड़ककर सभी मिलकर उसे जला देते हैं। झरीना ये सब छुपकर देख रही है। दंगाईयों के जाने के बाद वो बाहर आती है और अपनी अम्मी के पास जाती है ।)

झरीना : अम्मी... उठो अम्मी... मुझे भूख नहीं लगी है...

नेपथ्य से कोरस : झरीना को भूख लगी है, चावल दे दो। (२)

(दृश्य ४)

(सड़क के किनारे, कच्ची झोपड़ी मे एक हिन्दू परिवार रह रहा है। एक युवक अपने हाथों से मूर्तियाँ बना रहा है। इस युवक की माँ का प्रवेश होता है ।)

माँ : (अपने बेटे को मूर्तियाँ बनाते देख) अमर... अमर बेटा, अब बस भी कर। और कितनी मूर्तियाँ बनायेगा ? (अफसोस व्यक्त करते हुए) वैसे आजकल मूर्तियाँ बनती तो बहोत हैं लेकिन बिकती कहाँ है ?

अमर : हाँ... माँ... वैसे भी आजकल सड़क के किनारे मूर्तियाँ बेचनेवालों को लोग भिखारी की नज़र से देखते हैं।

माँ : अरे... ऐसा क्युं कह रहा है ? हम मजदूर हैं, भिखारी थोड़े ही हैं ?

अमर : हाँ... मजदूर । जो अपनी मंज़िल से बहोत दूर होता है... वो... मजदूर...

माँ : ये क्या बक रहा है तू ?

अमर : माँ... पिताजी ने अपनी सारी ज़िंदगी पत्थर तोड़े। आज भी तोड़ रहे हैं । इस शहर की न जाने कितनी ही इमारतें उनके हाथों से तराशे हुए पत्थरों से सजी हैं। लेकिन अफसोस... पत्थर की इमारतें बनानेवाले का घर प्लास्टिक के कूड़े-कचरे और कच्ची लकड़ियों पर टिका है। माँ, हवा के एक ही झोंके से हमारा घर हिलने लगता है।

माँ : बेटे, मनुष्य के पापों से त्रस्त धरतीमाता जब काँप उठती है तब पत्थर की इमारतों में रहनेवालों के घर पत्तों के महल की तरह बिखर जाते हैं ।

अमर : माँ... ये सब मन को बहलानेवाली बातें हैं। नग्न सत्य तो ये है कि हमें हमारे मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा जाता है। इस देश में हर व्यक्ति को रोटी, कपड़ा और मकान देने के लिए देश का संविधान वचनबद्ध है। पिताजी ने सारी ज़िंदगी कड़ी धूप में, ठिठुरती सर्दियों में, बारिश में, चारों पहर अपने आपको जलाकर मुझे पढ़ाया-लिखाया। उनका सिर्फ एक ही सपना रहा है। मुझे सरकारी कुर्सी पर बैठे देखने का। लेकिन हाय रे ये बेरोजगारी! माँ... ये हमारे कभी न पूरे होने वाले सपने हैं। देखो माँ... ये ईंट और पत्थर से बना घर... हमारे सपनों का घर।

माँ : अमर... अमर बेटा... तू सपने भी देखता है! गरीबों को सपने देखने का अधिकार नहीं होता बेटे। और हम तो सपने देखते नहीं, सपने बेचते हैं । इन मूर्तियों द्वारा... ये... कृष्ण, महावीर, बुद्ध, जीसस... ये अच्छे कपड़ों में सज्ज गुड़िया... ये सब लोगों के सपने हैं... जिन्हें हम आकार देते हैं ।

(बाहर से अमर के पिता घबराये से भागते हुए अंदर आते हैं।)

पिताजी : पार्वती... पार्वती... चलो... जल्दी चलो ।

पार्वती : क्या हुआ ? क्या हुआ ?

पिताजी : पार्वती... अमर बेटे जल्दी करो... ज़रूरत का सामान बाँध लो और चलो... चलो, जल्दी करो।

अमर : लेकिन पिताजी... आखिर हुआ क्या ?

पिताजी : क्या हुआ ? क्या हुआ... बेटे ? जो कुछ हुआ वो बहोत ही भयानक है। दोनों कौमों के लोग एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए हैं। अहमदाबाद जल रहा है । पार्वती... मैं... मैं... बहोत ही भयानक मंज़र देखकर आ रहा हूँ।

अमर : नहीं बाबा... मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा।

पिताजी : ये क्या बक रहा है तू... ?

अमर : आखिर... कब तक ? कब तक हम अपने ही देश में उन लोगों से डर के रहेंगे ? सन् १९४७ से आज तक वे लोग हमें हमारे ही देश में मारते आए हैं। फिर भी हम हमेशा खामोश रहे। लेकिन आज... आज हिन्दू जागा है।

पिताजी : ये क्या बकवास कर रहा है तू ? चल, जल्दी चल।

अमर : नहीं पिताजी, मैं यहाँ से बुजदिल की तरह नहीं भागूँगा ।

पिताजी : अरे... बेटे... ये वक्त मरदानगी बताने का नहीं है । बल्कि अपनी जान बचाने का है। पार्वती, तुम ही कुछ समझाओ इसे । आज मुझे लग रहा है कि मैंने इसे पढ़ा-लिखाकर बहोत बड़ी गलती की है।

अमर : पिताजी !

माँ : देखो अमर बेटे... इन दंगाईयों का कोई धर्म नहीं होता। इनका तो सिर्फ एक ही धर्म है... खून बहाना... चल बेटे... जल्दी चल...

अमर : लेकिन माँ... भला हमें उनसे क्या खतरा है ? हम बरसों से उनकी बस्ती के पास रह रहे हैं। मैं और युसुफ एक साथ कॉलेज में पढ़े हैं। एक ही थाली में खाना खाया है... और तुमने... तुमने सारी ज़िंदगी उनकी बस्ती की औरतों के कपड़े सीये हैं । मैंने जब होश सँभाला तब मैं रहीम चाचा की गोद में था । भला हमें उनसे क्या खतरा हो सकता है ?

पिताजी : अमर... इस नफ़रत के माहौल में कैसे रिश्ते और कैसे नाते ? चलो...अमर..., जल्दी चलो।

(जैसे ही वो दरवाजे से बाहर निकलने जाते हैं वैसे ही एक मुसलमान समूह उन पर टूट पड़ता है।)

युसुफ : कहाँ भागे जा रहे हो काफिरों ?

पिताजी : (गिड़गिड़ते हुए) युसुफ, हमें जाने दो युसुफ। (रहीम चाचा की ओर देखकर) रहीम... रहीम.....तू... तू तो मेरा दोस्त है ।

रहीम : खबरदार जो दोस्ती का लव्ज़ भी अपनी जबान पर लाया तो !

युसुफ : दोस्ती के नाम पीठ पर वार करते हो सालों...

अमर : (क्रोधित होकर) सन् १९४७ से तुम लोग भी तो हमारी पीठ पर वार करते आए हो युसुफ !

(सभी अमर को मारने दौड़ते हैं ।)

पिताजी : युसुफ... युसुफ... हमें जाने दो बेटे... मैं... मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ । बेटे, हमें बख्श दो ।

युसुफ : गिड़गिड़ा। और गिड़गिड़ा। इसी तरह आज कहीं न कहीं हमारे बच्चे, हमारी औरतें भी तुम लोगों के पैरों में गिड़गिड़ा रहे हैं। लेकिन तुम लोग...

(युसुफ अमर के पिताजी के पीठ में छुरा भोंक देता है। अमर और उसकी माँ चिल्ला उठते हैं। युसुफ अमर को मारने के लिए आगे बढ़ता है।)

माँ : युसुफ... युसुफ बेटे... आगे मत बढ़ना। तुम्हें... तुम्हें... मेरे दूध का

वास्ता है जो मैंने तुम्हें पिलाया है। भले ही तुम मुझे मार दो लेकिन मेरे बच्चे को छोड़ दो ।

अमर : माँ !

युसुफ : देख बुढ़िया, इस नफ़रत के माहौल में तुम्हारा पिलाया हुआ दूध अब ज़हर बन गया है। तुम लोगों ने हमारी नशीमाबानु को मारकर छत पर लटका दिया !

माँ : हाय... राम !

युसुफ : हाँ... इसी... इसी... राम की वज़ह से हुआ है ना ये सब ? बुला अपने राम को । बुला...

(युसुफ अमर की माँ और अमर के पेट में तलवार भोंककर दोनों को मार देता है।)

युसुफ : इस बुढ़िया की लाश को भी नंगी कर के म्युनिसिपालिटी के कचरे के डिब्बे में फेंक दो। चलो !

(दृश्य ५)

(मंच के मध्य में एक राजनीतिज्ञ खड़ा है। उसका पी.ए. वहाँ दौड़ा चला आता है।)

पी.ए. : सर... सर...

राजनीतिज्ञ : (बड़ी शांति से) क्या हुआ ? चिल्ला क्युं रहे हो ?

पी.ए. : (घबराया सा) सर... वो... आज अहमदाबाद में ....

राजनीतिज्ञ : मैं जानता हूँ... अब तक कितने लोग मारे गए ?

पी.ए. : हं... सर, वैसे तो अब तक दो सौ लोगों की मौत हो चुकी है। लेकिन....

राजनीतिज्ञ : ठीक है। तुम जा सकते हो।

पी.ए. : लेकिन सर... सरकार ने अगर इस स्थिति पर जल्द ही काबू नहीं किया तो न जाने कितने बेकसूर लोग...

राजनीतिज्ञ : ये राजनीति है। आप जैसे पढ़े-लिखे लोगों की समझ में नहीं आएगी। इस देश को संपूर्णतः हिन्दू राष्ट्र बनाना ही हमारा एक मात्र कर्म है। याद रहे अहमदाबाद के जलने की बू अभी तक इस राज्य के पाटनगर तक नहीं पहोंची है। चौबीस घंटो के लिए सरकार की सभी व्यवस्थाओं को ठप्प कर दो।

पी.ए. : (आश्चर्यचकित होकर) ये क्या कह रहे हैं आप सर...? सरकार की सभी व्यवस्थाओं को ठप्प कर दें ? अगर ऐसा किया गया तो चारों ओर आतंक फैल जाएगा।

राजनीतिज्ञ : आपने सारी ज़िंदगी पढ़ाई की लेकिन राजनीति की शतरंज को नहीं समझ पाए। इस देश में सफ़ल राजनेता वो ही बन सकता है जो प्रजा की भावनाओं के साथ राजनीति खेलने में माहिर हो... राजनीति... राजनीति का मतलब होता है... र से राक्षस... ज से जनता... न से नीति... और त से तिकड़मबाजी... (अट्टहास्य)।

पी.ए. : सर... सर...

राजनीतिज्ञ : नाव यु केन गो। (अट्टहास्य)

(दृश्य ६)

(बाज़ार में एक जगह दोनों जूथ आमने-सामने हो जाते हैं। नफ़रत के इस माहौल में दोनों जुथों की आँखों में खून सवार है। हिन्दू जुथ में से एक आदमी आगे आता है।)

हिन्दू १ : ये धर्मयुद्ध है।

मुसलमान १ : ये खून से लथपथ है ।

मुसलमान २ : खून तो बहा... धर्म शहीदों का...

हिन्दू २ : ये मुद्दा है राम मंदिर का।

मुसलमान ३ : ये सवाल है बाबरी मस्जिद का।

हिन्दू ३ : अयोध्या है जन्मभूमि श्री राम की ।

मुसलमान ४ : पैगंबर पहले आए, कोर्ट ने सुनवाई की।

हिन्दू ४ : इतिहास को फिर से खोदेंगे हम।

मुसलमान ५ : गढ़े मुर्दो को फिर से उखाड़ेंगे हम।

हिन्दू ५ : ये देश है हिन्दू राष्ट्र, हम हैं इसके आर्य।

मुसलमान ६ : आर्य अब इतिहास हुआ, जिहाद ही मूलमंत्र है।

हिन्दू ६ : इतिहास अब दोहराएगा, संपूर्ण हिन्दू राष्ट्र आयेगा।

मुसलमान ७ : इस्लाम ने दी है आवाज़, धर्म के लिए छेड़ दो जिहाद।

हिन्दू ७ : जिहादियों का ये देश नहीं, इस्लाम का ये उपदेश नहीं।

मुसलमान ८ : अस्तित्व की है ये लड़ाई, जिहाद एकमात्र ही है उपाय।

हिन्दू ८ : हम हैं हिन्दू, नया हिन्दुस्तान बनायेंगे...

मुसलमान ९ : जर, जमीन के लिए हम अपनी जां भी गवाएँगे।

हिन्दू ९ : धर्म ने दी है पुकार, इस्लामियों को करो निकाल बाहर ।

मुसलमान १० : ये धर्मयुद्ध शुरू तो तुमने किया, खत्म हम करेंगे ।

हिन्दू १० : इस धर्मयुद्ध के नाम न जाने तुमने कितने सितम किए ।

मुसलमान १ : ये है बदले की आग... बदला... बदला... बदला ।

सभी हिन्दू : बदला... बदला... बदला... हर... हर... महादेव...

सभी मुसलमान : अल्लाह... हो ... अकबर...

(दोनों धर्मों के लोग 'या अली... अल्लाह। हो...अकबर', 'हर हर महादेव','जय जय श्री राम' के नारे लगाते हुए एक दूसरे पे टूट पड़ते हैं।

कोई किसी का गला काट देता है, तो कोई किसी के पेट में खंजर भोंक देता है। कहीं कोई मिट्टी का तेल डालकर किसी को जिंदा जला रहा है, तो कहीं फूल से बच्चों को जलती हुई आग में झोंका जा रहा है या कहीं माँ-बेटियों का सरेआम बलात्कार किया जा रहा है। ये सारे दृश्य बेहद नफ़रत और खुन्नस भरे हैं। अंत में दोनों कौमों के लोग तथाकथित धर्म के नाम शहीद हो जाते हैं।)

नेपथ्य से कोरस : इस देश पर शासन करना है बड़ा आसान,

इस देश के लोगों को मूर्ख बनाना है बड़ा आसान,

चिनगारी को हवा दे दो, भड़क उठेगी आग,

राजनीति का ये अचूक शस्त्र बना दे हर नेता की बात।

ये धर्मयुद्ध नहीं, ये राजनैतिक युद्ध है,

मूर्ख प्रजा ये समझ न पाए,

नेताओं की पंचवर्षीय कुर्सियाँ टिकाए।

लड़ो... लड़ो... लड़-लड़कर मर जाओ

धर्मयुद्ध के नाम, नाम अमर कर जाओ

ऊपर कहना रामलल्ला को, फना हुए आपके नाम

मेरे बच्चों को रोटी देना, कपड़े देना, देना उन्हें मकान

इस देश पर शासन करना है बड़ा आसान,

भुला दो प्रजा के मन से दंगो का ये ज़हर

चुनावों का माहौल बन गया, बंद करो ये मानव सर्जित कहर

बहुसंख्यकों का दिल जीत लिया

छेड़ दिया उनकी संवेदनाओं को,

वोटों की भरमार है अब

छेड़ दिया उनकी संवेदनाओं को,

इस देश पर शासन करना है बड़ा आसान।

(इस बीच शहर की वे गलियाँ जहाँ अनगिनत विकृत लाशें काली सड़क को लाल कर रही हैं और जहाँ श्मशान जैसी भेंकार शांति का साम्राज्य हो गया है, वहाँ एक पाँच साल की लड़की छुपते-छुपाते उसकी खोई अम्मी को ढूँढने आती है। वहीं दूसरी ओर एक छः साल का लड़का अपने पिता और भाईयों को ढूँढते हुए मंच पर प्रवेश करता है। दोनों निर्दोष मासूम बच्चे धर्म की सीमाओं से परे, लाशों के बीच बाज़ार में अपने अम्मी और पिता को न देख फूट-फूटकर रो रहे हैं। ये रुदन सारी कायनात को जैसे रुला रहा है। अचानक वो जली-कटी लाशें उठती हैं और रोती हुई उस नन्ही सी लड़की को घेर लेती हैं... उनकी मिली-जुली आवाज़ निर्दय बने दोनों धर्मों को दर्शाती हैं।)

लड़की की ओर खड़े पात्र : बोल। तू हिन्दू है कि मुसलमान ? (२)

लड़की : (निर्दोषता से) भाईजान, मैं तो झरीना हूँ।

लड़के की ओर खड़े पात्र : नंगा कर के देखो हिन्दू है कि मुसलमान। (२)

लड़का : मैं तो मोहन हूँ भाईसाब...

लड़की की ओर से : बोल जय जय श्री राम । (२)

लड़की : मुझे भूख लगी है भाईजान।

लड़के की ओर से : बोल... अल्लाह हो... अकबर। (२)

लड़का : माँ... बाबा... भईया।

(लड़की की ओर खड़े सभी पात्र लड़की के पेट में 'हर हर महादेव' का नारा लगाते हुए खंजर भोंक देते हैं। वहीं दूसरी ओर लड़के को 'या... अली' का नारा लगाते हुए जिंदा जला देते हैं।)

(दृश्य ७)

(दृश्य एक के सभी पात्र मंच पर बहोत ही त्रस्त अवस्था में इधर-उधर पड़े हैं। कोई बैठा है तो कोई खड़ा है । मंच पर संपूर्ण शांति है।)

कल्पना : तुषार...शायद तुम जो कहना चाहते थे... उस सोच को तुमने कुछ हद तक साबित कर ही दिया है ।

चेतना : हम प्यादे हैं। राजनीति की शतरंज के प्यादे। टेढ़ी-मेढ़ी चालें चल कर कोई भी बाजी मार जाता है। इस शतरंज की बाजी का रिमोट कन्ट्रोल दिल्ही में है। दिल्ही, हमारी राजधानी ।

आलोक : हाँ... राजधानी। जहाँ सिर्फ राजा रहते हैं। जहाँ की ट्युबलाईट की चकाचौंध रोशनी में भारत का भूखा, दंगा पीड़ित आदमी खो जाता है... जहाँ खेतों, खानों व भट्टों से आया गरीब खो जाता है।

रोक्सी : आदमी मूलत: आक्रमक पशु है, पृथ्वी का सबसे बुद्धिजीवी पशु है। लेकिन आक्रमक है...

आलोक : सन् १९४७ से इस देश की शासित सरकारों द्वारा हमारे अंदर छिपी धार्मिक आक्रमकता को दबाया गया है । धार्मिक भावनाओं से जुड़ी हमारी ये आक्रमकता सरकार हर पाँच साल बाद छेड़ देती है।

विशाल : मज़हबी आक्रमकता से जुड़ी इस लड़ाई में राम मंदिर या बाबरी मसजिद तो नहीं बन पाए लेकिन हाँ, इस मुद्दे को छेड़नेवाली पार्टियाँ सरकारें ज़रूर बना पायीं ।

आलोक : सरकारें बनाने का ये फोर्म्युला हमारा मौलिक नहीं है ? अंग्रेजों ने अपने शासनकाल की आयु बढ़ाने के लिए एक नए फोर्म्युला का आविष्कार किया था !

कल्पना : आज़ादी के लिए लड़ते जनसमूह की ताकत को दिशाविहीन करने का फॉर्म्युला।

रोक्सी : सांप्रदायिक हिंसा से झुलसती मूर्ख प्रजा की आपसी लड़ाई का फोर्म्युला।

चेतना : अंग्रेजों का आविष्कार कामयाब हो गया। मूर्ख लोग लड़ते रहे और वो शासन करते रहे।

विशाल : अंग्रेजों ने इस फॉर्म्युला का उपयोग गुलाम भारत को गुलाम बनाए रखने के लिए किया।

अंकुर : लेकिन हमारे राजनीतिज्ञों ने इस फॉर्म्युला का उपयोग आज़ाद भारत को गुलाम बनाए रखने के लिए किया।

सुशील : भारत की राजनीति ने अयोध्या में एक बीज बोया था। नफ़रत के पेड़ का बीज।

चेतना : वो बीज अब एक बहोत बड़ा पेड़ बन गया है।

कल्पना : नफ़रत के इस पेड़ से चाहे कुछ भी हो जाए, इसे किसी भी कीमत पर हमेशा हरा-भरा रखा जाता है।

रोक्सी: देश में चाहे कितना भी बड़ा सूखा पड़ा हो, लोग घास की रोटियाँ खा रहे हों...

आलोक : किसान अपने ही खेत में मजदूर बन गये हों...

विशाल : बोर्डर पर हजारों सिपाही देश के लिए शहीद हो रहे हों...

अंकुर : बाढ़ में मर रहे लाखों लोगों की लाशें सड़ रही हों...

चेतना : आदिवासियों के जंगल छीने जा रहे हों...

कल्पना : दलित औरतों पर सरेआम बलात्कार हो रहा हो...

रोक्सी : चाहे कुछ भी हो जाए लेकिन नफ़रत का ये पेड़ हमेशा हरा-भरा रहता है क्युंकि इसकी जड़ों को पानी से नहीं, कई हज़ार लोगों, मासूम बच्चों और बज़ुर्गों के खून से सींचा जाता है।

आलोक : ये पेड़ है तो अयोध्या में लेकिन इसकी जड़ें दिल्ही तक फैली हैं।

विशाल : नफ़रत के इस पेड़ की जड़ें देश के बच्चे-बच्चे तक पहोंच चुकी हैं।

अंकुर : इस पेड़ पर जो फल उगता है उसकी राजनीति को हर पाँच साल में भूख लगती है।

चेतना : जो इस पेड़ को काटने की कोशिश करता है, ये पेड़ उसे निगल जाता है।

कल्पना : हमने हमारे धर्मों को कौमवाद का स्वरूप दे दिया है। हमारे मूल धर्म हमें मंदिर या मसजिद के लिए खून बहाने को नहीं कहते। मगर फिर भी हम ऐसा करते हैं।

अंकुर : इस आध्यात्मिक देश के किसी भी पौराणिक धर्म ग्रंथों में कहीं भी ये नहीं लिखा गया है कि मंदिर और मसजिद के लिए एक दूसरे का खून बहाया जाए ।

चेतना : धर्म हमें खून बहाने को नहीं कहता... लेकिन धर्म के ठेकेदार ऐसा जरूर कहते हैं।

तुषार : (जो अब तक सब सुन रहा है, एकदम से डंके की चोट पर अपनी बात कहता है) इसीलिए... इसीलिए... मैं बार-बार कहता हूँ कि,

> अब मज़हब ही हमें सिखाता आपस में बैर रखना...
>
> खूनी हैं हम, झुनूनी हैं हम,
>
> कौमवाद धर्म हमारा... हमारा...
>
> फिर भी सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तान हमारा ।

दोस्तों...हिन्दुत्व और इस्लाम, दोनों धर्म हमारे नेताओं के राजनैतिक अर्थघटन पर आधारित हो गए हैं । हिन्दुत्व और इस्लाम को मंदिर और मसजिद की सीमाओं में बाँध दिया गया है और इस पर चढ़ा दिया है तथाकथित राजनैतिक धर्म का मुखौटा जिसके अंदर दोनों धर्मों का मूल

संदेश दब गया है। हमारे नेताओं ने हमारे धर्म और मज़हब के मूल स्वरूप को बदलकर रख दिया है। फिर भी हम अंधे और बेहरे बनकर हमारे अंदर छिपी धार्मिक आक्रमकता को छेड़नेवालों के इशारों पर नाच उठते हैं। अगर हम इन मज़हबी लड़ाईयों के मूल में देखें तो ये मज़हबी या राजनैतिक लड़ाइयाँ प्रतीत नहीं होतीं बल्कि वो तो बरसों से हमारे शासन कर्ताओं द्वारा हमारे अंदर पाली गयी धार्मिक आक्रमकता की लड़ाइयाँ हैं। ये मात्र इन्हें छेड़ देते हैं।

विशाल : तुम्हारा मतलब है इन दंगो के जिम्मेदार हम खुद हैं ?

तुषार : हाँ हम ही हैं।

कल्पना : लेकिन कैसे ?

तुषार : हम... हम यानी हम प्रजा, इस देश की प्रजा... (सब को संबोधित करते हुए) जैसा कि तुम जानते ही हो हम एक लोकतंत्र में जी रहे हैं... लोकतंत्र... लोगों का, लोगों द्वारा और लोगों के लिए बनाया गया तंत्र... लोकतंत्र... इसका मतलब है, आज जो धर्म के या मज़हब या फिर राजनीति के ठेकेदार हैं, उन लोगों को हमने ही चुना है । मतलब की ये हमारे प्रतिनिधि हैं...लेकिन उनका चुनाव हम ने किया... हम यानी कि प्रजा । आज़ादी से पहले अंग्रेज दंगे करवाते थे । अंग्रेज तो चले गए... लेकिन हारी हुई बाजी जीतने का फोर्म्युला छोड़ गए। आज देखते हैं कि हमारे चुने हुए प्रतिनिधिओं की नज़रों में हमारी, यानी हम प्रजा की, क्या औकात है ।

(मंच के दोनों छोर पर दो प्रतिनिधि खड़े हैं । उनमें से एक प्रतिनिधि हिन्दुत्व का प्रतिनिधित्व करेगा और दूसरा इस्लाम का । दोनों के सामने प्रजा घुटनों के बल बैठी है।)

नेपथ्य से कोरस : आज अयोध्या में राम मंदिर के राजनीतिक शिलान्यास की तैयारियाँ हो रही हैं या फिर दोनों ओर से गड़े मुर्दे उखाड़ने की प्रक्रिया हो रही है ।

हिन्दू प्रतिनिधि : जय जय श्री राम... वाह ! रामभक्तों की इस जनमेदनी को देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। हिन्दुत्व भारतवर्ष का सबसे पौराणिक धर्म है। ये हिन्दु राष्ट्र है। अयोध्या कि ये पवित्र भूमि, रामजन्म भूमि है। यहाँ राम मंदिर नहीं तो क्या बाबर की मसजिद बनेगी ? बोलो ! बोलो राम मंदिर ही बनेगा...

(प्रजा जो घुटनों के बल बैठी है, वो अपने प्रतिनिधि के सामने भेड़ बन जाती है और 'मे...मे...मे...' कहकर प्रतिसाद देती है ।)

इस्लाम का प्रतिनिधि : इस देश पर इस्लाम ने हजारों साल हुकूमत की है। ये देश मूलतः इस्लामियों का है। हम इस्लामी हैं। हम पाकिस्तानी नहीं हैं। इस पाक भूमि पर पैगंबर साहब पहले आए थे। यहाँ बाबरी मसजिद नहीं तो क्या राम मंदिर बनेगा ? बोलो, बोलो ! बाबरी मसजिद ही बनेगी ।

(प्रजा जो घुटनों के बल पर बैठी है वो अपने प्रतिनिधि के सामने भेड़ बन जाती है और 'मे...मे...मे...' कहकर प्रतिसाद देती है।)

हिन्दू प्रतिनिधि : ये हिन्दू राष्ट्र है। इसे संपूर्णतः हिन्दू राष्ट्र बनाना ही हमारा एक मात्र धर्म है। बोलो...'जय जय श्री राम'। आज राम मंदिर का शिलान्यास है और ये करने से हमें कोई नहीं रोक सकता। इस देश का संविधान भी नहीं।

इस्लाम का प्रतिनिधिः हम तैतीस करोड़ हैं, अल्पसंख्यक नहीं हैं। इस देश की राजनीति में हमारी निर्णायक भूमिका है। हमें ज़िहादी कहकर दुत्कारा जाता है। कुरान-ए-शरीफ के रचयिता पैगंबर साहब की इस पाक धरती पर राम मंदिर का शिलान्यास होने जा रहा है। हम इसका विरोध करते हैं। बोलो...बोलो...हम इसका विरोध करते हैं!

(प्रजा भेड़ की तरह 'मे...मे...मे...' कहकर प्रतिसाद देती है ।)

हिन्दू प्रतिनिधि : हिन्दुओं के हिन्दुस्तान में आज हिन्दुत्व खतरे में है... हमें हिन्दुत्व को बचाकर संपूर्ण हिन्दू राष्ट्र बनाना है । चलो, मेरे साथ चलो । हमें हिन्दुत्व बचाना है ।

इस्लाम का प्रतिनिधि : बिन सांप्रदायिक घोषित इस देश में आज इस्लाम खतरे में है । चलो, मेरे साथ चलो। हमें इस्लाम बचाना है ।

(मंच के दोनों ओर से हिन्दू और इस्लाम के प्रतिनिधि के सिवा सभी पात्र भेड़ की तरह 'मे...मे...मे...' करते हुए उनके पीछे चल देते हैं। वो दोनों मंच के मध्य मे पहोंचते हैं।)

हिन्दू : इस्लाम हमारा दुश्मन है। टूट पड़ो इन पर।

इस्लामी : हिन्दुत्व हमारा दुश्मन है। टूट पड़ो इन पर।

(दोनों प्रतिनिधियों का एलान होते ही सभी पात्र जो भेड़ बने हुए हैं वो सभी भेड़ों की तरह 'मे...मे...मे...' करते हुए एक दूसरे से भिड़ते हुए मंच पर ही मर के गिर जाते हैं । दोनों प्रतिनिधि खड़े होकर ये तमाशा देख रहे हैं ।)

नेपत्थ से कोरस : कौन मरा ?

किसने किसे मारा ?
'इंसा' से पूछो... किसने किसे मारा...
खून...
इन्सानियत का हुआ
बलात्कार बिन सांप्रदायिकता का हुआ
टुकड़े किए गए
नहेरू के फूल से बच्चों के
नंगी की गईं... सरेआम
सूतवाले बापू की माँ-बेटियाँ
रौंदे गए...
भूखे, बेबस, बेसहारा सपने,
ये धर्म के दलाल

हमें कठपुतलियाँ बनाते हैं
और हम युँ बन भी जाते हैं।
ये हलाल करते हैं हमारा
कत्लखाने के किसी बकरे की तरह
और हम हलाल हो भी जाते हैं ।
शायद...
इस देश को गुलामियत की आदत हो चुकी है
और हम गुलाम ही बने रहना चाहते हैं।

v v v

•
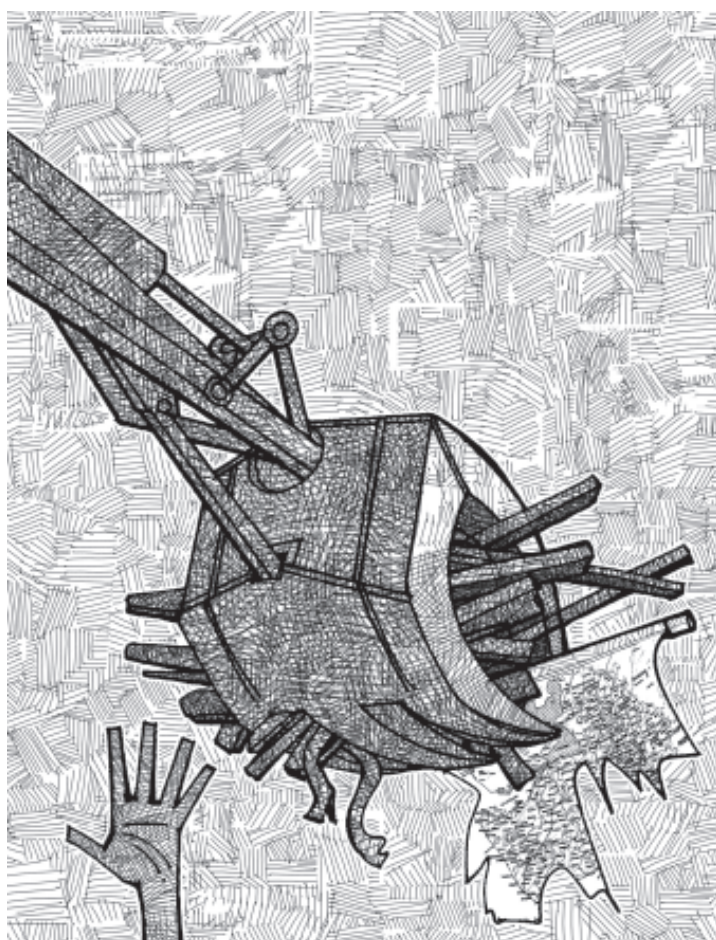
बुलडोज़र

एक दिन मैं 'भाषा' संस्था द्वारा आयोजित एक मीटींग में गया था । यहाँ मेरी पप्पू सांसी नामक एक लड़के से मुलाकात हुई । वो बरोडा में रहता है । उसने मुझे अहमदाबाद में बसे सांसी समाज की अवदशा के बारे में अवगत कराया । १९६० के दशक में कई वर्षों तक घुमंतू जीवन जीने के बाद राजस्थान से आकर बसे सांसी समाज के लोगों ने एक नया नाम अपनाया था । 'डबगर'।

अहमदाबाद में मणिनगर के कराची रेलवे क्रौसिंग के पास बसे इन गरीबों की झुग्गियों को 'अहमदाबाद नगर निगम' ने कई बार तोड़ा था। कई सालों से बसे ये घुमंतू अब शहर की खूबसूरती में दागनुमा हो गए थे । इनसे कागज-पत्तर माँगे जा रहे थे जो उनके पास नहीं थे । पाँच साल इन्तज़ार, पैंसठ बार 'अहमदाबाद नगर निगम' के धक्के, कई आवेदन पत्र, भूख हड़ताल... सब किया । दस बाय दस की जमीं के लिए उनका संघर्ष अब भी जारी है, उन्हें देश की उच्च न्यायालय से न्याय की आशा है।

घुमंतू ठहरना चाहता है लेकिन नक्शे बेचनेवाले इन लोगों के लिए सरकार के पास कोई ठिकाना नहीं है । इस नाटक का जन्म इस बस्ती में घटित कई सत्य घटनाएँ, लोगों का जीवन, उनकी हताशा और आशाओं पर आधारित है ।

•

पात्र

पात्र १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ । जज

हवलदार । थानेदार । मुकेश । राखी । मुन्ना । राजु

रम्या । पक्या । छोटु । बुड्ढा । मौसी

गौरी । राजेश । कल्लु । मंगा । चाचा

रामसरुप । मंजु । माला । बूढ़ी औरत

रेशमिया । अधिकारी १,२ । पुलीस इन्स्पेक्टर

मयूरभाई । कर्मचारी । औरत । बस्तीवाला

पुलीस कॉन्स्टेबल । सीमा । बच्चा । बच्ची

टोमी । औरत । मोन्टी

(दृश्य १)

(सभी कलाकार दर्शकों के बीच बैठे हैं। ढोल बज उठता है। अचानक दर्शकों में से पात्र १ उठता है।)

पात्र १ : अरे... नाटक शुरू करो भाई...

(ढोल की तपाक)

पात्र २ : खेल खेल में खेल, ओ साथी...
खेल खेल में खेल...

सभी : खेल खेल में खेल, ओ साथी...
खेल खेल में खेल...
शोषितों का खेल है, साथी
रोटी का ये खेल
मजदूरों का खेल है साथी
भूखों का ये खेल
खेल खेल में खेल, ओ साथी...
खेल खेल में खेल...
सिस्टम... सिस्टम... दर्पण... दर्पण... (२)
मौत का है ये मातम... मातम... (२)
रोते बिलखते बच्चे हमारे (२)
घर में लटकती लाशें हमारी (२)
खेल खेल में खेल, ओ साथी...
जंगल काटो
जमीन बाँटो

नदियाँ बेचो
जंगल काटो, जमीन बाँटो, नदियाँ बेचो (२)
बेचो... बेचो... बेचो... बेचो...
ओ भईया... देश भी बेचो...
देश भी बेचो... देश भी बेचो...
गली, मोहल्ला, गाँव, शहर (२)
करते हैं ये खेल (२)
आवाज़ उठाते
सच दिखाते,
मिट्टी का ये खेल हम (२)
खेल खेल में खेल, ओ साथी...
खेल खेल में खेल...

(गीत समाप्त होते ही पात्र ४,५,६,७,८ रंगमंच के मध्य में आकर बैठ जाते हैं। पात्र १,२,३ पुलीस और हवलदार बनकर उन्हें घेर लेते हैं।)

१,२,३ : कौन हो तुम लोग ?

४,५,६,७,८ : घुमन्तु हैं, साब ।

१,२,३ : कहाँ से आए हो ?

४,५,६,७,८ : घुमन्तु हैं, साब।

१,२,३ : कहाँ जाओगे ?

४,५,६,७,८ : घुमन्तु हैं, साब।

१,२,३ : यहाँ कब से ठहरे हो ?

४,५,६,७,८ : आप से पहले, साब।

१,२,३ : जबान संभालकर बात करो!

४,५,६,७,८ : संभाल ली... माई बाप... संभाल ली...

१,२,३ : काम क्या करते हो ?

४ : वैसे तो कलाकार हैं साब... अब जंगल-जमीन कुछ नहीं रही... इसलिए भीख माँगकर गुज़ारा करते हैं ।

१,२,३ : कलाकार ? हं... हम जानते हैं की तुम लोग किस तरह के कलाकार हो। हमें पढ़ाया गया है की तुम सभी जनजातीय लोग जन्मजात चोर हो।

(सभी डर जाते हैं।)

५ : नहीं साब... हम चोर नहीं हैं... हम चोर नहीं हैं... हम तो परंपराओं से कलाकारी करके गुज़ारा करते आए हैं... मजदूर हैं... खेतिहर हैं... कलाकार हैं... हम चोर नहीं हैं ।

१,२,३ : हमें पढ़ाना बंद करो और चुपचाप थाने चलो।

सभी : थाने ?

(ढोल की तपाक)

(दृश्य २)

कोरस : ये कलम भी क्या खूब चीज है,
ये चलती है तो नसीब बदलती है,
तकदीर पलटती है
ये किसी की आवाज़ बनती है,
तो किसी को कैद करती है।
ये तलवार भी है और पिस्तौल भी
ज़िंदगी की तरह इसके भी कई रंग हैं

इसकी स्याही से,
कल, आज और कल है।
एक दिन
इसकी दो बूंद लाल स्याही से
कई बच्चे मर गए
कई आशियाने टूट गए
घर, बेघर हो गए
गरीब घुमक्कड़ हो गए
भूखे पेट की अंतड़ीयों से
आवाज़ आई,
मेरा घर मत तोड़ो, भाई
एक विदेशी विचार
आयात किया गया
क्लीन द सिटी
अत्र तत्र सर्वत्र
सुंदरम्... सुंदरम्... सुंदरम्...
ये कैसे हो सकता है ?
लोकतंत्र है, भाई।
यहाँ सब कुछ हो सकता है।
सरकारी कलम और स्याही है, भाई
अत्र तत्र सर्वत्र
सुंदरम्... सुंदरम्... सुंदरम्...

(एक कलाकार जज की वेशभूषा में बुद्धिजीवी पागल का अभिनय करते हुए)

पागल : बंद करो, ये चिल्लम-चिल्ली।

सभी : (डरकर बिखर जाते हैं) अरे... पागल आ गया... पागल आ गया।

पागल : खबरदार जो मुझे पागल कहा! पागल को पागल कहनेवाला पागल होता है।

सभी : माफ करना माई बाप, माफ करना।

जज : चलो, माफ किया। इस तरह से कुछ नहीं होगा। काम करना होगा। मेरी कलम ने तुम्हें 'पावर' दिया है। तुम सरकारी नौकर हो। यु आर ऑल ब्यूरोक्रेट्स। नो इमोश्न्स, ओन्ली इम्प्लीमेन्टेशन। हमें देश को सुंदर बनाना है। इसलिए इस देश से गरीबों को... मेरा मतलब है,

अत्र तत्र सर्वत्र,

सुंदरम्... सुंदरम्... सुंदरम्...।

५ : अबे, ये पागल तो बड़ी सयानी बातें कर रहा है।

६ : क्युं न करें ? हाई प्रोफाईल पागल है, भाई।

सभी : हाई प्रोफाईल ?

(ढोल की तपाक)

(दृश्य ३)

पात्र १ : खुश खबर... खुश खबर... खुश खबर...

सभी : खुश खबर ?

पात्र १ : हाँ... शहर के पुलीस थानों के लिए खुश खबर !

सभी : पुलीस थानों के लिए ?

पात्र २ : आज के अखबार की सुर्खियाँ।

पात्र ३ : 'संदेश'।

पात्र ४ : पुलीस ने लूट के गुनाह में छारा गेंग को पकड़ा!

पात्र ५ : 'गुजरात समाचार'।

पात्र ६ : पुलीस एनकाउन्टर में दो खुंखार डफेर मारे गए!

पात्र ७ : 'टाईम्स ऑफ इंन्डिया'।

पात्र ८ : टू पारधीस अरेस्टेड इन मल्टीपिल रोबरीस एन्ड थेफ्ट।

पात्र १ : शहर का एक पुलीस थाना।

हवलदार : साहब इन पारधियों का क्या करें ?

थानेदार : अबे, गधे! तुझे हवलदार किसने बनाया? इनके नाम एफ.आई.आर. दर्ज करो।

हवलदार : ठीक है, साब। लेकिन धारा कौन सी लगाऊँ ?

थानेदार : (गुस्सा होके) अबे, तूने ट्रेनींग कहाँ से ली है ? आई.पी.सी. धारा ३९४ और ३९५ इन पारधियों के लिए ही तो बनाई गई हैं।

हवलदार : ठीक है, साब।

थानेदार : और सुन, इन पारधियों की हिरासत के बारे में शहर के हर एक पुलीस थाने में वायरलेस मेसेज कर दो। ये घुमक्कड़ बहोतों का सरदर्द कम करेंगे।

(ढोल की तपाक)

(दृश्य ४)

(दोपहर का समय है।)

शहर के बीच स्थित एक बस्ती का दृश्य। बस्ती में कई छोटी-मोटी प्लास्टीक और फटे-पुराने कपड़ों से बनीं, रंग-बिरंगी झुग्गियाँ दिखाई दे रही हैं। लोगों

की चहल-पहल है। बच्चे टप्पर (पथ्थर का खेल) खेल रहे हैं। कोई बर्तन मांज रहा है तो किसी का आपस में झगड़ा हो रहा है। मुकेश अपनी झुग्गी में बैठा खाना खा रहा है और उसकी बीवी रोटियाँ बना रही है। मुकेश की झुग्गी के बाहर नीम की डालियाँ रखी हैं।)

मुकेश : आज बहोत ठंड है... आज भीख माँगने मत जा।

राखी : (रोटी सेकते हुए) माँगने नहीं जाऊँगी तो शाम को क्या खायेंगे ? मुन्नी के बदन पर दाने दिखाई दे रहे हैं। भगत कह रहा था कि इसे बड़ी माताजी पधारी हैं।

(मुन्नी की ओर देखकर)

ये देख... इसके बदन पर दाने कैसे फूट रहे हैं ! कल रात से बुखार भी तेज है... आज सुबह नीम लाकर बाँधी है और माताजी की थाली भी रख दी है... शाम को इसे माता के मंदिर ले जाना मत भूलना।

मुकेश : (खाना खाकर थाली में हाथ धोते हुए) हाँ... ठीक है...

राखी : कल थाने क्या हुआ ?

मुकेश : क्या होगा ? वो साले पटेल ने सबको पेट भर के मारा। ये तो अच्छा था कि मुखीया साथ था। उसने किसी वकील को बुलाया तब जाकर छूटे... नहीं तो गए थे बारा के भाव।

राखी : ये हरामी न तो बस्ती में चैन से जीने देते हैं न बाहर... सुबह फिर से पुलीस आई थी... कह रहे थे कि आज तो बस्ती पर बुलडोज़र चलनेवाली है।

मुकेश : (चिंतित होकर) क्या बात कर रही है ?(कुछ सोचकर) कितने बजे का समय बताया है उसने ?

राखी : बोल रहा था कल सुबह दस बजे बुलडोज़र आ जायेगा। (घबराकर) क्या वो लोग सच मे आएँगे... मुकेश...मुन्नी... को कहाँ रखेंगे ?

मुकेश : राजु कहाँ है... ?

(ढोल की तपाक)

(दृश्य ५)

(बस्ती का दूसरा छोर। पाँच-छः लड़के गोलाकार में बैठे जुआ खेल रहे हैं।)

राजु : (मुट्ठी में दाना हिलाते हुए, दस रुपये का नोट बीच में रखता है।) ये माल गुल है... गुल है... चल, है कोई... गुल है... गुल है...

रम्या : दो गुल है... चल फेंक तीरी...

राजु : (दानी हाथ में हिलाता है। दस का नोट और रखते हुए) चल भाई.. ये माल भी गुल हुआ... गुल है... गुल है... है कोई... है कोई मर्द..?

पक्या : दो गुल है भाई... चल फेंक दो अंखिया... मर्द को दर्द नहीं होता।

राजु : (हँसते हुए उन दोनों को जोश चढ़ाते हुए) आती है... भाई... आती है... तेरी तीरी और तेरी दो अंखिया... (दानी हाथ में हिला रहा है) ये देख अब कैसे तेरा बाप बारा अंखिया लेकर आता है...(दाना छोड़कर, चिल्लाकर) छुट छक्का...

पक्या : (चिल्लाकर) तीरी... तीरी...

रम्या : अंखिया... अंखिया...

(दाने में तीरी का जजमेन्ट आता है और राजु हार जाता है। रम्या खुश होकर दस का नोट उठाता है।)

राजु : धत्त तेरी की... पता नहीं आज सुबह किसका मुँह देखा था... एक दाव हाथ नहीं आ रहा है...

पक्या : दस रुपये निकाल भाई...

राजु : अबे देता हूँ... देता हूँ... तेरी तरह लुख्खा नहीं हूँ। (जेब में से दस रुपये निकालकर) ये ले... चल, अब फेंक दाना। (दाना अब रम्या के हाथ में है।)

राजु : (बीस रुपये का दाव लगाते हुए) चलो भाई.. हारे... हारे... रम्या हारे... रम्या, ये माल गुल है...

छोटु : दो गुल है... चल रम्या मार बारा अंखिया...

राजु : अबे तिल्ली की तीरी आ रही है...

रम्या : (बीस रुपये का दाव रखते हुए) चलो भाई ये माल भी गुल है...

(जहाँ जुआ चल रहा है वहाँ एक छोटी सी चाय की किटली पर एक बुड्ढा बैठा है।)

बुड्ढा : (राजु से) ... ए... राजु... लगा दे... ये माल भी गुल कर दे... ये सब तेरा है... ये बाबा की आँखें देख सकती हैं...

राजु : (खुश होते हुए) क्या बात कर रहे हो बाबा... ये माल जीता तो दस रुपये तेरे... ए... रम्या तेरा माल भी गुल है... फेंक बाबा की दो अंखिया...

रम्या : (दाना हाथ की मुठ्ठी में हिलाते हुए) अबे बाबा की दो अंखिया नहीं... बारा अंखिया आ रही हैं... ये (रम्या दाना छोड़ता है... सब लोग चिल्ला उठते हैं...) देख...

रम्या : छुट छक्का...

पक्या : छुट चोंक...

राजु : बाबा की दो अंखिया ...

(दाना का जजमेन्ट नहीं आता। और राजु दाना फेंकता है... देखनेवाले और खेलनेवाले चिल्ला उठते हैं।)

राजु : छुट छक्का...

पक्या : दो अंखिया...

रम्या : फेंक तीरी...

(राजु के हाथों से तीरी का जजमेन्ट आता है... और वो अपने हाथ जोरों से

दाने को मारता है)

पक्या और रम्या : कोई माल को हाथ नहीं लगायेगा। सब अपना है...

(बुड्ढा बाबा भागने लगता है की हारा हुआ राजु उसे देख लेता है।)

राजु : अबे बुड्ढे... कहाँ भाग रहा है ? काली जबान का साला...

बुड्ढा : अबे तेरी तकदीर ही खराब है तो मैं क्या करुँ ? ये ले, चाय पी।

राजु : (और भी गुस्सा होते हुए) अबे पनोती... तेरी चाय की तो ऐसी तैसी... भाग यहाँ से नहीं तो उलटा लटका के मारूँगा साले को...

(इसी बीच मुकेश दौड़ता हुआ आता है। वो हांफ रहा है।)

राजु : अबे क्या हुआ... कुत्ता पीछे पड़ा है क्या ?

मुकेश : (हांफते हुए) कुत्ता नहीं... कुत्ते पीछे पड़े हैं....

राजु : बकवास मत कर। आज बहोत पैसा हार गया हूँ। (बीड़ी जलाता है) बोल, क्या बात है? (बाकी के लोगों ने जुआ चालू रखा है।)

मुकेश : पैसे हार मत...बचा कर रख। अपनी झुग्गी बनाने के काम आयेंगे...

राजु : क्या बकवास कर रहा है ?

मुकेश : कल कॉर्पोरेशन वाले आयेंगे और सारी बस्ती पर बुलडोज़र चलायेंगे...

(चाय की किटली के पास बैठे जुआ खेल रहे सभी लोग खड़े हो जाते हैं।)

राजु : क्या बात कर रहा है ? (किस्मत को कोसते हुए) आज का दिन ही साला खराब है।

पक्या : मुकेश, झुग्गियाँ तोड़ देंगे तो इतनी ठंडी में हम जायेंगे कहाँ...?

राजु : (गुस्सा होकर) पिछले साल भी मादर बख्तों ने ठंडी में झुग्गियाँ तोड़ी थीं। मेरा तीन साल का टिनीया ठंडी में ठुंठकर मर गया था... इस बार पता नहीं किस की बारी है।

रम्या : और वो बूढ़ा मणी काका... वो भी तो रात को जो सोया वो सोया... बिचारे की कभी सुबह ही नहीं हुई...

मुकेश : (चिंतित होकर) मुन्नीया को बड़ी माताजी निकल रही है।

राजु : तेरी भाभी भी पूरे दिन से है।

छोटु : राजु... कुछ करना होगा... नहीं तो इस ठंडी में हालत खराब हो जायेगी।

राजु : क्या कर सकते हैं ? पिछले दस सालों में नौ बार हमारी झुग्गियों पर बुलडोज़र चल चुका है। क्या बिगाड़ लिया हम लोगों ने उनका ?

मौसी : पहले तो दस-पन्द्रह दिन की नोटीस भी देते थे... सामान इधर-उधर करने के वास्ते टाईम भी मिल जाता था । पर अब तो सालों को जब जी चाहता है आ जाते हैं।

नेपथ्य से कोरस : बुलडोज़र भाई... बुलडोज़र
कॉर्पोरेशन बुलडोज़र।

(दृश्य ६)

(रात आठ बजे का समय है। बस्ती में किसी के घर चूल्हा जल रहा है, तो किसी के घर नहीं। ठंडी हवा काफी तेज चल रही है। प्लास्टिक से बनी एक कच्ची झोपड़ी में एक पाँच साल का बच्चा रो रहा है। उस बच्चे की माँ पत्थर पर चटनी पीस रही है। लोगों का बस्ती में आना-जाना चल रहा है।)

गौरी : (बच्चे से, गुस्से में) अरे ! काई को इतना गला फाड़ रहा है ? तेरा बाप मर गया क्या ? पड़ा होगा साला दारू पी के... पता नहीं रात में भी किसके कान साफ कर रहा होगा ? ए.....गप..बेस.. चुप कर । नहीं तो मार-मार के भुरता बना दूँगी...क्या मँगता तेरे को ?

बच्चा : (रोते हुए) रोटी दो ना... भूख लगी है ।

गौरी : अरे ! देती हूँ... थोड़ा धीरज तो कर.... देख नहीं रहा है कितनी हवा चल रही है.... हवा थमने दे फिर चूल्हा जलाकर तेरे को कुछ बनाकर देती हूँ।

(राजेश, इस औरत का पति प्रवेश करता है।)

राजेश : (हवा से हिलती हुई झुग्गी में बैठते हुए) क्या है... क्युं रो रहा है ये...

गौरी : इतना क्या टाईम लगा तेरे को आज ? तू क्या रात में भी लोगों के कान की मैल निकालता है?

राजेश : अरे मैं तो छः बजे का आ गया हूँ... वो रामसरूप चाचा बस्ती के बारे में बात कर रहे थे... वहीं बैठ गया था । (बच्चा अभी भी रो रहा है, बच्चे की ओर हाथ करते हुए) अरे.... इसका रेडियो तो बन्द कर... क्या मँगता है इसको ?

गौरी : रोटी माँग रहा है... मैंने कहा थोड़ी देर थम, हवा रुकने दे । लेकिन मानता ही नहीं ।

राजेश : अरे... तो एक-दो रोटी बना दे ना... ये हवा तो चलती रहेगी... (समझाते हुए) ठंडी का टाईम है... भूख ज़्यादा लगती है बच्चे को ।

गौरी : मेरे को क्या है... मैं तो बना देती हूँ... दोनों बाप-बेटा खा लेना मिट्टी।

राजेश : हाँ, हाँ... खा लेंगे... तू जल्दी चपाती बना (बच्चे को बुलाते हुए) ओ कल्लु... इकडे आ...

(कल्लु बाप के पास आता है। वो अब भी रो रहा है)

अरे... गप बेस ना... देख तेरी माँ को मैं डाँटा न... अब रोने का नहीं... चल। वो गाना तो सुना जो तू कल गा रहा था... अरे वो कल जो नाटक करने आया था ने ... उसमें का गाना... क्या था वो ?... बुलडोज़र...

कल्लु : (अपनी तोतली भाषा में गाते हुए) बुलडोज़ल...भाई बुलड़ोजला...कोलपलेशन... बुलडोज़ल....

राजेश : अरे वाह... तेरे को तो गाना याद हो गया ।

(गौरी चपाती बनाती है । तेज हवा चल रही है । प्लास्टिक हवा में उड़ा जा रहा है ।)

गौरी : (चपाती बेलते हुए) तू सुबह काम के लिए निकला की रामबाग पुलीस थाने से पुलीस आई और बोल के गई की अपना बिस्तरा-पोटला उठा लो, कल कॉर्पोरेशनवाले बस्ती तोड़ने आएँगे ।

(मंगा जिसका शरीर दुबला सा है और जिसके चहेरे पर दारू पीने से सूजन आ गयी है, वो एक कोने में खटीया पर बैठा दारू पी रहा है।)

मंगा : (चिल्लाते हुए) अरे ! ऐसे कैसे तोड़ देंगे ? हरामी के पिल्ले... कल तो बुलडोज़र के आगे ही सो जाऊँगा... देखते हैं कैसे बस्ती तोड़ते हैं !

राजेश : ओ.... मंगा भाई... उनका बस चले तो वो हमारी झोपड़ियों के साथ हम पर भी बुलडोज़र चला दें... अब सरकार गरीबी नहीं, गरीबों को हटाने की बातें करती है।

मंगा : बिलकुल सही बोला, राजुभाई। बिलकुल सही। ये लोग साला अपने जैसे लोगों को खतम करके ही दम लेंगे । हमारी और हमारे बच्चों की लाशों पर ये शहर 'मेगा सिटी' बनायेगा ।

राजेश : (गौरी उसे खाना परोसती है । बचपन से घूमते-घूमते, मुश्किल से इस जगह टिकने के लिये ठिकाना मिला तो ये भी चला जाएगा... समझ में नहीं आता... बच्चों को इस ठंड में कहाँ लेकर जाऊँ ?

मंगा : कहीं नहीं जाने का। यहीं रहने का। ये जगह छोड़ी तो मरे समझो।

(मुकेश आता है।)

मुकेश : ए...राजेश, मंगा। चल रे, झट कर। रामसरुप चाचा ने मीटिंग

बुलायी है... सब लोग चाय की टपरी पर मिल रहे हैं। चल जल्दी कर।

(मुकेश चला जाता है।)

मंगा : ये लो, एक और मीटिंग ! क्या फायदा ? चुप रहकर इस सरकार से लड़ा नहीं जा सकता। उसके लिए हम सभी को बुलडोज़र के आगे सो जाना चाहिए । तो ही बस्ती टूटने से बचेगी। नहीं तो... सरकार से बड़ा कौन है भाई ?

(दृश्य ७)

(रात का समय है। सर्द हवा चल रही है। बस्ती के कुछ बच्चे, बूढ़े, औरतें और लड़के चाय की दुकान पर बैठे हैं। दुकान बस्ती के छोर पर है, वहाँ से सारी बस्ती दिखाई दे रही है। बस्ती में बिजली नहीं है, सिर्फ एक म्युनिसिपालिटी की लाईट है जो कभी जलती है तो कभी बंद हो जाती है । कुछ लोगों के पास लालटेन है जिसकी रोशनी में सभी मीटिंग कर रहे हैं।)

रामसरूप : हाँ भाई , सरकार तो बहोत बड़ी है... हम 'रास्ते के पत्थर' कहाँ उनके साथ लड़ सकते हैं ?

मंगा : तो आपका मतलब है कि हमें बस्ती खाली कर देनी चाहिए ?

रामसरूप : मैने ऐसा तो नहीं कहा। आगे करना क्या है इसी के लिए तो मीटिंग बुलाई है ।

मंगा : अरे, करना क्या है ? पिछले दस सालों में इस बस्ती को नौ बार तोड़ चुके हैं ये हरामी। कल भी यही करेंगे... इन्हें रोकना है तो सभी को बुलडोज़र के आगे सो जाना होगा ।

रम्या : और अगर बुलडोज़र हम पर चढ़ा दिया तो ?

मंगा : तो क्या ? मर जायेंगे ! और क्या ?

रम्या : अरे वाह ! आज तो बड़ी बहादुरी की बातें कर रहा है मंगा ! एक काम कर ना, कल सुबह जब पियेली उतरे न तब जरा ये बहादुरी बताना ।

मंगा : (दारू के नशे में, गुस्से से) अबे, तेरी तरह डरपोक नही हूँ... तेरे में हिम्मत है तो कल तू भी आ जाना ।

रम्या : हाँ... हाँ... देखता हूँ सुबह तेरी पुंगी कैसे बंद होती है ।

मंगा : ए... रम्या ! जबान संभाल कर बात कर, नहीं तो...

रामसरूप : (दोनो को शांत करते हुए) अरे... ओ मेरे भाईयों... ये वक्त झगड़ा करने का नहीं हैं । कुछ सोचने का है । इस मुसीबत का रास्ता निकालने का है ।

(रम्या और मंगा शांत हो जाते हैं ।)

मुकेश : (चायवाले से) ऐ... टोमी...सबको कड़क स्पेश्यल चाय पिला... दिमाग सबका ठंडा हो जाए।

मंगा : मुक्या, मेरे लिए बड़ी चाय (दारू) मँगवाना....

मुकेश : अबे, चुप न भईया.... बात करने दे ।

रम्या : एक आइडिया ! क्युं न हम बच्चों को बुलडोज़र के आगे कर दें। बच्चों के ऊपर तो वो बुलडोज़र नहीं चला सकते ।

पक्या : रम्या, तूने कल का पेपर पढ़ा ? मुंबई मे भी कॉर्पोरेशनवालों ने कई अपने जैसी बस्तियाँ तोड़ दीं और एक जगह तो कॉर्पोरेशन के बुलडोज़र ने झुग्गी के अंदर बैठे बच्चे को कुचल दिया।अबे इनका दिल नहीं होता क्या? बच्चों को बुलडोज़र के आगे रखने की गलती नहीं करने का ।

चाचा : अरे तो फिर क्या करेंगे ? अब रात में ही बिस्तर पोटले बाँधकर कहीं दूसरी जगह नहीं गए तो सुबह वो भी उठा के ले जाँएगे । फिर तो ऐसी ठंड में मौत ही समझो।

रामसरूप : मुकेश, तूने कॉर्पोरेशन को जो अर्जियाँ दी हैं, क्या उससे कुछ नहीं हो सकता ?

मुकेश : क्या होगा, चाचा ? अब तक सोलह बार अर्जी कर चुके हैं हमारी

रहने की कोई दूसरी व्यवस्था के लिए। लेकिन एक बार भी उन्होंने हमें सामने से जवाब नहीं दिया। ढाई साल हो गये कॉर्पोरेशन के धक्के खाते हुए।

(इसी बीच टोमी सबको चाय देता है।)

रामसरूप : देखो भईया... पिछले दिनों हम म्युनिसिपल कमिश्नर, मुकीम साब से भी मिले थे। उन्होंने हम घुमन्तुओं को मकान देने का वादा भी किया था ।

रम्या : अब रहने भी दो ये सरकारी वादे, चाचा। सरकार और उसके सरकारी नौकर। दोनों एक ही थाली में खाते हैं।

(अचानक एक औरत दौड़ती हुई आती है।)

मंजु : ए... राजेश... राजेश...

राजेश : (खड़ा हो जाता है) अरे, क्या हुआ मंजु ? इस तरह भागकर कहाँ जा रही है ?

मंजु : अरे, जल्दी चल रे... गंगा जोरों से साँस ले रही है... बुखार भी बहोत है... (रोते हुए) बेचारी मछली की तरह तड़प रही है... चल, जल्दी चल, तेरी औरत तेरे को बुला रही है ।

(सभी हड़बड़ाकर उठ खड़े होते हैं।)

राजेश : (उसकी आँखों में आँसु आ जाते हैं) चाचा... माफ करना... बस्ती का मामला था, मीटिंग में रहना भी चाहता था लेकिन गंगा...

रामसरूप : अरे, ये क्या बोले जा रहा है... जा तू, जल्दी घर जा और उसे अस्पताल ले जा।

(राजेश मंजु के साथ जाता है।)

मुकेश : बेचारा राजेश... सारा दिन लोगों के कान साफ करके जो भी कमाता है आधा तो बेचारी नन्ही सी बच्ची गंगा की दवाई के लिए लग जाता है। उस नन्ही सी जान के दिल के छेद ने जैसे इसकी ज़िंदगी में भी छेद कर दिया है।

रामसरूप : (मोन्टी नाम के लड़के से) ए... मोन्टी... तू जाकर राजेश की मदद कर... चल भाग जल्दी ।

(मोन्टी जाता है ।)

मुकेश : (एक अनजाने डर से) चाचा... मेरी बेटी को बड़ी माताजी पधारी है... सारा बदन छन्नी हो गया है। दर्द के मारे बेचारी सो भी नहीं पा रही है...

रम्या : मेरी बीवी आठवें महिने से है । कहाँ लेकर जाऊँ उसे ?

पक्या : मेरी औरत को तो अभी सवा महिना भी नहीं हुआ है, इतने छोटे बच्चे को कहाँ लेकर जाऊँगा?

माला : और मैं अपनी एक सौ पाँच साल की बूढ़ी माँ को इस ठंड में कहाँ लेकर जाऊँ ? कुछ करना होगा रामसरूप भाई, नहीं तो झुग्गी के साथ मेरी माँ गई समझो।

रामसरूप : अरे शुभ-शुभ बोलो माला बहन... भगवन न करे ऐसा कुछ हो। तेरी बूढ़ी सवा सौ साल जियेगी ।

माला : जोगमाया करे ऐसा ही हो ! मरद तो मर गया, अब बूढ़ी माँ के सिवा और कौन है मेरा ?(रोने जैसे हो जाती है) मैंने जोगमाया की मन्नत रखी है... अगर कल बस्ती नहीं टूटी तो मैं एक नारीयल का प्रसाद चढ़ाऊँगी!

मुकेश : (रामसरूप से) चाचा, क्युं न कॉर्पोरेटर से मिला जाए... वो शायद इस मामले में कुछ कर पाए।

पक्या : कौन ? वो मयूरभाई ? अरे, वो भगवाधारी क्या करेगा ?

रामसरूप : (गुस्सा होकर) अरे भाई! जाकर मिलने में क्या हर्ज है ? वो जो भी है, आखिर अपने इलाके का कॉर्पोरेटर है। म्युनिसिपालिटी हमारी नहीं तो उनकी तो सुनेगी ही।

पक्या : चाचा तुम्हें पता है न? परसों के दिन मेरा टिनीया नक्शे के धंधे के वास्ते नदी के उस पार के अहमदाबाद में गया था और उसे भिखारी समझकर

'चिल्ड्रेन्स होम'वालों ने पकड़ लिया था।

रामसरूप : हाँ। तो ?

पक्या : मैं जब टिनीया को छुड़ाने गया तो उस हरामी सुप्रिन्टेन्डन्ट ने मेरे अहमदाबाद में बरसों से रहने की साबिती अपने इलाके के कॉर्पोरेटर के लेटर पैड पर माँगी ! और तो और टिनीया मेरा बेटा है, इसकी साबिती के लिए राशन कार्ड माँगा !

रम्या : फिर तूने क्या किया ?

पक्या : क्या ? करता क्या ? दौड़ता-भागता इसी मयूरभाई के पास गया। सारी बात सुनने के बाद वो क्या बोला पता है ?

मुकेश : क्या ?

पक्या : (मयूरभाई की अदा में) उसने पूछा, 'तू रहता कहाँ है ?' मैंने कहा, 'यहीं डबगरवास में, स्टेशन के पीछे वाली बस्ती में।' तो बोला, 'मैंने तो तेरे को कभी देखा नहीं वहाँ पर ।' मेरा दिमाग गया, मैने भी चोंटा दी। मैं बोला, 'साब आप शायद भूल रहे हैं । आप मेरे घर आये थे'। वो बोला,'क्या ? मैं ? तेरे घर ? कब?' मैंने कहा, 'चुनाव के वक्त। वोट माँगने ।'

(सभी हँसते हैं ।)

रम्या : क्या बात करता है ? बोल दिया तू ? फिर क्या हुआ ?

पक्या : क्या होता ? गुस्सा हुआ। बोला, 'तुम बस्तीवालों के तो मैं वोट निकलवाऊँगा। देखता हूँ तुम लोगों ने किसको वोट दिया है।'

(मयूरभाई की स्टाइल करते हुए पक्या को देखकर सभी हँसने लगते हैं ।)

मुकेश : फिर तेरे टीनीया का क्या हुआ ?

पक्या : क्या होता ? दो दिन बेचारा सड़ता रहा 'चिल्ड्रेन्स होम' में। फिर जैसे-तैसे सुप्रिन्टेन्डेन्ट को पैसे देकर राशन कार्ड पे छुड़ाकर लाया।

मुकेश : चाचा, अगर मयूरभाई ऐसा आदमी है तो उससे मिलने से कोई

फायदा नहीं ।

रामसरूप : (चिंतित होकर) तो फिर क्या करेंगे ? मेरी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा।

बूढ़ी औरत : (उठकर लकड़ी के टेके जाने लगती है ।) रामसरूप बेटा... गरीब कभी बीते हुए कल में और आनेवाले कल में नहीं जीता । अपने आप को जिंदा रखने के लिए उसे आज और अब में ही जीना पड़ता है।

(उठकर फिर से सब की ओर देखते हुए)

हम जैसे गरीब आज जिंदा हैं तो वो भी ऊपरवाले की महेरबानी है, नहीं तो ये साहूकार और सरकार का बस चले तो... रात बहोत हो चुकी है। कल की लड़ाई कल लड़ लेंगे। जाओ, सब लोग अपनी-अपनी झोंपड़ियों में रात बिता लो।

(दृश्य ८)

(अँधेरी सर्द रात। बस्ती के छोर पर लगी लाईट कभी बस्ती को रोशन करती तो कभी अँधेरा कर देती है । आधी रात हो गयी है लेकिन लोग सो नहीं पा रहे हैं। कोई अपना बिस्तरा-पोटला बाँध रहा है तो कोई बर्तन ठिकाने लगा रहा है। कुछ छोटे बच्चे झुग्गी के बाहर सड़क पर आग जलाकर ठंड से बचने की कोशिश कर रहे हैं। कहीं बच्चों की खिल-खिलाहट सुनाई दे रही है, कहीं कोई दारू पीकर मस्त पड़ा बके जा रहा है। लोग अपना-अपना सामान बाँधकर बाहर रख रहे हैं। इन सारी गतिविधियों के बीच नेपथ्य से गाना सुनाई दे रहा है। मंगा, जो काफी दारू पिये हुए है, अपनी झोंपड़ी की लकड़ियाँ निकालकर एक तरफ रख रहा है।)

नेपथ्य से कोरस : गरीबों की गरीबी पे बुलडोज़र
बच्चों की पढ़ाई पे बुलडोज़र
बहनों के चुल्हों पे आया बुलडोज़र

बाबा की छत पे बुलडोज़र

बुलडोज़र, भाई बुलडोज़र

कोर्पोरेशन बुलडोज़र ।

(अचानक मंगा घर के बर्तन झुग्गी से बाहर फेंकने लगता है। उसकी पत्नी उसे रोक रही है। अगल-बगल कुछ लोग ये तमाशा देख रहे हैं। बाकी सभी अपने-अपने काम में लगे हैं।)

रेशमीया : अरे ! पगला गया है क्या ? (उसका हाथ पकड़ते हुए) कल घर टूटने वाला है और आज तुझे दारू पीकर मस्ती चढ़ी है ।

मंगा : (बर्तन हाथ में लिए) हाथ छोड़ मेरा...

रेशमिया : नहीं... नहीं छोडूँगी... तेरे को हो क्या गया है?

मंगा : मै बोलता हूँ... हाथ छोड़ मेरा, नहीं तो...

रेशमिया : नहीं तो क्या ? मारेगा मेरे को? मार ! तेरे को जितना मारने का है मार... निकाल मेरे पे गुस्सा... लेकिन तेरे को ये बर्तन-भांडे नहीं फोड़ने दूँगी।

मंगा : तू साली ऐसे नहीं मानेगी...

(बर्तन छोड़कर मंगा रेशमिया को मारने लगता है। उसके बाल पकड़कर झुग्गी में ले जाता है ।)

रेशमिया : (दर्द से कराहते हुए) अरे...हरामी... बाल छोड़ मेरे... बाल छोड़...

(आसपास के लोग इकट्ठा होने लगते हैं। मंगा घर में से लकड़ी निकालकर रेशमिया को बेरहमी से मारने लगता है... आसपास के लोग मंगा से रेशमिया को छुड़ाने की कोशिश करते हैं। रामसरूप, पक्या, मुकेश, रम्या सभी आ जाते हैं ।)

रामसरूप : ए... मंगा... छोड़ रेशमिया को... पागल हो गया है क्या... मैं कहता हूँ छोड़...

(आखिरकार इकट्ठा हुए लोग रेशमिया को छुड़ाने में सफल होते हैं। मंगा जैसे जानवर बन गया है। वो दारू के नशे में धुत्त है। रेशमिया भी चिल्ला-चिल्लाकर रो रही है। उसके बाल बिखर गए हैं ।)

रेशमिया : अरे... मार ! मार न मुझे, हरामी की औलाद! पता नहीं किन कुत्तों के साथ इतनी दारू पीकर आया है।

रामसरूप : ए... रेशमिया... चुप !

रेशमिया : काई को चुप बैठूँ? (रोने लगती है) मेरा क्या गुनाह था जो इस हरामी ने मुझे मारा? घर के बर्तन फेंकने से ही तो मना किया था। क्या गलत किया था मैंने? सारा दिन भीख माँगो और रात को इसकी मार खाओ। खुद तो कमाता नहीं है और मेरी कमाई भी दारू में उड़ा देता है, साला!

रामसरूप : ए... रेशमिया... तेरे को एक बार बोला ना .... बस अब चुप बैठ ।

रेशमिया : (उठकर, मंगा की और बढ़ती है। आसपास की औरतों ने उसे पकड़ रखा है।) नहीं चुप बैठूंगी चाचा... आज मैं इसके हाथ मर के ही रहूँगी... (पकड़े हुए हाथ छुड़ाते हुए) छोड़ो मेरे... को इसको मारने दो...मैं भी तो देखूं इसकी ताकत। अरे... रुक काई को गया... मार हरामी... मार मुझे... (रोते-रोते जैसे टूट पड़ती है) मार... मुझे। रोज़-रोज़ मरने से तो एक बार की मौत अच्छी ।

(माहौल करुण हो जाता है । रेशमिया रो रही है। मंगा एक जगह शांत खड़ा है।)

अरे... हरामी मारने से पहले ये तो सोचा होता की इस पेट में तेरी आठ महिने की औलाद पल रही है... उसे कुछ हो जाता तो... उस नन्ही सी जान के बारे में भी नहीं सोचा ?

मंगा : (अपनी चुप्पी तोड़कर) उसी के बारे में तो सोचा था। (दारू के नशे की वजह से उसकी जबान लड़खड़ा रही है) मैं जानता था तू तेरे बर्तन-भांडे

बचाने के लिए किसी से भी भिड़ जाएगी। कल सुबह के माहौल में कोई भी किसी को भी, कहीं भी मार सकता है । तू बर्तन भांडे लेकर भागेगी या फिर उस नन्ही सी जान को पेट में लेकर भागेगी...?

(दोनों पति-पत्नी रो पड़ते हैं। घर के आगे सामान बिखरा पड़ा है । बाकी सभी बस्तीवाले शांत, मूर्त बनकर खड़े हैं ।)

नेपथ्य से कोरस : शहरों को सुंदर बनाता, बुलडोज़र
ठंडी में हैं काँपते बच्चे, बुलडोज़र
सपनों को कुचलता जाता, बुलडोज़र
बुलडोज़र भाई, बुलडोज़र।

(दृश्य ९)

(नेपथ्य से तोड़-फोड़ की आवाज़ें सुनाई देती हैं। बस्ती में जैसे 'हो-हल्ला' हो जाता है। सुबह होते ही कुछ कोर्पोरेशन के अधिकारी और पुलीस बुलडोज़र के साथ खड़े हो जाते हैं । उनके साथ रामसरूप और बस्ती के बाकी लोग भी खड़े हैं। कुछ पुलीस कॉन्स्टेबल और कॉर्पोरेशन के लोग झुग्गियाँ जिन लकड़ियों के सहारे खड़ी हैं, उन्हें उखाड़ रहे हैं।)

रामसरूप : अरे... साब... दया करो... हम गरीब घुमन्तु लोग, कहाँ जायेंगे? मुश्किल से तो एक जगह टिके रहने का सहारा मिला है... यहाँ से भी आप लोग भगा देंगे तो हम लोग कहाँ जायेंगे?

अधिकारी : तुम लोग घुमन्तु हो ?

रामसरूप : हाँ... साब...

अधिकारी १ : तो फिर घुमन्तु ही रहो न... यहाँ झुग्गियाँ बनाकर हमारा सरदर्द क्युं बढ़ा दिया है ? चलो अपने लोगों से बोल दो कि अपना सामान झुग्गियों से निकाल लें, नहीं तो हम बुलडोज़र चढ़ा देंगे।

रामसरूप : (विनती करते हुए) ऐसा जुल्म मत करो साब... ऐसी कातिल

ठंडी में, नन्हे-नन्हे बच्चों को लेकर हम कहाँ जायेंगे? रहम करो साब... बस्ती के बच्चे और बूढ़ों पर रहम करो।

अधिकारी २ : देखो भाई... ये कोई हम हमारी मर्ज़ी से नहीं करते हैं । हमें भी ऊपर से ऑर्डर आता है ! इससे पहले भी कई बार तुम्हारी बस्ती तोड़ी है। फिर भी तुम लोग बार-बार ये झुग्गियाँ बना लेते हो... जाने का नाम ही नहीं लेते।

रामसरूप : साब... बस्ती के आसपास ही हमारा धंधा रोज़गार है । हम लोग स्टेशन पर नक्शे बेचते हैं । राजभोई आसपास के इलाकों में घूमकर लोगों के कान में से मैल निकालने का काम करते हैं। बैरागी स्टेशन पर खिलौने बेचकर पेट भरते हैं और वाघरी पास ही की सब्ज़ी-मंडी में जाकर सब्ज़ी-मच्छी बेचते हैं। यहाँ से कोई नई जगह जायेंगे तो वहाँ हमें कौन रहने देगा, कौन हमें धंधा-रोज़गार करने देगा ?

अधिकारी १ : सरकार को इससे कोई सरोकार नहीं है। इस रास्ते को हमें म्युनिसिपालिटी बस का रूट बनाना है। यहाँ दो बस स्टेन्ड लगेंगे।

पक्या : अरे साब... अगर बस यहाँ से निकलने लगी तो हमारे बच्चों का क्या होगा? कोई बच्चा बस के नीचे आकर मर गया तो इसका जिम्मेवार कौन होगा ?

पुलीस इन्स्पेक्टर : बंद करो तुम्हारी ये बकवास ! चलो, भागो यहाँ से। नहीं तो डंडे पड़ेंगे सालों को। तुम लोग यहाँ गैरकानूनी तौर से रह रहे हो ।

रामसरूप : कैसे गैरकानूनी हो गया साब ? जब यहाँ कुछ भी नहीं था, न ये ब्रिज था, न ये स्कूल थी और न ही ये पक्का रोड । तब चालीस साल पहले हम लोग इस जंगल जैसी जगह पर आकर बसे थे, लुटेरों के डर से लोग यहाँ से आते-जाते भी डरते थे...

पुलीस इन्स्पेक्टर : वो लुटेरे और कोई नहीं तुम लोग ही थे। चोरी करने के सिवाय तुम लोगों को आता ही क्या है ? आज भी स्टेशन पर बैग लिफ्टिंग, चेन स्नैचिंग और पिक-पॉकैटिंग करना ही तुम्हारा काम है। सीधी तरह चले

जाओ नहीं तो सब को अंदर कर दूँगा ।

मुकेश : साब... हम लोग तो मेहनत मजदूरी करके अपना पेट भरते हैं, तुम्हारी तरह हराम की कमाई नहीं खाते...

पुलीस इन्स्पेक्टर : (गुस्सा होकर) क्या बोला तू...? मेरे को हरामी बोला...? (मुकेश को लकड़ी से मारता है । सभी घबरा जाते हैं ।) तेरी माँ का तो...

(मयूरभाई आते हैं।)

मयूरभाई : (भीड़ को हटाते हुए) ए... क्या हो रहा है...ये सब क्या हो रहा है ? चलो हटो यहाँ से... हटो...

रामसरूप : अरे, अच्छा हुआ आप आ गए मयूरभाई। आप तो जानते ही हो कि हम कितने सालों से यहाँ रह रहे हैं। आपको छोटे से बड़ा होते हुए देखा है हमने । कुछ समझाओ इनको की हमारी बस्ती न तोड़ें... नहीं तो ऐसी कातिल ठंडी में हम मरे ही समझो।

मयूरभाई : देखो रामसरूप भाई, आप इस बस्ती के मुखिया हो...बस्ती खाली करने के लिए आप ही को बस्तीवालों को समझाना पड़ेगा !

रामसरूप : (आश्चर्यचकित होकर) लेकिन क्युं समझाऊँ ? आखिर हम यहाँ चालीस साल से रह रहे हैं। हम ये जगह क्युं खाली करें ?

मयूरभाई : तुम लोग सन् १९७६ से यहाँ बसे हुए हो।

रामसरूप : हाँ। बल्कि १९६० से यहाँ बसे हुए है।

मयूरभाई : वर्ष १९७६ से यहाँ रहने का सरकारी दस्तावेज है आप लोगों के पास? कोई स्लिप ?

रामसरूप : हम अनपढ़ जाहिल लोगों को क्या पता इन कागज़-पत्तर के बारे में ?

मयूरभाई : अगर नहीं है तो बस्ती शांति से खाली कर दो... ये सरकारी जगह है।

रामसरूप : (थोड़ा गुस्सा होकर) चालीस साल पहले ये जगह सरकार की नहीं थी ? तो फिर क्युं बसने दिया हम लोगों को यहाँ ? उसी वक्त भगा देते। हम घूमते रहते। कम से कम ये दिन तो देखने नहीं पड़ते ।

मुकेश : हमने कॉर्पोरेशन में कई बार अर्जियाँ की हैं... लेकिन आज तक कोई जवाब नहीं आया। और पहले तो बस्ती तोड़ने से पहले नोटिस मिलते थे... इस बार क्युं नोटिस नहीं दिया गया ?

मयूरभाई : सरकार कोई तुम्हारे बाप की नौकर नहीं है जो तुम्हारी अर्जियों का जवाब देती रहे। और कान खोलकर सुन लो, ये इस देश की सुप्रिम कोर्ट का ऑर्डर है कि रास्ते पे बनी किसी भी गैरकानूनी बस्ती को तुरंत तोड़ दिया जाए। इस में नोटिस देने की भी ज़रूरत नहीं है। समझे ?

पक्या : मयूरभाई। तुमने भी तो चुनाव के वक्त बड़े-बड़े वादे किए थे, मैं तुम्हारी रहने की व्यवस्था करूँगा, बस्ती में लाईट और नल लगवा दूँगा, सभी के घर लाईट कनेक्शन होगा... क्या हुआ उन वादों का ?

मयूरभाई : (गुस्सा होकर) ए... तू मेरे को मेरे वादे याद दिलायेगा...? मैं बहोत अच्छी तरह जानता हूँ तुम लोगों ने किसे वोट दिए थे। (म्युनिसिपल अधिकारी से) चलो साब... अपना काम जल्दी निपटाओ... मुझे बच्चे को स्कूल छोड़ना है।

अधिकारी १ : चलो भाई... आगे बढ़ो और काम शुरू करो ।

(हर तरफ 'हो-हल्ला' मच जाता है । कोई अपना सामान उठाकर भागता है तो कोई बर्तन-भांडे लेकर। कोई अपनी खटीया उठाकर भाग रहा है, कोई अपनी बकरी या बच्चों को कंधे पर लेकर भागता नज़र आता है । सबको पुलीस भगा रही है। पुलीसवालों के हाथों में डंडे हैं। वो बस्तीवालों पर लाठीचार्ज करते हैं। मुकेश, पक्या, रम्या, मंगा, रामसरूप भी अपने-अपने घरों की ओर भागते हैं।)

कर्मचारी : ये बर्तन-भांडे, खटीया वगैरे उठा लो नहीं तो सबकुछ भर के ले जायेंगे ।

औरत : दया करो, साब... अभी उठा लेती हूँ ।

(वो और उसका पति जैसे ही बिस्तरा-पोटला उठाते हैं कि एक म्युनिसिपल कर्मचारी उनकी खटीया उठा ले जाता है।)

बस्तीवाला : अरे साब, उठा तो रहे हैं सामान... ये खटीया क्युं ले जा रहे हो ?

कर्मचारी : तुम लोगों को टाईम दिया था ना ? टाईम पे सामान नहीं उठाया तो फिर हम सामान ले जायेंगे।

औरत : अरे, लेकिन हमारे भी दो ही तो हाथ हैं, बच्चा सँभालें, समान उठाएँ या खटीया उठाएँ... खटीया दे दो, साब। बच्चा ऐसी ठंडी में किस पर सोएगा... ?

कर्मचारी : हम कुछ नहीं जानते। जो भी सामान जप्त हुआ है उसे कल जुर्माना भर के वापस ले जाना।

बस्तीवाला १ : ऐसा मत करो, साब । हम सामान उठा रहे हैं... खटीया दे दो।

कर्मचारी : नहीं मिलेगी। साब से बात करो। चलो, भागो यहाँ से।

(उनके सामने ही उनकी झुग्गी पर बुलडोज़र चल जाता है। दोनों रो देते हैं, बच्चे भी रोने लगते हैं...)

बच्ची : बाबा... बाबा... मेरी गुड्डी... मेरी गुड्डी...

(दृश्य १०)

(मंगा का घर)

पुलीस कॉन्स्टेबल : चलो निकलो यहाँ से... नहीं तो बुलडोज़र तुम लोगों पर चलाया जाएगा ।

मंगा : किस की माँ ने दूध पिलाया है कि हम पर बुलडोज़र चला दोगे ?

पुलीस कॉन्स्टेबल : अबे, ए बेवडे... अभी दो डंडे पड़ेंगे ना तो सारी पियेली उतर जायेगी।

रेशमिया : नहीं साब। माफ कर दो। ये तो बोलता रहता है। हमने तो सामान रात को ही निकाल कर सामने रख दिया है... देखो... देखो...

पुलीस कॉन्स्टेबल : नहीं... यहाँ भी नहीं रखने का, सामान लेकर चले ही जाओ यहाँ से... सामान बाहर भी नहीं रखने का।

मंगा : (गुस्सा होकर) अरे यहाँ रास्ते पे नहीं रखेंगे तो क्या पुलीस थाने में रखें ? रेल्वे प्लेटफॉर्म पे रखते हैं तो वहाँ रेल्वे पुलीस सामान को आग लगाने की धमकी देती है। कहाँ रखें इतना सामान?

पुलीस कॉन्स्टेबल : (मंगे पर लकड़ी फेंकता है) अबे, जा के जहन्नम में रख। हमें क्या सुनाता है? जल्दी करो नहीं तो अंदर कर दूँगा दोनों को ।
(दोनों के पीछे लकड़ी लेकर भागता है। दोनों सामान लेकर भागते हैं, अचानक रेशमिया दर्द के मारे गिर पड़ती है ।)

रेशमिया : (दर्द से कराहते हुए) आ... आ... मंगे... मंगे...

(सामान लेकर भागता मंगा, सामान फेंककर रेशमिया के पास आता है।)

मंगा : अरे... रेशमि... रेशमि... क्या हुआ ? तेरे को बोला था ना ? हे भगवान... चल उठ।

पुलीस कॉन्स्टेबल : ए... तुम लोग अभी तक यहीं हो ? चलो, खाली करो ये जगह। चलो, भागो यहाँ से ।

मंगा : (गुस्से से) ए... हरामी तेरे को भी अगर तेरी माँ पेट में लेकर भागती और तुझे सड़क पर ही जनती तो तुझे पता चलता कि ये क्या दर्द है । आ... इधर आ। ये देख...

(नीचे पड़ी दर्द से कराह रही रेशमिया की ओर इशारा कर)

और ये जो नीचे पड़ी दर्द से कराह रही है ना वो तेरी माँ है और इसके पेट में

पल रहा बच्चा तू है। लाखों बच्चों की तरह कुछ दिनों बाद ये औरत तुझे किसी सड़क पर जन देगी... और तू सड़क पर पड़ा रो रहा होगा । समझ में आया कुछ ?

(कॉन्स्टेबल हक्का-बक्का सा खड़ा है। पीछे बुलडोज़र मंगा की झुग्गी को कुचल देता है।)

(दृश्य ११)

माला : अरे... साब... ये खटीया कहाँ ले जा रहे हो ? मेरी बुढ्ढी माँ कहाँ सोयेगी ? रहम करो, साब । मेरी माँ इस ठंड में मर जायेगी।

(म्युनिसिपल कर्मचारी खटीया लेकर चले जाते हैं ।)

अरे... सत्यानाश हो तुम लोगों का... झोपड़ी तो तोड़ दी, एक सोने का सहारा था वो भी ले लिया। अरे कीड़े पड़ेंगे... मेरी बुढ्ढी जिस तरह तड़पेगी उसी तरह तुम्हारी माँ भी तड़पे.... मेरी जोगमाया ही तुम्हें देखेगी ।

(पास ही में मुकेश का घर है। वहाँ पुलीस और म्युनिसिपल कर्मचारी आते हैं।)

पुलीस कॉन्स्टेबल : ए चलो, खाली करो झोपड़ी। जल्दी करो । बुलडोज़र इसी ओर आ रहा है।

मुकेश : (अपनी बेटी और बीवी के साथ निकलता है।) साब... थोड़ा रहम करो। ये देखो, मेरी बच्ची को बड़ी माताजी पधारी है। सारे बदन पर फोल्लियाँ हो गयी हैं। दर्द से बेचारी रो रही है। घर तोड़ देंगे तो कहाँ ले जाऊँगा इसे ?

कर्मचारी : माफ करना, भाई साब... लेकिन बड़े साब का ऑर्डर है इसलिए। नहीं तो हमारी नौकरी चली जायेगी।

(पीछे बुलडोज़र आकर मुकेश की झुग्गी कुचल जाता है। अंधकार में औरतों और बच्चों का रोना सुनाई दे रहा है। तोड़-फोड़ की आवाज़ें आ रही हैं । लोगों का 'हो-हल्ला' सुनाई देता है। मुकेश दर्द से कराह रही अपनी बच्ची

और बीवी के साथ धीरे-धीरे जा रहा है।)

(दृश्य १२)

(रात का समय है। बस्तीवाले फुटपाथ पर सोये हुए हैं। कुछ लोग ठंड से बचने के लिए आग जलाए हुए हैं। कूड़ा-कचरा, घर सामान की कुछ चीजें बिखरी पड़ी हैं। पक्या, मुकेश, रम्या और मंगा आग सेक रहे हैं। मंगा पोटली से देशी शराब पी रहा है।)

मुकेश : सारी बस्ती उजाड़ दी सालों ने। पुलीस ने मारा, वो अलग। श्मशान जैसा माहौल फैल गया है।

पक्या : पिछले दस सालों में ये दसवीं बार बस्ती तोड़ी है।

(नेपथ्य से कुत्ते की रोने की आवाज़। सभी का ध्यान उस ओर जाता है। मुकेश लड़खड़ाते हुए उठता है, पत्थर उठाकर कुत्ते पर फेंकता है।)

मुकेश : ए चल भाग यहाँ से।

(कुत्ते की फिर से रोने की आवाज़)

मुकेश : (फिर से एक पत्थर उठाकर मारता है) ए... चुप करवाओ इस साले कुत्ते को। इसे आज ही का दिन मिला था रोने के वास्ते! इतने दुःख कम हैं जो मौत का पैगाम सुना रहा है। चल, भाग यहाँ से।

(फिर से पत्थर मारता है। कुत्ते की रोने की आवाज़ बंद हो जाती है। मुकेश फिर से अपनी जगह बैठते हुए)

साला... ये कुत्ते भी सरकार की तरह हो गए हैं। कभी भी कुछ भी सुना देते हैं।

पक्या : अरे... कुत्ते को काई को मार रहा है? हम लोगों की तकदीर ही ऐसी है।

रम्या : मुझे तो लगता है आज बस्ती में यमराज घूम रहे होंगे। तभी ज कुत्ता

रो रहा है। मैंने सुना है कुत्ते यमराज को देख लेते हैं।

पक्या : तब तो मंगे आज तेरी खैर नहीं। तू साला नो लिमीट दारू पीता है, आज लगता है तेरी बारी है।

मंगा : अबे इतनी आसानी से मैं यमराज के हाथ आनेवाला नहीं हूँ। उसे देशी की पोटली दी, समझो यमराज अपना ।

(चारों हँसते हैं। अचानक पक्या की औरत, नन्हे बच्चे को लेकर पागलों सी दौड़ती हुई वहाँ आती है।)

सीमा : ए... पक्या... पक्या... पक्या...

(पक्या के साथ सभी उठ खड़े होते हैं । चीखों की आवाज़ सुनकर सड़क पर आस-पास सोए हुए लोग उठ खड़े होते हैं।)

पक्या : अरे... क्या हुआ... क्या हुआ ? क्यों इतना चिल्ला रही है ? और ये मुन्ना...

सीमा : हाँ... मुन्ना । (सीमा की आँखों में आँसू हैं)... मेरा मुन्ना... देख न ये इतना ठंडा कैसे हो गया है ? ये हाथ-पैर क्युं नहीं हिला रहा... इसे क्या हो गया रे ? देख, जल्दी देख।

(पक्या की आँखों में आँसू आ जाते हैं ।)

पक्या : (मुन्ना को अपने हाथों में लेते हुए) ए... क्या बक रही है तू ? क्या हुआ मुन्ना को ? ए... मुन्ना... मुन्ना... अरे इसका बदन इतना अकड़ कैसे गया रे ? (रोते हुए) ए... मुकेश, देख ना ये क्या हो गया है मेरे मुन्ना को ?

(मुकेश बच्चे को हाथ में लेता है, कान लगाकर उसकी धड़कन सुनता है । इसी बीच जोरों से फिर से कुत्ते की रोने की आवाज़... सीमा की चीख।)

(दृश्य १३)

(सुबह का वक्त है। कुचली हुई झुग्गियों से कोई टूटी हुई लकड़ियाँ तो कोई

प्लास्टिक इकट्ठा कर रहा है। सामान इधर-उधर बिखरा पड़ा है। दो बच्चे, जिन में से एक पौधा बो रहा है और दूसरा अपना टूटा हुआ खिलोना ठीक कर रहा है, बातें कर रहे हैं।)

बच्चा १ : क्यों रे... तेरा भाई कैसे मर गया ?

बच्चा २ : पता नहीं। रात में तो खेल रहा था। उसने मेरी उँगली भी पकड़ी थी पर सुबह मर गया।

बच्चा १ : लेकिन ऐसा कैसे हो गया रे ?

बच्चा २ : बाप कह रहे थे ... रात में ठंड बहोत थी। उसका बदन लकड़ी की तरह हो गया था।

बच्चा १ : लकड़ी की तरह ? ऐसा कैसे हुआ ?

बच्चा २ : बोला ना। रात में ठंड बहोत थी इसलिए।

बच्चा १ : तो तेरी माँ ने तेरे भाई को गरम कपड़े में नहीं रखा था क्या ?

बच्चा २ : कैसे रखती... बिस्तर, चद्दर, बर्तन-भांडे, सभी कुछ तो म्युनिसिपालिटीवाले ले गये थे। कुछ भी तो नहीं छोड़ा था। सबी कुछ तो ले गए थे, कुछ भी नहीं छोड़ा... कल खाना भी नहीं खाया।

(इसी बीच पक्या अपने हाथों में सफेद कपड़े में लिपटे अपने बच्चे की लाश लेकर श्मशान जाने के लिए निकलता है। बस्तीवाले उसके साथ हैं। सीमा पागलों की तरह रो रही है...काफी औरतों ने उसे पकड़ रखा है।)

सीमा : अरे कहाँ ले जा रहे हो मेरे लल्ले को ? मुन्ना... मेरा मुन्ना...

(मुन्ने की लाश को अपने हाथों में लेकर)

अरे ऐसे कैसे छोड़कर जा सकता है अपनी माँ को ? मेरा लल्ला... नौ महिने तुझे पेट में रखा था। जरा जी भर के प्यार तो कर लेने दिया होता। तुझे पता है जब म्युनिसिपालिटीवाले आते थे तो लोग अपना समान लेकर भागते थे, लेकिन मुझे तो तुझे सामान के साथ पेट में लेकर भागना पड़ता था। तुझे नौ

महिने बचाकर पेट में रखा और तू इतनी जल्दी अपनी माँ को छोड़कर जा रहा है ? अरे, जरा जी भर के देखने तो दिया होता। मेरी छाती ममता से उमड़ रही है...जी भर के गले तो लगाने दिया होता... अरे हरामी लोगों ! दो कपड़े तो छोड़ दिये होते मेरे लाल के लिए...

(फूट-फूटकर रोने लगती है)

नेपथ्य से कोरस : शहरों को सुन्दर बनाता, बुलडोज़र

ठंडी में हैं काँपते... बुलडोज़र

सभी : कई बच्चों की मौत का मातम, बुलडोज़र

सपनों को कुचलता जाता, बुलडोज़र ।

(गीत)

सारे जहाँ से अच्छा

हिन्दोस्तान हमारा

हम बुलबुले हैं इसकी,

ये गुलसिता हमारा ।

सारे जहां से अच्छा

हिन्दोस्तान हमारा।

सारे जहाँ से अच्छा...

नेपथ्य से कोरस : सन् २००२। राष्ट्र के नाम राष्ट्रपति का संदेश। ऐसा न हो कि आनेवाली पीढियाँ ये कहें कि भारतीय गणतंत्र का निर्माण हरित धरती और उन मासूम आदिवासियों के विनाश पर हुआ था जो कई सदियों से वहाँ निवास कर रहे थे। एक महान समाजवादी नेता ने एक बार कहा था कि दुनिया को बदलने कि जल्दबाज़ी में कोई महान व्यक्ति किसी बच्चे को टक्कर मार के

गिरा देता है तो वो भी अपराध करता है। भारत के बारे में भी ये कहने की नौबत न आए कि अपने विकास की हड़बड़ी में इस महान गणतंत्र ने हरित धरती माता को नष्ट-भ्रष्ट किया और अपने आदिवासी समाजों को उजाड़ा। संदेश... संदेश... संदेश... राष्ट्र के नाम राष्ट्रपति का संदेश।

v v v

•

उलगुलान

श्रीमती महाश्वेता देवी की किताब, 'अरण्येर अधिकार' में लिखे गए इस शब्द का अर्थ है, 'अन्याय के खिलाफ चलती अविरत लड़ाई'।

अंग्रेजों के बनाए जंगल के कायदे आज भी देश में कानून के तौर पर चल रहे हैं। सरकार जंगलों पर 'सत्ता' चाहती है और आदिवासी उसे अपनी जननी कहते हैं। सिंहभूम के जंगलों में बिरसा मुण्डा एवं उनकी बीरसायत और अंग्रेजों के बीच की लड़ाई हमारे लिए अनजान नहीं है ।

गुजरात के छोटाउदेपुर क्षेत्र में मेरे आदिवासी मित्र कई वर्षों से सामाजिक कार्य कर रहे हैं। 'भाषा' संस्था द्वारा संचालित 'आदिवासी एकेडमी' के सहयोग से इस नाटक का निर्माण मैंने अपने आदिवासी साथियों के साथ किया । इस नाटक के मंचन कोई हॉल या ऑडिटोरियम में नहीं बल्कि, जंगलों में कभी महुआ के पेड़ के नीचे तो कभी पहाड़ की तलेटियों के जंगलों में, कभी किसी आदिवासी गाँव के चौराहे पर या कभी आदिवासी समाज के मेलों में किए गए।

उलगुलान ...

•

पात्र

इन्सपेक्टर । सूत्रधार । वन अधिकारी । वृद्ध

गार्ड । टिमली । गाँववाला १, २, ३ । ज्योति

बीरसा मुण्डा । बीरसायत १, २, ३, ४, ५, ६

आदिवासी युवक । जमींदार । धानी मुण्डा

अंग्रेज अधिकारी/ A\$ga । करमी । लड़की

(दृश्य १)

(टेलीफोन की रिंग बज रही है। जो कलाकार इन्सपेक्टर का किरदार निभा रहा है वो टेलीफोन उठाता है।)

इन्सपेक्टर : हेल्लो। छोटाउदेपुर पुलीस स्टेशन। इन्सपेक्टर पटेल बात कर रहा हूँ। मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ?

आवाज़ १ : (दर्शकों के बीच से आवाज़ आती है) हम लुट गए, साब।

इन्सपेक्टर : (चौंक जाता है) क्या ? किसने लूटा तुम्हें ?

आवाज़ २ : हमारी चोरी हो गई, साब।

इन्सपेक्टर : क्या ? मेरे इलाके में चोरी ? किसने की तुम्हारी चोरी ?

आवाज़ ३ : हमारे घर हम से छीन लिए, माई-बाप !

इन्सपेक्टर : (आश्चर्य से) कौन से और किसके घर छीन गए भाई?

(सभी कलाकार जो दर्शकों के बीच बैठे हैं, एक साथ कहते हैं)

सभी : हमारे अधिकार हमसे छीन लिए हैं, साब।

इन्सपेक्टर : (थोड़ा सा कन्फ्यूस्ड होकर) कौन हो तुम लोग ? क्या कोई सामने आएगा और मुझसे कहेगा की तुम्हारे कौन से अधिकार छीने गए हैं ? और किसने छीने हैं ? किसने तुम्हारी चोरी की है? किसने तुम्हें लूटा है ? क्या कोई है जो यहाँ आए और असल में बात क्या है बताए ?

(सारे आदिवासी कलाकार दर्शकों के बीच से निकलकर रंगमंच पर आते हैं ।)

सभी : हमारे जंगल लूट लिए हैं, हमारी जमीन और हमारे जंगल के अधिकारों को छीन लिया गया है, हमें घर से बेघर कर दिया है।

(ये सुन इन्सपेक्टर जोरों का ठहाका लगाता है।)

इन्सपेक्टर : ये कैसे हो सकता है?

सभी : ये हो सकता है, ये हुआ है। आप हमारी रपट दर्ज कीजिए।

इन्सपेक्टर : (सभी को धमकाते हुए) तुम सब का दिमाग तो ठिकाने पे है ? इस तरह के गुनाह के लिए मैं रपट कैस दर्ज करूँ ? भारत के इन्डियन पीनल कोड में इस तरह के गुनाह के बारे में कुछ भी नहीं लिखा गया है। और क्या तुम लोग मुझे बता सकते हो कि मैं किसके खिलाफ रपट दर्ज करूँ ?

सभी : सरकार के खिलाफ।

इन्सपेक्टर : क्या? सरकार के खिलाफ ? तुम्हें पता भी है सरकार क्या होती है?

सभी : (अभी तक जो दयनीय भाव में बोल रहे थे, गुस्से में एक साथ) यही तो आज तक पता नहीं चला। नहीं तो उसे ही खत्म न कर देते?

(सभी कलाकार इन्सपेक्टर की ओर मुख कर के बैठते हैं। ढोल की तपाक।)

(दृश्य २)

(सभी कलाकार आदिवासी नृत्य कर रहे हैं और अपनी धुन में गीत गा रहे हैं।)

नेपथ्य से सूत्रधार : आइए। गुजरात के आदिवासी विस्तार में आपका स्वागत है। हम लोग हैं एक छोटे से आदिवासी गाँव में जो पंचमहाल के जंगलों में स्थित है। आदिवासी जो जंगलों की पूजा करते हैं, इस वक्त जंगल देवता के लिए लोक-नृत्य और लोक-गीत गा रहे हैं... जंगल और पहाड़ों के बीच, कुदरत की कोख में बसे इस गाँव पर वन विभाग बुरी नज़र लगाए हुआ है।

(सभी गाँववाले अपने काम में मस्त हैं। कोई कलाकार लकड़े की मूर्तियाँ बना रहा है तो कोई महिला चूल्हे पर खाना बना रही है। कोई अपना ढोल ठीक कर रहा है तो कोई खेत में काम कर रहा है। एक वृद्ध अपनी बेटी के साथ अपने सर पर लकड़ियों की गठरी लेकर प्रवेश करता है। अचानक एक वन अधिकारी अपने गार्ड के साथ आता है।)

वन अधिकारी : (वृद्ध पर चिल्लाते हुए) ए... बुढ्ढे, ये लकड़ियाँ किसकी इज़ाजत से काटी हैं ?

वृद्ध : क्युं ? आप कौन हो ?

गार्ड : (वृद्ध को डंडा दिखाते हुए) अबे ऐ बुढ्ढे, जबान सँभालकर बात कर। साब यहाँ के अफसर हैं।

वृद्ध : अफसर ? कहाँ के अफसर ?

गार्ड : अबे मूर्ख, ये इस जंगल के अफसर हैं।

वृद्ध : (अपनी बेटी से आश्चर्य व्यक्त करते हुए) अरे टिमली, क्या जंगल का भी कोई अफसर होता है ? जंगल तो सभी का होता है, इसका कोई अफसर कैसे हो सकता है ?

वन अधिकारी : अबे ओ बुढ्ढे, जंगल किसी की जागीर नहीं है। अभी यहाँ सरकार और कानून है ! बोल, कहाँ रहता है तू ?

टिमली : आदिवासी जंगल मे रहता है, और कहाँ रहेगा साब ?

गार्ड : बहोत रह चुके जंगल में, अब नहीं रह सकते।

वृद्ध : क्युं ?

गार्ड : क्युं ? क्या मतलब है तुम्हारा ? जंगल के भी कोई कायदे-कानून हैं। जब तक तुम्हारे पास यहाँ रहने के सारे कागज़ात न हों, तब तक तुम लोग इस जंगल की जमीन पर नहीं रह सकते। जंगल की कोई पैदावर लेने का भी तुम्हें अधिकार नहीं है। और अगर ऐसा करते हो तो कानूनन गुनाह होगा।

वृद्ध : गुनाह ? ये कैसे हो सकता है ?

टिमली : हम आदिवासी इन जंगलों में पीढ़ियों से रह रहे हैं। आप इसे गुनाह कैसे कह सकते हो ?

(इस दौरान बाकी के सारे गाँववाले अपना-अपना काम छोड़कर वहाँ इकट्ठा हो जाते हैं।)

गाँववाला १ : साब, आदिवासी इन जंगलों में तब से रह रहा है जब से सूरज ने अपनी रोशनी भी नहीं फैलाई थी। ये हमारे जंगल हैं, जंगल की पैदावर हमारी

है। और आप कह रहे हैं कि हम इसका उपयोग नहीं कर सकते। ये किस तरह का कानून है ?

गार्ड : तुम लोग यहाँ कैसे रह सकते हो ? जंगल की इस जमीन के लिए तुम्हारे पास सरकारी कागज़ात होने चाहिए । और अगर वो नहीं हैं तो तुम लोग यहाँ नहीं रह सकते।

वृद्ध : (थोड़ा सा मुस्कुराते हुए) अच्छा । अच्छा, तो तुम्हें सबूत चाहिए ?

गार्ड : हाँ... हाँ...सबूत चाहिए। क्या है तुम्हारे पास सबूत कि तुम इन जंगलों में बरसों से रह रहे हो ?

गाँववाला २ : (वृद्ध व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए) साब, इस बुढ्ढे का जब जन्म हुआ था तब इसके बाप ने एक महुआ का पौधा बोया था। वो पौधा अब पेड़ बन चुका है और वो बच्चा अब बुढ्ढा हो गया है। हम यहाँ बरसों से रह रहे हैं, ये इसकी साबिती है।

गार्ड : (गाँववाले २ को धक्का देते हुए) तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। ये महुआ का पेड़ तुम्हारे यहाँ रहने की साबिती है ? सरकारी कानून के मुताबिक तुम्हें यहाँ रहने के सरकारी कागज़ात दिखाने होंगे। नहीं तो यहाँ तुम्हारा रहना गैरकानूनी माना जाएगा।

गाँववाला ३ : साब, हम जैसे जंगलों में रहनेवाले आदिवासी क्या जाने आपके सरकारी कागज़ात ?

टिमली : भले ही हमारे पास सरकारी कागज न हों, लेकिन हमारे पास इन जंगलों का परंपरागत ज्ञान है। आप ये पेड़ देख रहे हैं ? इन में से किसी भी पेड़ की उम्र पूछ लो, मैं बता सकती हूँ।

वन अधिकारी : चुप रहो । तुम सब लोगों को ये जगह जल्द से जल्द खाली कर देनी है। और ऐसा नहीं किया तो हम तुम लोगों को जड़ समेत उखाड़कर बाहर फेक देंगे। ये जंगल का कानून है।

वृद्ध : साब। जंगल का कोई कानून नहीं होता। जंगल की अपनी संस्कृति और

परंपरा होती है। उसके कोई नीयम नहीं होते।

वन अधिकारी : (वृद्ध पर हाथ उठाते हुए) ए... अपना मुँह बंद कर।

(ज्योति, जो कब से खड़ी ये तमाशा देख रही है, उनके बीच आ पहोंचती है।)

ज्योति : ए... साब। यहाँ से चले जाओ। ये जंगल आदिवासियों का है। यहाँ हमारा कानून चलता है।

गार्ड : (धमकाते हुए) ए... लड़की, तुझे पता है तू किससे बात कर रही है ?

ज्योति : हाँ। जानती हूँ। तुम जैसे लोगों की वज़ह से ही हम शांतिप्रिय आदिवासियों को हमारे अधिकारों के लिए लड़ाइयाँ छेड़नी पड़ती हैं।

वन अधिकारी : ओह ! तो तुम यहाँ सरकार के खिलाफ आंदोलन करना चाहते हो ? यही मतलब है ना तुम्हारा ? बोलो ?

ज्योति : इतिहास गवाह है, आदिवासी ने अपने अधिकारों के लिए कई आंदोलन छेड़े हैं।

वन अधिकारी : गार्ड ! इस लड़की को हिरासत में ले लो। ये कोई नक्सलाइट लगती है।

ज्योति : चले जाओ यहाँ से नहीं तो सबको मार पड़ेगी।

वन अधिकारी : (सारे गाँववालों को आगे बढ़ते देख डर जाता है। पीछे कदम रखते हुए) ठीक है, ठीक है, देख लूँगा तुम लोगों को ! मैं वापस आऊँगा।

(सभी गाँववाले साथ मिलकर दोनों अधिकारियों को भगा देते हैं। उनके जाने के बाद)

गाँववाला १ : बेटी, ये सरकारी लोग भाग तो गए लेकिन हम मुठ्ठीभर लोग इन सरकारी अफसरों का सामना कैसे करेंगे ?

ज्योति : रोज़-रोज़ डर के साथ जीने से तो अच्छी है एक ही बार की लड़ाई।

गाँववाला २ : लेकिन हम कुछ लोग इतनी बड़ी सरकार का सामना कैसे करेंगे ?

ज्योति : भगवान बीरसा ने जिस तरह हमारे जंगलों के अधिकारों के लिए अंग्रेजों से लड़ाई लड़ी थी, बिलकुल उसी तरह।

सभी : भगवान बीरसा !

ज्योति : हाँ। भगवान बीरसा मुण्डा... हमारे शिक्षक रेवतीभाई ने हमें भगवान बीरसा के उलगुलान की बात बताई थी। आज हमें भगवान बीरसा के उलगुलान की ज़रूरत है।

सभी : (आश्चर्य के साथ) उलगुलान!

ज्योति : हाँ। उलगुलान! अन्याय के खिलाफ चलती अविरत लड़ाई... आओ... मैं तुम्हे उलगुलान के बारे में बताती हूँ।

(ढोल के संगीत के साथ दश्य बदलता है।)

(दृश्य ३)

(१८८० का वर्ष है। घने जंगलों के बीच भगवान बीरसा अपने साथी, जिन्हें 'बीरसायत' कहा जाता है, सम्बोधित कर रहा है।)

बीरसा : उलगुलान !

सभी बीरसायत : उलगुलान... उलगुलान... उलगुलान !

बीरसा : उलगुलान न्याय के लिए चलती अविरत लड़ाई है। हम सभी के लिए ये समय कुछ तय करने का है। समय आ गया है कि हम हमारे जंगल, हमारे पहाड़, नदियाँ, झीलें और कुदरती सम्पदा को आज़ाद कराएँ। उन जमींदारों को हमें बाहर निकालना है जिन्होंने हमसे हमारी जमीन और जंगल ले लिए हैं। सिंहभूम के आदिवासी भूख का सामना अपनी कुदरती सम्पदा से करेंगे। हमारे पास नमक और तेल होगा। हम सरकार और जमींदारों को अन्यायी लगान नहीं देंगे। हम हमारे जमीन और जंगलों के अधिकार लेके रहेंगे। बोलो मेरे साथ... उलगुलान !

सभी बीरसायत : उलगुलान...

कोरस : अंग्रेजों ने सिंहभूम के जंगल और कुदरती सम्पदा पर अपनी हुकूमत जमा ली थी।

कोरस : अंग्रेजों ने आदिवासियों पर अन्यायी लगान लगाया।

कोरस : १८८० के इस समय में अंग्रेजों ने अपनी अन्यायी हुकूमत और कानून से आदिवासियों पर जुल्म किये।

कोरस : जिन आदिवासी क्रांतिकारियों ने अंग्रेज हुकूमत के खिलाफ बगावत की उन्हें जेल में डाल दिया गया।

कोरस : अंग्रेजों ने जमींदारों को राजा बनाया।

कोरस : देखते हैं कैसे सिंहभूम के आदिवासी जमींदारों को लगान देते थे।

जमींदार की बीवी को बच्चा आया,
लगान दो भाई, लगान दो !
जमींदार ने घोड़ा खरीदा,
लगान दो भाई, लगान दो !
जमींदार के लड़के की शादी है,
लगान दो भाई, लगान दो !
जमींदार के घर पूजा है,
लगान दो भाई, लगान दो !
जमींदार को कोर्ट-कचहरी जाना है,
लगान दो भाई, लगान दो !
जमींदार ने पालकी लाई,
लगान दो भाई, लगान दो !

(जमींदार का एक आदमी एक आदिवासी को मारता हुआ जमींदार की कचहरी में लाता है। इस आदिवासी युवक की औरत भी रोती-बिलखती आती है। आदिवासी युवक को जमींदार के पैरों तक घसीट कर लाया जाता है।)

आदिवासी युवक : दया करो माई-बाप... दया करो ! हम और लगान नहीं भर सकते... दया करो।

जमींदार : दया ? कैसी दया ? तुम्हें तुम्हारा लगान सरकार में देना ही होगा। लगान के बिना सरकार कैसे चलेगी ?

आदिवासी युवक : मेरे पास अब कुछ भी नहीं बचा, माई-बाप। (गिड़गिड़ाते हुए) हमारे जंगल और जमीन सब छीन लिए। मेरे पास तो बस ये दो मुट्ठी अनाज बचा है। (अपनी पत्नी की ओर देखते हुए) अगर उसे ये अनाज मिलेगा तो उसके पेट में पल रहे बच्चे में थोड़ी ताकत आएगी। मेरे पास लगान देने के लिए कुछ भी नहीं है माई-बाप। कुछ भी नहीं बचा... कुछ भी !

जमींदार : (बड़ी ही क्रूरता से उसे डंडा मारते हुए) अगर तुम्हे जिंदा रहना है तो लगान देना पड़ेगा।

आदिवासी युवक : (भगवान को याद करते हुए) भगवान... हम आदिवासियों ने ऐसा क्या गुनाह किया है कि हम हमारी ही जमीन और जंगलों में गुलाम बन गए ? अब हम ये लगान नहीं दे सकते। हम पर दया करो भगवान... हमें इस असह्य लगान से आज़ाद कराओ... (रोने लगता है ।)

(इसी बीच भगवान बीरसा मुण्डा का बीरसायत धानी मुण्डा वहाँ आता है।)

धानी मुण्डा : तुम्हारे इन आँसुओं से कुछ भी नहीं होगा। आओ, उठो। भगवान बीरसा ने इस अन्यायी व्यवस्था और कानून के खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया है।

आदिवासी युवक : (घबराते हुए) लेकिन...लेकिन...तुम कौन हो ? और ये किस तरह का संघर्ष है ?

धानी मुण्डा : मेरा नाम धानी मुण्डा है। मैंने हजारों चाँद देखे हैं। बीरसा मुण्डा ने

इन अन्यायी अँग्रेजों और जमींदारों के खिलाफ जंग करने का फैसला किया है। अब हम तब तक नहीं रुकेंगे जब तक हमें हमारे जंगल और जमीन नहीं मिल जाते। उठो और चलो मेरे साथ। बीरसायत बनो और इस लड़ाई में शामिल हो जाओ।

(ढोल के संगीत के साथ दृश्य बदलता है ।)

(दृश्य ४)

(ढोल का संगीत। सभी किरदार गाना गाते हैं।)

बीरसा ओ बीरसा...

हमारा तू भगवान...

हवाएँ लहरा रही हैं.... जागने को कह रही हैं...

बीरसा ओ बीरसा...

हमारा तू भगवान।

हर तरफ अंधेरा है... अंधेरा है...

तू ही रोशनी ला...

बीरसा ओ बीरसा...

हमारा तू भगवान।

(इस गीत के दौरान बीरसा जंगल में गाँव-गाँव घूमकर पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े, सभी से मिलकर उन्हें उलगुलान में जुड़ने के लिए आहवान कर रहा है। वो जिन-जिन गाँवों में जा रहा है, उसके पीछे लोग जुड़ते जा रहे हैं। इसी दौरान जंगल में आदिवासी और अंग्रेज अफसर आमने-सामने आ जाते हैं। आदिवासी पत्थरों और पेड़ों के पीछे छुप जाते हैं। अंग्रेज भी पत्थरों की आड़ में छुप जाते हैं।)

अंग्रेज अधिकारी : ए... बीरसा... तुम हमसे भाग नहीं सकते।

बीरसा : ए... गोरे अफसर... भाग जाओ हमारे जंगलों से नहीं तो हमारे तीर-कमान तुम्हारा खात्मा करने के लिए तैयार हैं।

अंग्रेज अधिकारी : अरे, अगर हम लोग चले जाएँगे तो तुम लोग भूखे मर जाओगे।

बीरसा : चले जाओ यहाँ से, आदिवासी कभी भूखा नहीं मर सकता। हम जिन्दा रह सकते हैं । तुम्हारी बंदूकों के सामने हम लड़ेंगे।

अंग्रेज अधिकारी : जंगल सरकार के हैं।

बीरसा : ये भूल जाओ, गोरे अफसर। पिछले छः लाख वर्षों से आदिवासी जंगलों में रह रहे हैं। तुम्हारी व्यवस्था और संस्कृति अभी नयी है। कान खोलकर सुन लो, जंगल आदिवासी के थे, हैं और हमेशा रहेंगे।

अंग्रेज अधिकारी : क्या तुम अंग्रेज हुकूमत के सामने बगावत करने का अंजाम जानते हो ?

बीरसा : बगावत तो तुम लोग करते हो, मेरे लिए तो ये वचन है अपनी जंगल माता को तुम्हारी हुकूमत से आज़ाद कराने का।

अंग्रेज अधिकारी : बीरसा, तुम अंग्रेज, हुकूमत के सामने नहीं टिक पाओगे।

बीरसा : तुम गोरे लोगों को हम आदिवासियों की ताकत का अंदाज नहीं है। (चिल्लाते हुए) चले जाओ यहाँ से। हमारे जंगल-जमीन छोड़कर चले जाओ।

अंग्रेज अधिकारी : बीरसा... तुम जानते हो की तुम्हारे राजा, ठाकुर, जमींदार-जागीरदार सभी हमारे साथ हैं...

बीरसा : (बात को बीच में ही काटते हुए) अबे ओ गोरे ! हम कोई राजा या जमींदार नहीं हैं जो डर जाएँ। हम आदिवासी हैं आदिवासी। तुमने और तुम्हारे जमींदारों ने हमें गुलाम बनाया है। बंधुआ मजदूरी और ऊँचे लगान ने उरांओं और कोरावों को तुम्हारा गुलाम बनाया है। हम जब हमारे कानूनी अधिकार

माँगते हैं तो पुलीस तुम्हारी, कोर्ट तुम्हारी, जेल, वकील और भाषा भी तुम्हारी। इनमें से कुछ भी हमारा नहीं। अगर कोई न्याय के लिए लड़ता है तो तुम लोग उसे जेल में डाल देते हो।

अंग्रेज अधिकारी : सावधान बीरसा ! अंग्रेज हुकूमत के सामने आज तक कोई नहीं टिक पाया है ।

बीरसा : लेकिन आदिवासी टिकेगा, तुम्हारी बंदूकों का सामना भी करेगा और अपने जंगल वापस लेगा।

(बीरसा और उसके साथी एक ओर हैं और अंग्रेज दूसरी ओर। घने जंगलों में वो एक दूसरे से छिपे हुए हैं। बीरसा अपने साथियों को संबोधन करता है। कई बीरसायत पत्थरों के नीचे, तो कई पेड़ और पत्तों के पीछे छुपे हुए हैं। ये सभी बीरसा के युद्ध के आहवान की राह देख रहे हैं।)

बीरसा : साथियों, अंग्रेज पलटन हमारी ओर बढ़ रही है। वो लोग हजारों की तादात में हैं। लेकिन हमें विश्वास रखना है कि हम मुट्ठी भर लोग अंग्रेज सेना को हमारे जंगलों से बाहर निकाल कर रहेंगे। आज निर्णय का दिन है। आज हमें हमारे जंगल और जमीन इन अंग्रेजों के हाथों से आज़ाद करवाने हैं। सिंहभूम के इन जंगलों में लड़ी ये लड़ाई इतिहास बनाएगी। हमला करो ...।

सभी : मार डालो सभी को... सामना करो ।

(इसी के साथ दोनों ओर से लड़ाई शुरू होती है। अंग्रेजों की बंदूकें गरजने लगती हैं। बीरसायतों के तीर अंग्रेज सेना को पीछे-हट करने में सफल हो जाते हैं । अंग्रेजों के भाग जाने के बाद...)

धानी मुण्डा : (खुशी से चिल्लाते हुए) ए... कहाँ भागे जा रहे हो गोरे लोगों? ये सिंहभूम है। हमारा घर है। हमारी मिल्कियत तुम लोगों ने ले ली थी। हमें ही हमारी जमीं पर गुलाम बनाया । (बीरसा की ओर जाते हुए) मुझे पता था कि एक दिन भगवान आएगा और तुम्हे यहाँ से बाहर निकालेगा। मैंने कई बर्सों तक हमारे इस भगवान का इन्तज़ार किया है।

बीरसा : (बीरसायतों को सम्बोधित करते हुए) मुझे विश्वास है कि एक दिन ये काला अंधेरा हमेशा के लिए हट जाएगा। उनके पास बंदूकें और गोलियाँ हैं तो क्या ? उनके पास हमारे जंगलों का ज्ञान नहीं है। वो दिन जल्द ही आएगा जब हमारे पास नमक और तेल होगा। हमे लगान भी नहीं देना होगा। आज़ादी आएगी...आज़ादी आएगी हमारी जमीन और जंगलों को । बोलो सभी... उलगुलान !

सभी : (नारा लगाते हुए) उलगुलान... उलगुलान... उलगुलान... भगवान बीरसा की जय हो !

(ढोल के संगीत के साथ दृश्य खत्म होता है।)

(दृश्य ५)

(ये चालखंड का दृश्य है। बीरसा अपनी माँ से मिलने आया है। उसकी काली काया चन्द्रमा की रोशनी में चमक रही है। उसकी माँ उसे खाना खिला रही है।)

करमी : बीरसा... सब लोग तुम्हारे बारे में बातें कर रहे हैं । मैं जो कुछ सुन रही हूँ, क्या वो सच है ?

बीरसा : तुम क्या सुन रही हो, माँ ?

करमी : की तुम भगवान बन चुके हो। और तुम अँग्रेजों से मुकाबला कर रहे हो।

बीरसा : माँ... अगर कोई तुम्हे दुःख पहोंचाए...तुम पर अत्याचार करे, तो तुम्हें बचाना मेरा फर्ज़ है। इस में गलत क्या है ?

करमी : (धीरे से) लेकिन कोई मुझे कह रहा था कि मैंने भगवान को जन्म दिया है। ये सुनकर मुझे बहोत डर लगता है।

बीरसा : इस में डरने की क्या बात है माँ ? अगर मेरे भगवान होने से मेरे साथियों को अन्याय के खिलाफ़ लड़ने की हिंमत मिलती है तो मैं हज़ार बार भगवान बनना चाहूँगा। ये जमीन, ये जंगल मुण्डा और उरांओं के हैं। एक दिन हमारे पास नमक और तेल होगा।

करमी : (बीरसा के मुँह से एसी बातें सुनकर) ओह... ये कैसी बातें कर रहा है तू ? हम जंगल में रहनेवाले लोग हैं। सामने हज़ारों की तादात में अंग्रेज हैं। हम मुठ्ठी भर लोग क्या कर पाएँगे ? उनके पास शस्त्र हैं, उन्होंने हर जगह अपनी चौकियाँ बनाकर रखी हुई हैं। बेटे, तुम्हारा अपनी माँ भोम के लिए प्यार मैं समझ रही हूँ। लेकिन ये मत भूलना की तुम्हें भी किसी माँ ने जन्म दिया है।

बीरसा : (बात को मोड़ देते हुए) माँ... ये अच्छा हुआ कि बाबा ने मुझे क्रिस्चन शाला में दाखिल करवाया था। मैं वहाँ गोरे लोगों की तरह रहा। आज मैं उनका सिखाया ज्ञान उन्हीं के खिलाफ उपयोग कर रहा हूँ। जमींदार और अंग्रेजों ने हमें गुलाम बनाने के लिए हाथ मिलाए हैं। उन लोगों ने जबरदस्ती हमसे हमारी कुदरती सम्पदा छीन ली है। लेकिन अब उलगुलान की ये आवाज़ उन लोगों को मिट्टी में मिला देगी। चाहे कुछ भी हो, लेकिन हर जन्म में तू मेरी माँ बनेगी।

करमी : मुझे बहुत डर लग रहा है बीरसा ।

बीरसा : क्युंकि तुम मेरी माँ हो ।

(ढोल के संगीत के साथ दृश्य बदलता है।)

(दृश्य ६)

(अंग्रेज अफसर का दफ़्तर है। अंग्रेज अफसर टेबल पर पैर रख के सीगार पी रहा है। टेबल की दूसरी ओर एक लड़की खड़ी है। उसके हाथ बंधे हुए हैं, मानो वो दया की याचना कर रही है।)

अंग्रेज अफसर : (धुआँ निकालते हुए) देखो लड़की... अगर तुमने झूठ बोला तो तुम्हें जेल जाना होगा।

लड़की : नहीं साब... मैं झूठ नहीं बोल रही हूँ।

अंग्रेज अफसर : और अगर तुम सच बोलोगी तो हम तुम्हे पाँच सौ रुपये इनाम में देंगे। उस जंगली बीरसा और उसके साथियों ने हमारी बहोत सारी चौकियाँ

उड़ा दी हैं, हमारे काफी सारे अफसरों को मार दिया है। जंगल उसे बचा रहे हैं। अब हम थक चुके हैं। उसे जिन्दा या मुर्दा पकड़ना बहोत ज़रूरी है। बताओ... बताओ, तुम्हारे पास क्या मालुमात है उसके बारे में?

(लड़की बोलना शुरू करती है। ढोल का संगीत)

(दृश्य ७)

('बीरसा ओ बीरसा' गाना गूंज रहा है। बीरसा गाँव-गाँव जाकर लोगों को उलगुलान के लिए तैयार कर रहा है। लोगों को अंग्रेजों के खिलाफ बगावत करने के लिए समझा रहा है। बड़े पैमाने में लोग उसके साथ हो रहे हैं। वो सभी एक घने जंगल में पहोंचते हैं। सभी एक जगह बैठते हैं। बीरसा कुछ देर के लिए मौन है।)

बीरसा : (अपने साथियों सें) मैं जानता हूँ कि तुम सब लोग थक चुके हो। हम कुछ समय के लिए यहाँ आराम करेंगे और बाद में आगे बढ़ेंगे। तुम लोग जानते हो हमारा अगला निशाना क्या है ?

सभी : हाँ... पुलीस चौकी।

बीरसा : (हँसते हुए) हाँ... हमें उसे उड़ाना है... थोड़ा आराम कर लो।

(सभी जमीन पर लेट जाते हैं...अचानक एक लड़की उठ खड़ी होती है। ये वही लड़की है जो अंग्रेज अफसर के सामने खड़ी थी। वो चावल बनाने के लिए आग जलाती है। चूल्हे का धुआँ ऊपर की ओर उठता है।)

(दूसरी ओर)

अंग्रेज अफसर : ओह... वो देखो... वहाँ धुआँ उठ रहा है। शायद उस लड़की की बात सच है। बीरसा और उसके साथी वहीं कहीं होंगे...चलो...जल्दी चलो...उस इलाके को चारों ओर से घेर लो। इस बार वो लोग भागने न पाएँ।

(ढोल का संगीत)

(दृश्य ८)

(अंग्रेज सोये हुए बीरसायतों को चारों ओर से घेरकर उन पर हमला बोलते हैं। गोलियों की आवाज़ और आदिवासियों की किकियारियों से जंगल गूँज उठते हैं। घमासन लड़ाई के बाद बीरसा और उसके कई साथी पकड़े जाते हैं।)

(दृश्य ९)

(बीरसा अपने साथियों के साथ जेल में है। बीरसा और बीरसायत दोनों को अलग-अलग कोठरियों में बंद किया गया है। बीरसा हथकड़ियों और लोहे की ज़ंजीरों में कैद है। बीरसा जब चलता है तो लोहे की सलाखों की आवाज़ से दूसरी कोठरी में बंद बीरसायतों को हिम्मत मिलती है। उन्हें विश्वास रहता है कि उनका भगवान जिन्दा है। बीरसा और बीरसायतों पर अनगिनत अत्याचार किए जाते हैं। एक दिन बीरसा अपनी कोठरी से ही बीरसायतों को सम्बोधित करता है।)

बीरसा : हिम्मत मत हारना, मेरे दोस्तों... हिंमत मत हारना। हमारे उलगुलान के लिए अपनी जान भी देनी पड़े तो दे देना। लेकिन विश्वास मत खोना। मैंने तुम्हें दुश्मनों से कैसे लड़ना है ये सिखाया है। हमारे दुश्मन कौन हैं ये भी बताया है। अपने हथियार मत छोड़ना। लड़ाई भी मत छोड़ना। उसे जारी रखना। एक दिन जीत हमारी ही होगी।

(अचानक उसके गले में दर्द उठता है।)

ओह... इन लोगों ने मुझे क्या खिलाया? मेरे पेट में बड़ी जलन हो रही है...मेरा गला सूखा जा रहा है... मेरा खून सूख रहा है... सरकार उनके इरादों में सफल नहीं हो पाएगी... मैं नहीं मरूँगा...मैं नहीं मरूँगा।

(बीरसा के मुँह से खून निकलने लगता है।)

मेरी लड़ाई मेरे बीरसायत आगे बढ़ाएँगे। जब तक वो हमारी जमीन और जंगल माँ को दुश्मनों से आज़ाद न करवा दें तब तक मेरा उलगुलान चलता

रहेगा...हमारे जंगल, नदियाँ, जमीन के लिए मेरा उलगुलान हमेशा जारी रहेगा... उलगुलान ...

(वो निस्तेज हो फर्श पर गिर पड़ता है। वो अपनी अंतिम साँस लेता है। उसकी हथकड़ियाँ आवाज़ करती हुए बंद हो जाती हैं। बीरसायत इस खामोशी से चौकन्ना हो जाते हैं। अचानक दूसरी ओर से एक बीरसायत चिल्ला उठता है।)

बीरसायत : (रोते हुए)... उठो... भगवान उठो ! हमें तुम्हें पहनायी हथकड़ियों की आवाज़ नहीं आ रही है। वो आवाज़ ही हमारी साँस है, हमारी हिम्मत है, हमारी लड़ाई है...अगर ये आवाज़ न रही तो हम भी हमारी साँसें खो देंगे... उठो भगवान, उठो...

(भगवान बीरसा का शरीर फर्श पर निस्तेज पड़ा है। शांति।)

नेपथ्य से कोरस : भगवान बीरसा का उलगुलान आज तक नहीं रुका। आदिवासी आज भी उनके जंगल और जमीन के अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है। लड़ाई चल रही है। कई बीरसायत इस लड़ाई को चला रहे हैं। अगर हमें हमारे जंगल और जमीन के अधिकार चाहिए तो हमें भी उलगुलान छेड़ना होगा। बीरसा का आन्दोलन चलता रहेगा। उलगुलान!